॥ श्रीः ॥

पैशाचिक-काण्ड

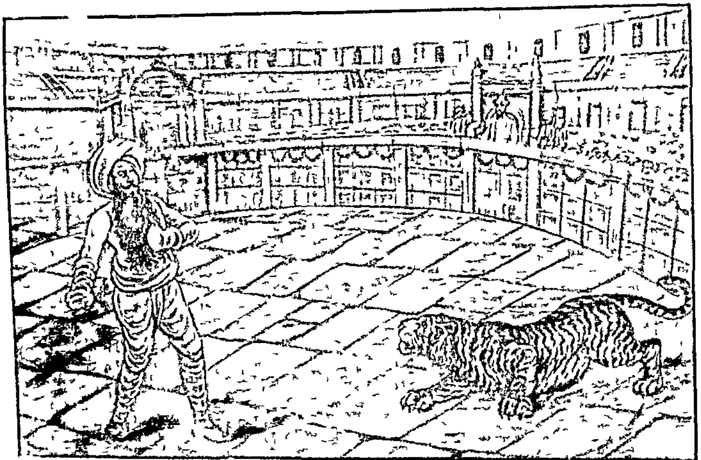
विचित्र घटनापूर्ण एक सचित्र
ऐतिहासिक उपन्यास।

'भीषणपाप' इत्यादि, इत्यादि ग्रन्थोंके
रचयिता द्वारा रचित।

जिसे
काशीस्थ, 'उपन्यास बहार' आफिस के अध्यक्ष और
अनेक उपन्यासों के लेखक काशी-निवासी
बाबू जयरामदास गुप्त ने
प्रकाशित किया।

॥ काशी ॥
चन्द्रप्रभा प्रेस में मैनेजर मुन्शी गौरीशङ्करलाल द्वारा मुद्रित।
प्रथमबार २०००] अगस्त १९१४ ई०- [

2



अपने नृशंस स्वभाव की निर्भीकता के कारण वह (शेर) एकबार अपनी जगह चिपक कर
बैठ मकुन्द पर उछलने के लिये प्रस्तुत हुआ।

॥ श्री ॥

पैशाचिक काण्ड ।

प्रथम परिच्छेद ।

दैव-रक्षा ।

शीतकालीन अमावस्या की एक सन्ध्या क्षीण होते हुए सान्ध्य-प्रकाश को दूर करती हुई रात्रि के उन्नतिशील अन्धकार का विस्तार करती थी। इस सन्ध्या के इस कार्य मे मानो साहाय्य होने के लिये ही उस समय का आकाश असामयिक मेघमाला से आच्छन्न था। समय समय पर उस मेघमाला से गर्ज्जन और चपला का अस्थायी प्रकाश प्रकट होता था। शब्द की अपेक्षा प्रकाश के अधिक द्रुत-गामी होने की वजह, प्रकाश पहले दिखाई देता, प्रकाशस्थान के निकट या दूर होने के परिमाणानुसार शीघ्र या विलम्ब से शब्द पीछे सुनाई देता था। अमावस्या की ऐसी ही यह सन्ध्या जिस रात्रि के आगमन की पूर्व्व सूचना थी, भारत की उस रात्रि के घनान्धकारमयी होने के सम्बन्ध में कौन सन्देह कर सकता था?

ऐसी ही इस सन्ध्या के अन्धकार को उस समय की भारत-राजधानी दिल्ली अपनी अगणित प्रदीपों द्वारा दूर करने का यत्न कर रही थी। हाल मे अङ्गरेजों ने भी अपनी राजधानी दिल्ली ही में प्रतिष्ठित की है सही; किन्तु तब की दिल्ली और अब की दिल्ली में कोई सौसा-दृश्य नहीं। आज की दिल्ली प्रज्वलित प्रदीपमाला का प्रकाश उस समय की दिल्ली निर्म्मेघ-गगन से हँसते हुए पूर्ण राश-

धर की प्यारी ज्योत्स्ना थी। उस समय मुगल-सम्राट् औरङ्गजेब का सौभाग्य-सूर्य अपनी मध्यान्ह-रेखा के समीप पहुच चुका था और औरङ्गजेब के प्रभाव-प्रासाद से दिल्ली जितनी अच्छी बन सकती थी, उतनी अच्छी बनी थी। औरङ्गजेब के एक मुसल्मान मुसाहिब के चिकित्सक फ्रान्सीसी डाक्टर बरनियर ने अपनी पुस्तक भारत-यात्रा में उस समय की दिल्ली देख, उसके सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है, कि वह उस समय के पेरिस आदि नगरों से किसी तरह कम नही थी। उस समय की ऐसी ही सुख-विलसित हर्म्म प्रासाद-शोभित वराङ्गना दिल्ली अपने असंख्य प्रदीपों के प्रकाश से उस सान्ध्य अन्धकार से स्पर्द्धा पूर्व्वक द्वन्द्व करने का प्रयत्न कर रही थी।

किन्तु महाप्रकृति की महालीला के सम्मुख ठहर मानवीय मानसप्रसून उपादान अधिक समय तक द्वन्द्व कर नहीं सकते। इन दिनों वैज्ञानिक श्रेष्ठ मनुष्यों के बनाये भाँति भाँति के उत्मोत्तम उपादानो की कमी नहीं; किन्तु कोई बताये कि इन में कौनसा उपादान प्रकृति के उपादान से टक्कर लेने में समर्थ हुआ है? आज जगत् में इतने तरह के प्रकाश मौजूद हैं; किन्तु इन में कौन सा प्रकाश ऐसा है, जो सूर्य्य-प्रकाश की तरह रङ्गों को बदरङ्ग होने से रोक सकता है? आज जगत् में नाना प्रकार के जहाज दिखाई देते हैं, किन्तु इन मे कौन जहाज क्षुब्ध सागर-सलिल में निरातङ्क रह सकता है? तभी तो उस दिन जगत् का सब से बड़ा जहाज 'टाइटेनिक' सागर की उत्ताल तरङ्गों में पड़ तृण की तरह तैरते हुए एक तुषारगिरि से टकरा कर नष्ट हो गया। फलतः हमारे कल्पना-प्रसून उपादान प्राकृत के

उपादान से टक्कर ले कभी जयी हो नहीं सकते। उस दिन दिल्ली नगरी की प्रदीप-माला के उस प्रकाश की भी ऐसी ही दशा हुई। देखते देखते मेघमाला और भी सघन हुई; वायु के प्रचण्ड झोंके चलने लगे, वृष्टि होने लगी, रह रह कर मेघ गर्ज्जन और सौदामिनी की चमक प्रगट होने लगी। इसके फल से दिल्ली के बाजारों के अधिकांश प्रदीप बुझ गये। आलपाश जो प्रदीप बच गये, उनका प्रकाश वृष्टि-जल की धुँधली चादर और उस घोर अन्धकारमयी रजनी के काले आवरण से आवृत हो बहुत ही छोटे घेरे में सीमाबद्ध हुआ। इसका फल यह हुआ, कि दिल्ली की गलियों और राहों की कौन चलाये, शाह-राहें भी अन्धकार मयी और जनशून्य हो गईं।

ऐसे समय दिल्ली की एक शाह-राह के किनारे बने मारवाड़-पति महाराज यशवन्तसिंह के विशाल प्रासाद के बाहरी भाग का बहुत बड़ा और बड़ाही सुसज्जित सङ्गमरमर का बना एक कमरा बहुसंख्यक बहुमूल्य झाड़ों और फानूसों के प्रकाश से प्रकाशित हो रहा था। आज दिल्ली के राजधानी बनने पर उसमें बहुतेरे देशी नरेश अपने प्रासाद बनवाने पर उद्यत हुए हैं। यह बात नई नहीं, बहुत पुरानी है। औरङ्गजेब की दिल्ली में उस समय के प्रायः सभी बड़े बड़े देशी महीपालों के प्रासाद बने हुए थे। उस समय भारत के प्राय प्रत्येक महीपाल को वर्ष में कई मास दिल्ली में रहना पड़ता था। कितने ही महीपालों को दिल्ली के किले के द्वार का पहरा देना होता था, कितने ही महीपालों को वार्षिक भेंट ले दिल्ली-पति के सम्मुख उपस्थित होना पड़ता था। कितने ही महीपाल

सम्राट् के सम्मुख अपना अभाव-अभियोग उपस्थित करने के लिये दिल्ली जाया करते थे। इस तरह किसी न किसी कार्य्य से वर्ष में एक या कई बार भारतीय महीपालों को दिल्ली जाना ही पड़ता था। और बारबार दिल्ली जाने की वजह, किराये के मकानों या मित्रों के प्रासादों में रहने की असुविधा से बचने के लिये, दिल्ली में उन लोगो ने अपने अपने प्रासाद बनवा लिये थे। दिल्ली-पति भी ऐसा ही चाहता था, जो महीपाल दिल्ली मे अपना प्रासाद बनवाता, उससे उसके इस काम के लिये अपनी बड़ी प्रसन्नता प्रकट करता था। फलतः दिल्ली मे बने देशी राजन्यवर्ग के अनेक प्रासादों में अन्यतम मारवाड़-नरेश महाराज यशवन्तसिंह के प्रासाद के बाहरी भाग का एक कमरा उस समय प्रकाशाधिक्य से अत्यन्त प्रकाशित हो रहा था।

कमरे में बहुत मोटा और बड़ा ही बहुमूल्य एक ऊनी कालीन बिछा था। उस कालीन पर मणिमुक्ता खचित और एक छोटा कालीन और कई मसनद थे। वयोवृद्ध गुण-ग्राही विद्या प्रेमी महाराज यशवन्तसिंह उस छोटे कालीन पर बैठ एक मसनद पर झुके हुए थे। उनके इर्द गिर्द कितने ही राठौर वीर बैठे थे ; सामने एक गवय्या बैठा था, जो तबूरे पर कोई पक्का गाना गा रहा था। महाराज के पास औरङ्गजेब का कोई दरबारी न था ; कोई देशी महीपाल भी न था। केवल उस समय ही नहीं , अन्य समय में भी औरङ्गजेब के निकटवर्ती पुरुष महाराज के पास जाते न थे। औरङ्गजेब महाराज को अपना घोर शत्रु समझता था ; उपहास से उन्हे 'सूनन' कहा करता था। उसका कहना था, "शिवाजी, राजसिंह, सिक्ख गुरु और

यशवन्तसिंह या सूतन यह चारो मेरे घोर शत्रु हैं । पूर्वोक्त तीनो काफिर मेरे उदाराशय शत्रु हैं ; क्योंकि मुझ से खुल कर शत्रुता करते हैं ; काफिर सूतन मेरा सङ्कीर्ण-हृदय शत्रु है ; क्योंकि वह मुझ से गुप्त रूप से शत्रुता किया करता है ।" इस तरह सूतन को औरङ्गजेब अपना गुप्त शत्रु बताया करता था । सूतन को अपना गुप्त शत्रु बता कर भी औरङ्गजेब दण्ड इसलिये दे न सकता था, कि एक तो सूतन असंख्य वीर राठौरो का अधिनायक था ; दूसरे वह आसानी से अपराधी प्रमाणित किया जा न सकता था। जिन महाराज यशवन्तसिंह के प्रति औरङ्गजेब का यह भाव था, उन महाराज यशवन्तसिंह के पास औरङ्गजेब का कोई प्रिय पात्र कैसे जा सकता था ? इसीलिये महाराज जब दिल्ली में रहते थे, तब उनसे मिलने, उनके पास औरङ्गजेब का निकटवर्ती कोई भी मनुष्य न आया करता था।

कोई डेढ़ प्रहर रात्रि जाने पर गाना समाप्त हुआ । महाराज के कितने ही सरदार तथा दरबारी इत्यादि महाराज से आज्ञा ले कमरे से चले गये । केवल दो वयोवृद्ध विश्वस्त राठौर वीर महाराज के पास बैठे रहे । उस समय मूसलधार वृष्टि हो रही थी । तीक्ष्ण वायु-प्रवाह रोकने के लिये कमरे के प्राय सभी द्वार बन्द कर दिये गये थे । फिर भी, कभी कभी वायु का कोई प्रचण्ड झोंका आ बन्द द्वारो को वेग से हिला, कमरे के झाड़ो और फानूसों में जलती मोमबत्तियो को झिलमिला देता था ।

यशवन्तसिंह—बड़ी ही वाहियात रात्रि है ।

एक सरदार—सन्ध्या से वृष्टि आरम्भ हुई है, और तब से अब तक इसका वेग घटने के बदले बढ़ता गया है।

यशवन्तसिंह-औरङ्गजेब के कितने ही आह्वान-पत्र पाने के बाद अब से कोई दो सप्ताह पहले मैंने जोधपुर से दिल्ली के लिये जब प्रस्थान किया था, तब मेरे चलते समय मित्रवर कम्पावत मुकुन्ददास ने मुझ से कहा था, कि वह एक या दो सप्ताह बाद मेरे पास दिल्ली पहुंच जायेंगे। मुझे दिल्ली आये आज पूरे पन्द्रह दिन बीते ; इस अवसर में न तो मुकुन्द आये न उनका कोई पत्र ही आया।

दूसरा सरदार-मुकुन्ददासजी किसी विशेष प्रयोजन से अभी तक दिल्ली पहुंच नहीं सके हैं; आशा है, कि शीघ्र ही यहाँ आ पहुंचेंगे।

यशवन्तसिंह-उन्हों ने अपने आने का जो समय बताया है, उसका अन्तिम दिन आज है। मैंने आशा की थी कि आज वह अवश्य आयेंगे ; किन्तु सन्ध्या से जैसी वृष्टि हो रही है, उससे जान पड़ता है, कि वह यदि दिल्ली के समीप भी पहुंच गये होंगे तो आज दिल्ली प्रवेश कर न सकेंगे।

दूसरा सरदार-क्यों धर्मावतार! क्या इस बात की कोई सूचना मिली, कि औरङ्गजेब ने आप को इतने आग्रह से दिल्ली क्यों बुलाया है ?

यशवन्तसिंह-जिस दिन मैं यहां आया, उसी दिन अपने आने की सूचना मैंने औरङ्गजेब को दी। वह सूचना पाकर भी उसने मुझे आज तक अपने पास नहीं बुलाया है। सम्भवतः शीघ्र ही वह मुझे बुलावेगा और मुझ से मेरे बुलाये जाने का कारण प्रगट करेगा।

पहला सरदार--भगवान से प्रार्थना है, कि वह इस भावी भेंट में राठौरों का मङ्गल करें।

यशवन्तसिंह-(मुस्कुरा कर) औरङ्गजेब मेरा जैसा मित्र

है, उसे तुम जानते हो। ऐसे मित्र से मेरी भेंट होने पर राठौरो की जितनी कुशल हो सकती है, उतनी ही होगी।

दोनो सरदार दीर्घ निश्वास परित्याग कर निस्तब्ध हुए। यशवन्तसिंह भी निस्तब्ध हुए। कुछ देर निस्तब्ध रहने के उपरान्त अन्त में यशवन्तसिंह ने उठ कर कहा, "अब आप लोग भी जायें; मै भी जाता हू।"

दोनो सरदार सलामें कर कमरे से चले गये। महाराज के उठते ही कमरे का एक द्वार खुला। उस खुले हुए द्वार के सामने चार स्त्रियाँ खड़ी दिखाई दी। इनमे दो के हाथो में नङ्गी तलवारे थी। अवशेष दो स्त्रियो मे एक के हाथ मे एक जलती हुई मशाल और दूसरी के हाथ मे एक बुझी हुई मशाल थी। वह बुझी हुई मशाल शीघ्र शीघ्र जलाई जा रही थी, किन्तु वायु के प्रचण्ड झोको के बार बार आने की वजह जलती न थी। यह चारो स्त्रियाँ द्वार पर खड़ी हो महाराज के उठने की प्रतीक्षा कर रही थी। महाराज को आगे बढने पर उद्यत पा, इनमे एक प्रहरी स्त्री ने नम्रता पूर्वक निवेदन किया,—"पृथ्वीनाथ! वृष्टि के झोकों से बचाने के लिये तामदान यहा से हटाया जाकर अन्त पुर की एक कोठरी में रखा गया है। मैं अभी जाकर उसे लिवा लाती हू।"

यशवन्तसिंह—नही, तामदान का प्रयोजन नही, मैं पैदल ही जाऊँगा। दूसरी मशाल जलाने का भी प्रयोजन नहीं, एक मशाल का प्रकाश यथेष्ट है।

यह कह महाराज द्वार के समीप आये। इनमें एक स्त्री ने आगे बढ अपने वस्त्र से महाराज का बहुमूल्य जूता निकाल उन्हें पहना दिया। महाराज कोठरी से निकल

यशवन्तसिंह—औरङ्गज़ेब के कितने ही आह्वान-पत्र पाने के बाद अब से कोई दो सप्ताह पहले मैंने योधपुर से दिल्ली के लिये जब प्रस्थान किया था, तब मेरे चलते समय मित्रवर चम्पावत मुकुन्ददास ने मुझ से कहा था, कि वह एक या दो सप्ताह बाद मेरे पास दिल्ली पहुंच जायेंगे। मुझे दिल्ली आये आज पूरे पन्द्रह दिन बीते; इस अवसर में न तो मुकुन्द आये न उनका कोई पत्र ही आया।

दूसरा सरदार—मुकुन्ददासजी किसी विशेष प्रयोजन से अभी तक दिल्ली पहुंच नहीं सके हैं; आशा है, कि शीघ्र ही यहां आ पहुंचेंगे।

यशवन्तसिंह—उन्हों ने अपने आने का जो समय बताया है, उसका अन्तिम दिन आज है। मैंने आशा की थी कि आज वह अवश्य आयेंगे; किन्तु सन्ध्या से जैसी वृष्टि हो रही है, उससे जान पड़ता है, कि वह यदि दिल्ली के समीप भी पहुंच गये होंगे तो आज दिल्ली प्रवेश कर न सकेंगे।

दूसरा सरदार—क्यों धर्म्मावतार! क्या इस बात की कोई सूचना मिली, कि औरङ्गज़ेब ने आप को इतने आग्रह से दिल्ली क्यों बुलाया है?

यशवन्तसिंह—जिस दिन मैं यहां आया, उसी दिन अपने आने की सूचना मैंने औरङ्गज़ेब को दी। वह सूचना पाकर भी उसने मुझे आज तक अपने पास नहीं बुलाया है। सम्भवतः शीघ्र ही वह मुझे बुलावेगा और मुझ से मेरे बुलाये जाने का कारण प्रगट करेगा।

पहला सरदार—भगवान से प्रार्थना है, कि वह इस भावी भेट में राठौरों का मङ्गल करें।

यशवन्तसिंह—(मुस्कुरा कर) औरङ्गज़ेब मेरा जैसा मित्र

है, उसे तुम जानते हो। ऐसे मित्र से मेरी भेंट होने पर राठौरो की जितनी कुशल हो सकती है, उतनी ही होगी।

दोनो सरदार दीर्घ निश्वास परित्याग कर निस्तब्ध हुए। यशवन्तसिंह भी निःतब्ध हुए। कुछ देर निस्तब्ध रहने के उपरान्त अन्त मे यशवन्तसिंह ने उठ कर कहा, "अब आप लोग भी जायँ, मै भी जाता हू।"

दोनो सरदार सलामें कर कमरे से चले गये। महाराज के उठते ही कमरे का एक द्वार खुला। उस खुले हुए द्वार के सामने चार स्त्रियाँ खड़ी दिखाई दीं। इनमे दो के हाथो में नङ्गी तलवारें थी। अवशेष दो स्त्रियो मे एक के हाथ मे एक जलती हुई मशाल और दूसरी के हाथ मे एक बुझी हुई मशाल थी। वह बुझी हुई मशाल शीघ्र शीघ्र जलाई जा रही थी; किन्तु वायु के प्रचण्ड झोको के बार बार आने की वजह जलती न थी। यह चारो स्त्रियाँ द्वार पर खड़ी हो महाराज के उठने की प्रतीक्षा कर रही थी। महाराज को आगे बढने पर उद्यत पा, इनमे एक प्रहरी स्त्री ने नम्रता पूर्वक निवेदन किया,—"पृथ्वीनाथ! वृष्टि के झोकों से बचाने के लिये तामदान यहा से हटाया जाकर अन्त पुर की एक कोठरी में रखा गया है। मैं अभी जाकर उसे लिवा लाती हूं।"

यशवन्तसिंह—नही, तामदान का प्रयोजन नहीं, मैं पैदल ही जाऊँगा। दूसरी मशाल जलाने का भी प्रयोजन नही, एक मशाल का प्रकाश यथेष्ट है।

यह कह महाराज द्वार के समीप आये। इनमे एक स्त्री ने आगे बढ अपने वस्त्र से महाराज का बहुमूल्य जूता निकाल उन्हें पहना दिया। महाराज कोठरी से निकल

अन्त पुर की ओर चले। एक प्रहरी स्त्री उनके आगे चली, एक पीछे। जिन दो स्त्रियो के हाथो में मशालें थीं, वह आगे चलनेवाली प्रहरी स्त्री और महाराज के बीच में चलीं।

उस समय वृष्टि प्रबल वेग से हो रही थी, प्रचण्ड जलकणवाही आर्द्र वायु अपना बड़ा प्रकोप प्रकट कर रही थी। इस कमरे और अन्तःपुर के बीच का सङ्कीर्ण पथ चौड़ी छत से आच्छादित रहने पर भी वायु के झोके के साथ आनेवाले वृष्टि-जल से भीग रहा था। पथ की दोनो ओर छत के छज्जे से जल की चादर गिर रही थी। उस चादर के पीछे रात्रि का घोर अन्धकार छाया था। महाराज ने जैसेही कमरे से पैर निकाला, वैसे ही दूर एक छींक हुई, साथ साथ मानो कमरे के ठीक ऊपर आकाश मे घोर मेघ-गर्ज्जन हुआ। यह अशकुन देख महाराज के साथ की चारो स्त्रियाँ रुकने पर उद्यत हुईं, किन्तु महाराज के न रुकने की वजह वह सब भी न रुकी, उनके साथ चलने पर बाध्य हुईं।

पूर्वोक्त कमरे और अन्त पुर के बीच छत से आच्छादित जो पथ था, उसकी लम्बाई कोई एक सौ गज थी। यह पथ ही अन्त पुर और बाहर के प्रासाद को जोड़ता तथा पृथक् करता था। इसके दोनो पार्श्व में शष्पावृत अल्प-परिसर दो मैदान थे। दोनों मैदानो के छोर पर राजप्रासाद की सीमा रेखा ऊँची चहारदीवारी थी। ऐसे ही इन दोनों मैदानो के बीच अवस्थित राह से चारो स्त्रियो के साथ महाराज अभी कोई बीस गज अग्रसर हुए थे, ऐसे समय आगे चलनेवाली वह प्रहरी स्त्री चौंकी और ठहर गई।

यशवन्तसिंह—क्या है?

स्त्री—महाराज! मशाल के प्रकाश मे मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो कोई मनुष्य इस पथ के समीप से मैदान की ओर चला गया।

इस पर मशाल ऊँची की गई। उस प्रहरी स्त्री ने जिस ओर मनुष्य का जाना बताया था, उस ओर सब ने निगाहें दौड़ाईं। पीछे चलनेवाली प्रहरी स्त्री ने राह के किनारे जा आँखें फाड़, उस मनुष्य के देखने का यत्न किया। किन्तु किसी के किसी यत्न का कोई फल न हुआ। मशाल के प्रकाश में आकाश से गिरती हुई वारिधारा का ज्योतिर्म्मय जल और उसके पीछे के घोर अन्धकार के सिवा किसी को और कुछ दिखाई न दिया। उस घोर अन्धकारमयी रजनी मे, उस एक मशाल के प्रकाश में, अपने से दश हाथ अन्तर की भी किसी चीज का देखना कठिन था। किसी के यत्न का कोई फल न देख महाराज यशवन्त-सिंह ने आगे चलनेवाली उस प्रहरी स्त्री से कहा,—"तुझे भ्रम हुआ है। मै वृष्टि-जल से भीग रहा हू, शीघ्र आगे बढना चाहिये।"

चारो स्त्रियो के साथ महाराज आगे बढे। उस समय वहाँ और कोई शब्द नही, केवल वृष्टि का शब्द सुनाई देता था। कभी कभी चपला की चमक उत्पन्न होती थी, इसके बाद मेघ-गर्ज्जन होता था। महाराज और चारो स्त्रियो ने उस पथ का अर्द्धांश अतिक्रम किया था, ऐसे समय बड़े वेग से बिजली चमकी। पथ के गिर्द के घोर तिमिराच्छन्न मैदान प्रकाशित हुए। इस प्रकाश के होते ही महाराज की दृष्टि उस मैदान की ओर गई, जिसमे किसी मनुष्य के देखे जाने का सन्देह किया गया था। उस

क्षण विद्युत्प्रभा में महाराज ने देखा, कि उस मैदान मे उनके समीप ही एक नहीं, अनेक मनुष्य-मूर्त्तियाँ खड़ी हैं। उन्हें केवल महाराज ही ने नही, उनके साथ की उन स्त्रियों ने भी देखा। विद्युत्प्रकाश के लोप होते ही, वह मूर्त्तियाँ भी लोप हो गईं। आगे जाने वाली प्रहरी स्त्री ने पुकार कर कहा, "दौड़ो, दौड़ो मशालें लाओ।"

प्रहरी स्त्री के मुह से यह बात निकलते ही भ्रमर-गुञ्जन जैसे कई शब्द हुए। जिस मैदान मे वह मनुष्य-मूर्तियाँ दिखाई दी थीं, उस मैदान से कितने ही वीर आ, महाराज तथा उनके साथ की उन स्त्रियों के बीच से होते हुए उस दूसरे मैदान मे निकल गये। एक तीर आगे जाने वाली उस प्रहरी स्त्री की देह मे विधा। वह चीत्कार कर बैठ गई। महाराज ने आज्ञा दी,—"मशाल बुझा दो।" किन्तु यह आज्ञा कार्य मे परिणत होने न पाई। जैसे ही मशालची स्त्री मशाल बुझाने चली वैसे ही वृष्टि जल से भीगे हुए दीर्घकाय छः सुशस्त्र मनुष्यों ने मैदान से उस पथ मे एक-एक प्रवेश कर महाराज और उनके साथ की स्त्रियों पर तलवार से आक्रमण किया। मशाल के प्रकाश मे उन छहों का आकार प्रकार पठानों जैसा जान पड़ा।

एक प्रहरी स्त्री पहले ही आहत हो चुकी थी, दूसरी ने आगे बढ़ एक मनुष्य पर तलवार का एक वार किया। इसके फल से उसकी दाहनी कलाई बहुत कट गई। उसकी दाहनी मुट्ठी मे बन्द तलवार का मूठ खिसक गया, तलवार बड़े वेग से सङ्गीन पथ पर गिरी। बड़ा शब्द हुआ। इस पर और एक मनुष्य ने आक्रमणकारिणी स्त्री की बगल में जा उसके शिर पर तलवार मारी। शिर कट

गया ; स्त्री अचेत हो भूमि पर गिरी । मशालची स्त्रियाँ बड़ी ही सफलता से आक्रान्त और आहत हो राह में गिरी । जिस स्त्री के हाथ में मशाल थी, उसके गिरने पर मशाल भी गिरी और धीरे धीरे बुझने लगी । दो मनुष्यों ने मिल महाराज यशवन्तसिंह पर आक्रमण किया। वयोवृद्ध मारवाड़-पति के पास एक तलवार थी । उन मनुष्यों को देखते ही महाराज ने अपनी वह तलवार म्यान से निकाल ली थी । जैसे ही उन दोनों मनुष्यों की तलवारें महाराज पर चली, वैसे ही उन्हों ने पैतरा बदल उनके दोनों वार खाली दिये और अपने आक्रमणकारियों मे एक की पीठ ; दूसरे की कमर पर अपनी तलवार का वार किया । महाराज के दोनों आक्रमणकारी आहत हुए । इस अवसर में अन्यान्य मनुष्य भी महाराज के साथ की स्त्रियों की ओर से निश्चिन्त हो महाराज पर आ टूटे । एक ओर अकेले वयोवृद्ध महाराज, दूसरी ओर पाँच बलिष्ट और विशालकाय यवन हुए । छठाँ यवन अपनी दाहनी कलाई कट जाने की वजह इस आक्रमण में सम्मिलित न हो दूर खड़ा हो तमाशा देखने लगा ।

वह पाँचो यवन पूर्ण उद्यम से महाराज पर आक्रमण करते थे । उनके आक्रमण करने के ढङ्ग से जान पड़ता था, कि वह यथा सम्भव शीघ्र वयोवृद्ध महाराज की हत्या करने के लिये अतीव उत्सुक थे। मारवाड़-पति वयोवृद्ध योद्धा महाराज यशवन्तसिंह भीषण सङ्कट उपस्थित देख, अपने सारे शक्ति-सामर्थ्य से अपने शत्रुओं के वार रोक रहे थे। इतना ही नहीं, थोड़ा भी समय पाते ही, वह अपने आक्रमणकारियों पर वार कर उन्हें आहत करते थे। ऐसे समय

एक दुर्घटना हुई। महाराज के हाथ की तलवार जितनी सुन्दर थी, उतनी युद्धोपयोगी न थी। इसका फल यह हुआ, कि शत्रुओं की तलवारों की चोटों से वह शीघ्र ही जर्ज्जरित हुई और अन्त में बीच से टूट गई। उसका अर्द्धांश टूटकर भूमि पर गिरा; अवशेष अर्द्धांश महाराज के हाथ में रह गया। महाराज समझ गये, कि संघर्ष समाप्त हुआ; उनका अन्तिम समय सन्निकट है। उन्हों ने अपने हाथ की उस खण्डित तलवार को अपने समीप के एक शत्रु पर खींच मारा और अतीव कर्कश स्वर से कहा,—"हत्यारो! अब तुम निःशङ्क हो मेरी हत्या करो।"

यह कांक्षित सुअवसर पर महाराज के वह शत्रु उनकी हत्या करने के अभिप्राय से उनकी ओर बड़े उत्साह से अग्रसर हुए। एक क्षण मे महाराज की देह लक्ष कर पाँच तलवारें वायु मे उत्थित हुईं। ऐसे समय सिंह के हुङ्कार जैसा हुङ्कार करता विशालवक्ष सर्व्वावृत्ति स्थूलकाय चढ़ी हुई दाढी और बढी मूछोंवाला एक भीषण-दर्शन सशस्त्र पुरुष कमरे की ओर से आ महाराज और उनके उन आक्रमणकारियों के बीच खड़ा हो गया। वह आक्रमणकारी इस नवागत मनुष्य का सर्व्वाङ्ग अभी अच्छी तरह देखने भी न पाये थे, कि उसने अपनी तलवार चला उनमे एक आक्रमणकारी को कमर से दो टुकड़े किया, और दूसरे का शिर उसकी देह से उड़ा दिया। दोनो आक्रमणकारियों की देहें धमा धम शब्द से गिरीं। दो आक्रमणकारियो को मार वह अवशेष तीनो आक्रमणकारियो की ओर बढ़ा। किन्तु वह तीनो उसके सम्मुख ठहरने का साहस कर न सके। उन तीनो ने पलायन किया, उनके साथ साथ दूर खड़े उनके

उस साथी ने भी पलायन किया। वह सब जिस मैदान से आये थे, उसी मैदान में चले गये। रात्रि के घोर अन्धकार मे उनकी मूर्त्ति शीघ्र ही छिप गई, वृष्टि के शब्द ने उनका पद-शब्द शीघ्र ही मिटा दिया। उस नवागतुक मनुष्य ने उनका पीछा करने का यत्न किया; किन्तु महाराज ने उसे रोक कर कहा,—"मुकुन्द! बड़े अवसर पर पहुच तुमने मेरी प्राण-रक्षा की। अब यहाँ न ठहर शीघ्र मेरे साथ आओ।"

मुकुन्ददास का हाथ पकड़ महाराज शीघ्रता पूर्व्वक वह पथ अतिक्रम कर अन्तःपुर में पहुंचे। वृष्टि-जल का प्रवेश रोकने के लिये अन्तःपुर का विशाल फाटक बन्द कर लिया गया था; उसमें बनी एक खिड़की खुली थी; यही कारण था कि बाहर होनेवाली मार काट का कोलाहल फाटक के भीतर बैठे पहरेदारो और पहरेदारिनो को सुनाई न दिया। फाटक के भीतर दाहिने और बायें जो बड़ीन दालानें बनी थी, उसमें एक अफसर की अधीनता मे कोई पचीस सशस्त्र राजपूत और बहुतेरी सशस्त्र प्रहरी स्त्रिया निश्चित मन से बैठी थी। मुकुन्द के साथ महाराज के एकाएक फाटक मे प्रवेश करने पर, उन्हें देख परहेदार और प्रहरी स्त्रियाँ सम्भ्रम पूर्व्वक उठी। महाराजने पहरेदारो के अफसर को अपने समीप बुलाकर कहा,—"तुम्हें कुछ और सावधानी के साथ पहरा देने की आवश्यकता है। यद्यपि वृष्टि के शब्द और फाटक बन्द रहने से यहाँ बाहर का कोलाहल कठिनता से पहुच सकता है, तथापि तुम्हारी श्रवणेन्द्रिय यदि कुछ और तीक्ष्ण हो तो अच्छा है। इस फाटक के समीप ही कमरे की ओर जाने वाले पथ में अब से कुछ क्षण पहले बहुत बड़ा एक फसाद हो

गया है। मैं कमरे से निकल इस फाटक की ओर आ रहा था; ऐसे समय इस पथ के उत्तर के मैदान से आ छः यवनों ने हमपर आक्रमण किया। मेरे साथ की चारों स्त्रियाँ धराशायिनी हुई है; मैं बड़ी विपद् में फंसा; (अपने साथी की ओर सङ्केत कर) मित्रवर मुकुन्द यथा समय आ दो यवनो को मार अवशेष यवनों को यदि भगा न देते, तो मेरी प्राण-रक्षा न होती। तुम लोग यथा सम्भव शीघ्र घटना-स्थल मे जाओ। राज्य-वैद्य को बुला स्त्रियो को दिखाओ और दोनों यवनों की शवदेह कोतवाली ले जा, कोतवाल को इस दुर्घटना की सूचना दो। सिवा इसके पथ के गिर्द के दोनों मैदान और अन्त.पुर तथा बाहर के अन्यान्य स्थानो को देख, इस बात की जांच करो कि आक्रमणकारी अवशेष यवन कहा गये।"

महाराज की यह बात समाप्त होते ही मशालें ले कितने ही सिपाही फाटक से बाहर निकल गये। वृष्टि अब घट रही थी; इसलिये सिपाहियो को महाराज की आज्ञा-पालन करनें में अधिक कठिनता न हुई। सिपाहियों के जाने के उपरान्त महाराज ने मुकुन्द से पूछा,—"क्या तुम भोजनादि से निवृत्त हो चुके हो?"

मुकुन्द—दिल्ली प्रवेश करने के उपरान्त मैं यहीं आया हूं। फाटक पर घोडे से उतर आप के कमरे मे पहुंचा; आप को वहा न पा अन्तःपुर की ओर चला। राह में आप से भेंट हुई।

महाराज—ठीक है। ऐसी दशा में तुम मेरे साथ आओ। अपने वस्त्र बदलो और मेरे साथ भोजन करो।

यह कह मुकुन्द को साथ ले महाराज अन्त पुर की

सीढ़ियों की ओर चले। कितने ही प्रहरी और मशालची स्त्रियाँ महाराज के साथ चली। 'हटो-बचो' का रव उत्थित हुआ। साधारणत राठौर मात्र से, विशेषत मुकुन्द से, अन्त पुर मे परदा किया न जाता था।

अन्त पुर मे पहुच भोजनादि से निवृत्त हो मुकुन्द को ले महाराज एक अतीव सुसज्जित कमरे मे जा बैठे। पान इलायची आदि परिपूर्ण सोने की रकाबियाँ ला दासियो ने महाराज के सामने रखी। दासियो को महाराज ने कमरे से बाहर जाने का सङ्केत किया। उनके जाने और द्वार का मखमली परदा बराबर होने पर महाराज ने मुकुन्द से कहा,-" आज के तुम्हारे साहाय्य के लिये तुम्हारा मैं आजन्म कृतज्ञ रहूंगा।"

मुकुन्द—महाराज! मेरे और आप के बीच इन बातो का होना उचित नही। प्रयोजन उपस्थित होने पर प्राण भी देकर आपकी और आपके परिवार की सेवा करने का मैंने शपथ ग्रहण कर लिया है।

महाराज—इस आक्रमण के सम्बन्ध में तुम्हारा क्या विचार है?

मुकुन्द—यह आक्रमण चोरो ने भी नही किया, लुटेरो ने भी नही किया, बहुत दिनो से घात में लगे दुरात्माओ ने आज अन्धकार और वृष्टि का आश्रय ले आप पर यह आक्रमण किया है।

महाराज—तुम्हारा कहना बहुत ठीक है। मेरी समझ में यह आक्रमण मुगल-वंश के उस कलङ्क की आज्ञा से हुआ है।

मुकुन्द—आप की इस बात में एक अक्षर भी असत्य नहीं। क्या आप इसी लिये योधपुर से दिल्ली बुलाये गये थे?

ऐसे समय एक प्रहरी स्त्री ने एक राठौर अफसर के आने की सूचना दी । महाराज के उसे अपने सामने बुलाने पर उसने कहा,-" महाराज ! आपके आज्ञानुसार सभी कार्य्य सम्पन्न किये गये है । वैद्य-राज ने चारो स्त्रियो को देख कर कहा है, कि उनके क्षत गहरे नही ; सुचिकित्सा के फल से वह चारो शीघ्र ही स्वस्थ और सबल हो जायेंगी। दोनों लाशें कोतवाली पहुंचाई गई । उन्हे देख कोतवाल ने बडा आश्चर्य प्रकाश किया और कहा, कि वह दोनो लाशे शाही शरीर-रक्षक सेना के पठानों की है । कोतवाल कल प्रातःकाल इस दुर्घटना की जॉच करेंगे । अन्तःपुरवाले पथ के गिर्द के दोनों मैदान तथा अन्यान्य स्थान अच्छी तरह देखे गये; कहीं कोई अजनबी या सन्दिग्ध मनुष्य दिखाई न दिया । उत्तर ओर की चहार दीवारी के एक अंश में भीतर और बाहर दोनो ओर दो सीढियाँ लगी मिली हैं । जान पडता है कि शत्रु इन्हीं सीढियों के साहाय्य से आये और भाग गये ।"

महाराज—अब तुम जाओ और अन्तःपुर की राह में भी पहरा बैठा दो ।

अफसर के जाने के बाद एक बार फिर महाराज और मुकुन्द के बीच वार्तालाप आरम्भ हुआ ।

द्वितीय परिच्छेद ।

भेंट ।

दूसरे दिन दोपहर बाद औरङ्गजेब के एक अत्यन्त प्रतिष्ठित मुसाहब ने महाराज यशवन्तसिंह के प्रासाद में आ महाराज से कहा,—"शीघ्र चलिये; जहांपनाह ने

आपको याद किया है।" यह बात सुन यथासम्भव शीघ्र वस्त्रादि से सुसज्जित हो, उस मुसाहब के साथ महाराज अपने हाथी पर सवार हो दिल्ली के किले की ओर चले। महाराज के आगे पीछे महाराज के शरीर-रक्षक सवार तथा घोड़ों पर और कितने ही राठौर सरदार चले। महाराज के हाथी के आगे आगे आवाजें लगाता चोबदारों और नकीबों का एक दल चला।

इस शान से महाराज यशवन्तसिंह की सवारी उनके महल से निकल दिल्ली के किले की ओर चली। यह सवारी अभी कुछ ही दूर आगे गई थी; ऐसे समय एक शाही शरीर-रक्षक सवार ने आ, महाराज के साथ हाथी पर बैठे उस मुसाहब से कहा,—"आला हजरत इस समय किले में नहीं, चौगान के मैदान में विराजते हैं। महाराज के साथ आप वहीं आयें।" यह कह वह सवार घोड़ा भगा चला गया। महाराज की सवारी दिल्ली के किले में न जा कितने ही राहों से घूम फिर, किले के नीचे यमुना-किनारे बने चौगान के मैदान में पहुची। यमुना-किनारे सोने चादी के खम्भो पर काश्मीरी शालो के वस्त्र और काम का बना एक सुन्दर शामियाना तना था, जिसके नीचे अपने कितने ही मुसाहबो और सरदारो के बीच, एक जड़ाऊ कुरसी पर मुगल भारत सम्राट् औरङ्गजेब बैठा था। बहुसंख्यक शरीर रक्षक सवार और घोड़े, हाथी, तामदान आदि विविध सवारियाँ शामियाने के समीप थी। आकाश निर्म्मल था; सूर्य्य की सुखद रश्मियाँ कल रात्रि के वृष्टि—जल से धुली यमुना-तट की हरियाली पर पड़ उसे नयन-सुखकर बना रही थीं।

शामियाने के समीप पहुंच हाथी से उतर शामियाने में प्रवेश कर औरङ्गजेब को महाराज ने सलाम किया, और उसकी आज्ञा पा वह यथास्थान बैठे। दोनों वयोवृद्ध नर-पतियों ने एक दूसरे को देखा। दोनो ने दोनो की आँखों से उनका तत्कालीन मनोभाव जानने का अफलोदय यत्न किया। अन्त में औरङ्गजेब ने मुस्कुराकर महाराज से कहा,—"आप को मैंने बड़े आग्रह से दिल्ली बुलाया; किन्तु विविध कार्यों में प्रवृत्त रहने के कारण इस से पहले आप से मैं भेंट कर न सका।"

महाराज—क्या मैं किसी विशेष कार्य्य के लिये बुलाया गया हूं, हुजूर!

औरङ्गजेब—निश्चय ही विशेष कार्य्य है; नहीं तो इस शीत-काल में आप को मैं इतना कष्ट न देता। खूब याद आया। आज प्रातःकाल मैंने किसी से सुना था कि कल रात को आपके मकान में आप पर चोरो ने आ-क्रमण किया था। क्या यह समाचार सत्य है?

महाराज—विलकुल सत्य। असत्य केवल इतना है, कि जिन लोगों ने मुझ पर आक्रमण किया था, वह चोर नहीं, आपके शरीर-रक्षक सवार थे।

यह बात महाराज ने औरङ्गजेब की आँखों से आँखें मिलाकर कही, महाराज को जान पड़ा कि यह बात सुन क्षण मात्र के लिये औरङ्गजेब की पलकें झुक गईं। इसके उपरान्त औरङ्गजेब से महाराज ने गत रात्रि की उस दुर्घटना का सविस्तार वर्णन किया। इसके समाप्त होने पर औरङ्गजेब ने कहा,—"जब कोतवाल स्वयं इस दुर्घटना की जाँच कर रहा है, तब आशा है, कि अवशेष अप-

राधो भी पकड़े जाकर दण्ड पायेंगे । अच्छा, महाराज! आपके कितने पुत्र हैं ?"

यशवन्तसिंह—तीन।

औरङ्गजेब—उनके नाम क्या हैं और उन में ज्येष्ठ कौन है ?

यशवन्तसिंह—उनके नाम है,-पृथ्वीसिंह जगत्सिंह और दलस्तम्भनसिंह। पृथ्वीसिंह ज्येष्ठ हैं, इसी लिये युवराज-पद में वरित हुए हैं।

औरङ्गजेब—आशा है, कि प्रयोजन उपस्थित होने पर पृथ्वीसिंह अपने राज्य का शासन-कार्य्य अच्छी तरह चला सकेंगे।

यशवन्तसिंह—सम्राट् के इन प्रश्नों का उद्देश्य मैं समझ नहीं सका हूं।

औरङ्गजेब—मेरे इन प्रश्नों का उद्देश्य यह है महाराज! कि काबुल में बगावत उत्पन्न हुई है और उसे मिटा शाँति स्थापित करने के लिये आप को काबुल की सूबेदारी दी जायेगी। इसी लिये आप को मैंने मारवाड़ से बुलाया है।

यशवन्तसिंह – हुजूर!

औरङ्गजेब—क्यों ?

यशवन्तसिंह—हुजूर अफगानिस्तान की राजधानी काबुल यहाँ से बहुत दूर अटक पार है। मेरे शरीर और मन की जैसी अवस्था है, उस से अब मैं इतनी दौड़ धूप न कर शान्तिपूर्व्वक घर बैठना अधिक पसन्द करता हूं। इस काम के लिये कोई दूसरा मनुष्य क्यों न चुना जाये ?

औरङ्गजेब—इस विषय पर मैं अच्छी तरह विचार कर चुका हूं। इस काम के लिये मुझे आप ही अधिक

उपयुक्त दिखाई देते हैं। आप अपने ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीसिंह को राज्य-कार्य्य सौंप यथासम्भव शीघ्र काबुल की यात्रा करें।

यशवन्तसिंह—हुजूर! मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं, समय समय पर मैं रोगाक्रान्त हुआ करता हूं।

औरङ्गजेब—काबुल का जल-वायु और खाद्य अतीव स्वास्थ्यप्रद है। आप के वैद्य आप के साथ रहेंगे, उनकी सुचिकित्सा के गुण से रोग आपको व्यथा पहुंचा न सकेंगे।

यशवन्तसिंह—अपने इस वार्द्धक्य में, हुजूर! घर छोड़ इतनी दूर जाना और रहना मुझे किसी तरह भी युक्तिसङ्गत जान नही पड़ता।

औरङ्गजेब—आप अपना महल और कनिष्ठ राजकुमारो को अपने साथ ले जाइये। यह लोग आपके साथ जहा रहेंगे, वहीं आप को घर जैसा सुख मिलेगा।

यशवन्तसिंह—क्या इस यात्रा से मेरी किसी तरह भी रक्षा हो नहीं सकती, हुजूर?

औरङ्गजेब—(रुक्ष स्वर से) इसी तरह रक्षा हो सकती है, कि आप इसे अस्वीकार कर दें।

औरङ्गजेब की यह बात सुन व्यथित और चिन्तित मारवाड़पति ने शिर झुका लिया। वह जानते थे, कि औरङ्गजेब की आज्ञा अस्वीकार करने का फल, भीषण युद्ध है। महाराज युद्ध भी किया न चाहते थे; काबुल भी जाया न चाहते थे। वह चाहते थे, कि किसी सुन्दर ढङ्ग से यह बात तय हो जाये। जिस समय महाराज शिर झुकाये यह चिन्ता कर रहे थे, उस समय उन्हें औरङ्गजेब उस दृष्टि से देख रहा था, जिस दृष्टि से व्याघ्र अपने पञ्जे में दबे आखेट की विकलता देखता है।

अन्त में महाराज ने शिर उठाया। मारवाड और राठौरो के मङ्गल के लिये उन्होने लाख अनिच्छा होने पर भी काबुल जाना स्थिर किया।

औरङ्गजेब-कहिये, आप का क्या उत्तर है?

यशवन्तसिंह-मेरा और क्या उत्तर हो सकता है, हुजूर! आपका जब इतना अनुरोध है, तब उसकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है।

औरङ्गजेब-आप का यह उत्तर सुन मै अतीव सन्तुष्ट हुआ हू। आप यथासम्भव शीघ्र काबुल की यात्रा करे।

यशवन्तसिंह-सम्भवतः कल या परसो ही मै यहा से मारवाड़ की यात्रा करूँगा। वहाँ पहुच पृथ्वीसिंह को राज-कार्य्य दे अपने महल और दोनो कनिष्ठ पुत्रो के साथ काबुल की यात्रा करूँगा।

औरङ्गजेब-ऐसा ही कीजिये। काबुल की सूबेदारी की सनद और अन्यान्य आवश्यक कागज कल प्रात काल आप के पास पहुंच जायेगे। कल ही आप के साथ काबुल जाने वाली शाही फौज भी तय्यार की जायेगी। खूब याद आया! आप से एक शिकायत है, महाराज!

यशवन्तसिंह-(अत्यन्त चिन्तित हो) कैसी शिकायत, हुजूर?

औरङ्गजेब-आज प्रात काल आप के मित्र सरदार कम्पावत मुकुन्ददास ने मेरे भेजे एक अहदी का बड़ा अपमान किया है।

यशवन्तसिंह-कैसे, हुजूर?

औरङ्गजेब-कल रात आप पर आक्रमण होने और मुकुन्ददास के एकाएक आ जाने की वजह आप के रक्षा

पाने का समाचार जब मैंने पाया, तब इस घटना का सविस्तार विवरण मुकुन्ददास के मुह से सुनने के लिये, उसे बुलाने के लिये उसके पास अपना एक अहदी भेजा।

यशवन्तसिंह— फिर क्या हुआ, जहाँपनाह?

औरङ्गजेब— अहदी ने लौट मुझे मुकुन्ददास का दिया हुआ बड़ा ही वाहियात एक उत्तर सुनाया। अहदी से मुकुन्ददास ने कहा था, कि वह मेरा नौकर नहीं; इसलिये उसको मेरे बुलाने की कोई परवाह नही। यह भी कहा था, कि वह वीर पुरुष है और वीर पुरुष किसी का भी भय किया नही करते। आप ही देखें कि मुकुन्द की यह सब कैसी बातें हैं।

यशवन्तसिंह—मुझे इस घटना की खबर नहीं। कल रात उस घटना के बाद मुकुन्द मेरे मकान से अपने मकान गये। तब से अब तक उन से मेरी भेट नहीं हुई है। मेरी समझ में अहदी ने अपनी किसी बात से मुकुन्द को उत्तेजित किया होगा; इसी से मुकुन्द ने यह बाते कही होगी। आप जानते हैं, हुजूर! कि यह अशिक्षित अथच बलिष्टवीर कछवावत आपका केवल दास ही नही, दासानुदास है; ऐसी अवस्था मे मुझे पूर्ण विश्वास है, कि आप अपनी सहिष्णुता और क्षमा–गुण से उस निरक्षर मनुष्य की कही इन मूर्खता की बातों का ध्यान न करेंगे।

ऐसे समय यशवन्तसिंह के समीप बैठे एक मुसल्मान मुसाहिब ने कहा,–" लीजिये! आप के वीर कछवावत आप ही यहाँ आ गये।"

सचमुच ही मुकुन्ददास औरङ्गजेब के सामने खड़ा हो उसे सलामें कर रहा था। सलाम करने के उपरान्त और-

ङ्गजेब के सामने से मुकुन्द ने हटने का जैसे ही यत्न किया, वैसे ही औरङ्गजेब ने अत्यन्त कर्कश स्वर से कहा,— "मुकुन्द! आज तू ने बड़ा अपराध किया है।"

मुकुन्द—(हँस कर) जान पड़ता है, कि आप के अहदी ने आप के कान खूब भरे हैं।

औरङ्गजेब—(क्रोध से अधीर हो) मुकुन्द! तुझे खबर है, कि तू कहाँ है? और किस से बातें कर रहा है?

मुकुन्द—मैं बेखबर नही, इन सब बातो की मुझे खबर है। आप यह बतायें, कि आप का मैंने क्या अपराध किया है?

औरङ्गजेब—आज प्रातःकाल मेरे अहदी ने तुझ से जब मेरे पास आने के लिये कहा, तब उस से तू ने प्रत्युत्तर में क्या यह नही कहा, कि तू मेरा नौकर नहीं और मुझ से भय भी नहीं करता; इसलिये मेरे पास न आयेगा?

मुकुन्द—सुनिये, जहापनाह! न्याय करना हो, तो क्रोध छोड़ मेरी बात सुनिये। आप ने जिस तरह अपने अहदी की बात सुनी, उसी तरह अब मेरी भी बात सुनिये।

औरङ्गजेब कोई बात न कह मुकुन्द की बात सुनने के लिये उसके मुह की ओर देखने लगा।

मुकुन्द—कई रात जाग और कल-रात्रि के वृष्टि-जल में भीग, कल अर्द्धनिशा के समीप मैं मारवाड़ से दिल्ली पहुंचा। महाराज के प्रासाद में एक दुर्घटना हो जाने की वजह दिल्ली पहुंचने पर भी मैं विश्राम कर न सका; पिछली रात को अपने मकान जा मैंने विश्राम किया। कठिनता से तीन या चार घण्टे मैं विश्राम कर सका था, ऐसे समय आप के अहदी ने जा मुझे घोर निद्रा से जगाया और आप की आज्ञा सुनाई। मैंने अपनी थकावट का हाल कह

अहदी से कहा, कि मै कुछ समय के उपरान्त सम्राट् की सेवा में उपस्थित होऊँगा। मेरी यह बात सुन वह मुझ पर बहुत क्रुद्ध हो बोला, कि तुम यदि इस तरह न चलोगे तो बांधे जाकर सम्राट् की सेवा में पहुंचाये जाओगे। इस पर मुझे भी क्रोध आया और उस से मैने कहा, कि मै सम्राट् का नौकर नहीं, उनके पास मैं न जाऊँगा। मेरी यह बात सुन अहदी ने कहा, कि तुम्हारी यह बातें जब सम्राट् सुनेंगे, तब तुम्हारी गरदन कटवा लेंगे। इस पर उस से मैंने कहा, कि मै क्षत्रिय हूं, गरदन कटने के भय से भीत हो नहीं सकता। इसके उपरात मै सोने लगा, अहदी बहुत कुछ बक झक मेरे पास से चला आया। अब से कोई एक घण्टा पहले मेरी नींद खुली है। शय्या परित्याग करते'ही मैने आप की सेवा मे उपस्थित होने की तय्यारी की और यथासम्भव जल्द आप की सेवा में उपस्थित हुआ हू। प्रकृत—घटना ऐसी ही है, अब आप ही बतायें, कि इसमें मैने कितना अपराध किया है?

औरङ्गजेब—(कुछ नर्म हो) तुम अहदी का तिरस्कार करते, उससे क्रुद्ध हो तुम ने मेरा तिरस्कार क्यो किया?

मुकुन्द—हुजूर! आप का तिरस्कार करने की क्षमता मुझ में नहीं, आप का तिरस्कार या तो भगवान् कर सकते है या वे लोग कर सकते है, जिनमे आप जैसे महाशक्तिसम्पन्न भारत-सम्राट् से टक्कर लेने की क्षमता है। आप का यह अहदी बड़ा ही दुष्ट है, इसी लिये आप को इस मनोमालिन्य का क्लेश स्वीकार करना पड़ा है।

औरङ्गजेब—मुकुन्द! इसमें सन्देह नहीं, कि तुम बड़े धीर हो, वीर न होते तो मेरे सामने ऐसी बातो के

कहने का साहस न करते।

मुकुन्द—हुजूर! आज्ञा हो, तो आप के लाभ के लिये आप को एक आवश्यक सूचना दे दूं।

औरङ्गजेब—कैसी सूचना?

मुकुन्द—यह बात सदा याद रखिये, कि जो राजपूत है, वह वीर है और जो अवीर है, वह राजपूत नहीं।

औरङ्गजेब—(मन ही मन झल्लाकर) अच्छा; मुकुन्द! यदि तुमसे तुम्हारे वीरत्व का कोई प्रमाण माँगा जाये, तो क्या तुम उसे दे सकोगे?

मुकुन्द—(अपनी सघन मूछों और बढ़ी हुई सघन दाढ़ी पर हाथ फेर कर) यह भी कोई पूछने की बात है? यदि मैं अपने वीरत्व का प्रमाण दे न सकूगा, तो अपने को राजपूत न मानूगा।

यशवन्तसिंह—(अपनी जगह खड़े होकर) बस हुजूर! बहुत हुई। जो मनुष्य ऐसी बातें करता है, उस मनुष्य का भाषण—दोष क्षन्तव्य है।

औरङ्गजेब—नहीं, महाराज! आप इसमें दखल न दें। आप बैठें। हां मुकुन्ददास! क्या तुम अपने वीरत्व का प्रमाण देने के लिये प्रस्तुत हो?

मुकुन्द—हजार बार पूछियेगा, तब भी यही उत्तर पाइयेगा, कि हां प्रस्तुत हूं।

औरङ्गजेब—यदि यह बात है, तो कल तीसरे पहर अखाड़े में उतर मेरे शेर से सामना करो।

मुकुन्द—बस?

औरङ्गजेब—निरस्त्र हो सामना करना पड़ेगा।

मुकुन्द—और भी कुछ?

औरङ्गजेब—तुम्हारे लिये इतना ही यथेष्ट है; बोलो तुम्हें कल तीसरे पहर निरस्त्र हो मेरे शेर से सामना करना स्वीकार है ?

अब महाराज यशवन्तसिंह निश्चिन्त रह न सके। औरङ्गजेब की आज्ञा का कोई ख्याल न कर अपनी जगह से एक बार फिर उठ उन्हों ने कहा,—“ हुजूर ! मनुष्यत्व और न्याय के अनुरोध से अब चुप रहना मैं अधर्म्म समझता हूं । मुकुन्द की जैसी बुद्धि है, उससे वह सब कुछ करना स्वीकार कर सकते है । किन्तु आप से मेरा निवेदन है, कि एक भूखे शेर के सामने एक निरस्त्र मनुष्य को खड़ा करना मनुष्य के वीरत्व की परीक्षा का नहीं; उसके वध का सामान है । आशा है, कि मुकुन्द से आप ने हँसी में यह प्रस्ताव किया होगा और अब आप इससे विरत होंगे।”

महाराज की यह बात सुन औरङ्गजेब का मुख गम्भीर हुआ। महाराज को तीक्ष्ण दृष्टि से देख वह कोई कठोर बात कहा चाहता था; ऐसे समय उसकी बात में बाधा दे मुकुन्द ने उच्च स्वर से कहा,—“मारवाड़पते ! आप के मन मे मेरा यदि तनिक भी प्रेम है, तो उस प्रेम के नाते आप से मैं अनुरोध करता हूं, कि आप इस विषय में तनिक भी बाधा न दें । आप को मैं विश्वास दिलाता हूं, कि आप इस विषय में यदि बाधा देंगे, तो मै समझूंगा, कि इस स्थल में मेरे प्रति आपने मित्रवत् व्यवहार नहीं किया।”

यशवन्तसिंह मुकुन्द की यह बात सुन अतीव व्यथित हो एक दीर्घ निश्वास परित्याग कर अपनी जगह बैठ गये। उनके बैठने पर मुकुन्द ने एक बार फिर औरङ्गजेब की ओर देख कर कहा,—“मुगल-सम्राट् हाथी का दांत जब

निकल आता है, तब पीछे पलट कर नही जाता ; इसी तरह क्षत्रिय के मुह से जो बात निकल आती है, वह फिर लौटाई नही जाती। मैं पहले भी स्वीकार कर चुका हूं ; फिर भी स्वीकार करता हूं, कि कल तीसरे पहर निरस्त्र हो मै आप के शेर से सामना करूंगा । इसके सम्बन्ध में आपको और कुछ कहना है ?

औरङ्गजेब – कुछ नही ।

मुकुन्द—अच्छा ; आपकी इतनी बाते मैंने मानीं ; अब मेरी एक बात आप मानिये ।

औरङ्गजेब—तुम्हारी क्या बात है ?

मुकुन्द—आप चिन्तित न हो ; मेरी बात चिन्ताजनक नहीं। मै गुप्त रीति से आप के शेर का शिकार बना या उसका शिकार किया नहीं चाहता । मेरी प्रार्थना है, कि आप के शेर और एक वीर क्षत्रिय के बीच का यह द्वन्द्व प्रकाश्य रूप से हो। आज ही आप समस्त दिल्ली में ढिंढोरा फिरवा इस द्वन्द्व की घोषणा करा दें। सिवा इसके कल इस द्वन्द्व के समय अखाड़े मे आप भी मौजूद रहे। मैं चाहता हूं, कि ऊपर के उन अन्तर्यामी और नीचे के लक्ष-लक्ष दिल्ली-वासियो के सामने आपके शेर और मेवाड़पति महाराज यशवन्तसिंह के इस कम्पावत-शेर का युद्ध हो ।

औरङ्गजेब—तुम्हारी यह सब बातें मुझे स्वीकार है । क्यो महाराज! क्या आप भी यह तमाशा देखने आयेंगे ?

यशवन्तसिंह-नही हुजूर! मैंने बड़े तमाशे देखे है ; अब और तमाशो के देखने की मेरी इच्छा नही । यदि और कोई बात कहना न हो, तो अब मुझे आज्ञा दी जाये। मैं यहा से लौटते ही अपनी यात्रा की तय्यारी आरम्भ

करूँगा। सम्भवतः कल या परसों मैं यहां से चला जाऊंगा।

औरङ्गजेब को और कुछ कहना न था। भेंट समाप्त हुई। महाराज यशवन्तसिंह ने औरङ्गजेब से विदा ग्रहण की। मुकुन्द भी औरङ्गजेब को सलाम कर उससे विदा हुआ। जाने से पहले औरङ्गजेब से कहता गया,—"कल तीसरे पहर अखाड़े में आप अपना शेर तय्यार रखियेगा।"

तृतीय परिच्छेद।

शेर से सामना।

औरङ्गजेब के मुकुन्ददास पर कुपित होने का एक नहीं; दो कारण थे। इनमें एक कारण यह था, कि मुकुन्द ने औरङ्गजेब के अहदी के सामने औरङ्गजेब का अपमान किया। यह कारण गौण भी था और नया भी। दूसरा पुराना और प्रधान कारण यह था कि मुकुन्द मेवाड़पति महाराज यशवन्तसिंह का परम-हितैषी मित्र था। प्रधानत इस दूसरे कारण से ही नृशंस औरङ्गजेब ने एक क्षुधित व्याघ्र के मुंह में निरस्त्र मुकुन्द के पहुंचाने की व्यवस्था की थी। औरङ्गजेब जानता था, कि मुकुन्द की मृत्यु से उसका शत्रु यशवन्त कुछ न कुछ निर्बल अवश्य होगा।

औरङ्गजेब और महाराज यशवन्तसिंह के बीच असाधारण शत्रुता थी। यह दोनो एक दूसरे के विनाश का यत्न किया करते थे। इन दोनों के बीच की इस घोर शत्रुता का हाल जानने के लिये महाराज यशवन्तसिंह के पूर्व जीवन का संक्षिप्त विवरण जान लेना परमावश्यक है। मारवाड़-पति महाराज-गज के यथाक्रम तीन पुत्र थे,—अमरसिंह, यशवन्तसिंह और अचलसिंह। इनमें कनिष्ठ पुत्र अचल-

सिंह का शैशव ही में देहान्त हो गया और ज्येष्ठ अमरसिंह को उनके पिता गजसिंह ने सन् १६३४ ई० में मेवाड़ से निर्वासित कर दिया। अमरसिंह शूर-वीर होने पर भी उद्धतस्वभाव और अत्यन्त क्रोधी थे; इसी लिये उनके पिता ने उन्हें युवराज-पद से हटाने के साथ साथ मेवाड़ से भी हटा दिया था। उद्धतस्वभाव अमरसिंह की मृत्यु भी विचित्र रूप से हुई। मेवाड़ से निर्वासित होने पर अमर उस समय के भारत-सम्राट् औरङ्गजेब के पिता शाहेजहा के पास आगरे पहुचे। उन्हे शाहेजहाँ ने तीन हजार सिपाहियो का सेनापति बनाया और नागोर की जागीर दी। अमर अपना पद-कार्य्य कम करते; शिकार अधिक खेलते थे। उन पर शाहेजहा असन्तुष्ट हुआ। एक बार अमर सुदीर्घ काल तक शिकार में प्रवृत्त रह दरबार वापस आये। इस पर उन्हे शाहेजहाँ ने अर्थ—दण्ड से दण्डित किया। इस दण्ड की आज्ञा पा अमर ने अपनी तलवार के कब्जे पर हाथ रख कहा,—"हुजूर! क्षत्रियों का अर्थ उनकी तलवार है। आप यदि क्षत्रियो से अर्थ ग्रहण करना चाहें, तो उनकी तलवार पर अधिकार करें।" अमर की इस बात पर सम्राट् ने उस समय कुछ न कहा; किन्तु जैसे ही अमर अपने डेरे वापस गये, वैसे ही अपने बख्शी सलावतखा को दण्ड का अर्थ ग्रहण करने के लिये अमर के पास भेजा। अमर ने बख्शी की बात सुन उसका बड़ा तिरस्कार किया और बड़े ही अपमान के साथ उसे अपने डेरे से निकलवा दिया। दूसरे दिन दरबारे आम में शाहेजहा से बख्शी ने अमर की शिकायत की। यह शिकायत सुन शाहेजहा के क्रोध की सीमा न रही। उस

ने अमर को बुलवाया । अमर के सामने पहुंचने पर उन्हे शाहेजहाँ ने कुछ कठोर वाक्य कहे । इन बातो को सुन अमर क्रोध से अधीर हुए । प्रकाश्य दरबार में उन्होने आगे बढ़ बख्शी सलाबतखा की हत्या की और सिंहासन पर बैठे शाहेजहां पर तलवार का एक वार किया। शाहेजहा सिंहासन छोड महल में भाग गया। इधर अमर को घेर बहुतेरे सरदार मार डालने का यत्न करने लगे। अमर ने पांच मुग़ल-सरदारो को मारा और कितनों ही को आहत किया। अन्त मे अमर के साले अर्जुन ने मुगलो से सम्मान पाने के लिये अमर से विश्वासघात किया । वह अमर की प्रशसा करता उसके समीप पहुंचा और उसके असावधान होने पर उसकी उसने हत्या की। इसी समय अमर के साथी सरदार बल्लू चम्पावत, भाऊ कम्पावत आदि दरबार मे घुस तलवारे चलाने लगे। बहुसख्यक राज-कर्मचारियो को मार—काट अन्त में यह सब भी मारे गये। इस तरह यशवन्त के ज्येष्ठ भ्राता अमर का अन्त हुआ। अमर और उनके साथियो की तलवारो के चिह्न आज भी आगरे के दीवाने आम के खम्भो पर मौजूद हैं।

सन् १६३८ ई० में गुजरात की चढ़ाई में यशवन्त के पिता महाराज गज मारे गये। महाराज गज की मृत्यु के सम्बन्ध मे ऐतिहासिकों में मतभेद है। कुछ ऐतिहासिकों का कहना है कि महाराज गज लुटेरो के हाथो मारे गये। फिर कुछ ऐतिहासिको का यह भी कहना है, कि महाराज डाकुओं के हाथों नहीं सम्राट् शाहेजहाँ के नियुक्त किये कुछ सशस्त्र मनुष्यों के हाथो मारे गये। फलतः इस तरह महाराज गज की मृत्यु हुई। उनकी मृत्यु होते ही यशवन्तसिंह का राज्याभि-

षेक हुआ। सुयोग्य, बुद्धिमान् और विद्याप्रेमी महाराज यशवन्तसिंह के शासनकाल में मारवाड़ की बड़ी उन्नति हुई। मारवाड़ की अविद्या दूर हुई और विविध शिल्प-कला का प्रचार हुआ। महाराज की आज्ञा से कितनी ही उत्तमोत्तम पुस्तकें रची गई। ऐसे समय मुग़ल-सम्राट् शाहेजहाँ की पारिवारिक शान्ति भङ्ग हुई। बहुत समय से शाहेजहाँ राज-कार्य्य का भार अपने पुत्र दारा पर रख स्वयं अन्तःपुर में बैठ भोग विलास किया करते थे। इसी अवस्था मे सन् १६६८ ई० मे शाहेजहां अत्यन्त पीड़ित हुए और देश में उनकी मृत्यु का असूलक समाचार फैल गया। दारा के भाइयों ने बगावत की। शाहजादा शुजा बङ्गाल से और शाहजादा औरङ्गजेब तथा शाहजादा मुराद यथा-क्रम दक्षिण और गुजरात से दिल्ली की ओर अग्रसर हुए। यह देख महाराज जयसिंह शुजा के रोकने के लिये और कासिमखा के साथ महाराज यशवन्तसिंह औरङ्गजेब और मुराद की सम्मिलित फौज को रोकने के लिये भेजे गये। शुजा को जयसिंह ने परास्त किया। औरङ्गजेब और मुराद को यशवन्तसिंह परास्त कर न सके। यशवन्तसिंह की फौज के असख्य मुसलमान औरङ्गजेब से मिल गये; इसी लिये उज्जैन के समीप एक भीषण युद्ध में यशवन्तसिंह परास्त हो आगरे वापस न जा स्वदेश लौट गये। जिस समय यशवन्त अपनी राजधानी में पहुचे और अपने दुर्ग में प्रवेश करने चले, उस समय उन्हो ने देखा कि उनके दुर्ग का द्वार बन्द है। दुर्गका द्वार बन्द करा यशवन्तसिंह की महारानी ने यशवन्त से कहलाया,—“ तुमने वीर हो कर अवीर का काम किया है ; क्षत्रिय होकर जीवित

वस्था में रणस्थल परित्याग किया है ; इस लिये तुम्हें मैं इस दुर्ग में प्रवेश करने न दूंगी।" अन्त में अपनी रूठी रानी को समझा बुझा यशवन्त ने दुर्ग का द्वार खुलवा उसमें प्रवेश किया। इस तरह उज्जैन के प्रथम युद्ध मे औरङ्गजेब और यशवन्तसिंह के बीच का विरोध—बीज बोया गया।

उधर पहले यशवन्त पीछे दारा को परास्तकर औरङ्गजेब ने आगरा प्रवेश किया और अपने पिता शाहेजहाँ को क़ैद कर भारत-सिंहासन लाभ किया। सिंहासन-लाभ करते ही औरङ्गजेब ने अश्वपति को यशवन्तसिंह के पास भेज उनसे कहलाया,—"उज्जैन के रणस्थल में तुमने जो अपराध किया था, वह क्षमा किया गया ; अब तुम शीघ्र आगरे आ शुजा के विरुद्ध जाने वाली शाही सैन्य में सम्मिलित हो।" कूटराजनीतिक यशवन्त ने औरङ्गजेब की यह बात मान ली और राठौरो की एक सुदृढ सैन्य के साथ वह शाही सैन्य में सम्मिलित हुए। औरङ्गजेब का पुत्र शाहजादा मुहम्मद इस शाही सैन्य का प्रधान सेनापति बनाया गया। प्रयागधाम से कोई पन्द्रह कोस उत्तर खोजवा स्थान में शुजा की सैन्य और शाही सैन्य के बीच युद्ध हुआ। युद्ध आरम्भ होते ही मारवाडपति अपने राठौरो को ले शाही सैन्य के पश्चाद्भाग पर टूट पड़े। शाही सैन्य का यह भाग पूर्ण रूप से नष्ट हो गया। इसे नष्ट कर और शाही सैन्य की छावनी तथा खजाना लूट सदलबल यशवन्त अपने देश की ओर वापस लौटे। राह मे वह शाही सैन्य की पराजय का अमूलक समाचार प्रकाश करते चले। कुछ दिनो के उपरान्त यशवन्त आगरे के समीप पहुंचे। उनके आगमन से आगरे में बड़ी हलचल मची। कितने ही लोगों का

कहना है, कि उस हलचल मे यशवन्त यदि चाहते तो आगरे पर अधिकार कर शाहेजहाँ को बन्धन मुक्त कर देते। किन्तु भारत और हिन्दुओ के लिये इस कार्य्य का कोई सुफल न देख यशवन्तसिंह आगरा प्रवेश न कर उसके समीप से निकल स्वदेश लौट गये और उन्हो ने लूट का धन अपने कोष मे सचित किया। एक बार फिर स्वदेश आने पर वह अभागे दारा को साहाय्य देने पर उद्यत हुए। किन्तु यशवन्त की यह इच्छा उनके मन ही मे रह गई; कारण, औरङ्गजेब ने सभल पहले शुजा को परास्त कर फिर दारा का सर्वनाश किया। इस तरह औरङ्गजेब और यशवन्त के बीच की शत्रुता का बीज अङ्कुरित हो और बढ़ एक वृक्ष मे परिणत हुआ।

फिर भी, औरङ्गजेब प्रबल पराक्रान्त महाराज यशवन्तसिंह से प्रकाश्य शत्रुता करने का साहस कर न सका। उसने एक बार फिर महाराज को वश करने का यत्न किया। उनके पास एक पत्र भेज कहा,—" जो हो गया, वह हो गया; भविष्यत् मे फिर ऐसा न हो। आप गुजरात के सूबेदार बनाये गये। मेरे पुत्र शाहजादे मुअज़्ज़म की फौज के साथ गुजरात जा काफिर शिवाजी को दण्ड दीजिये।" औरङ्गजेब का यह पत्र पा उन्हो ने गुजरात की सूबेदारी स्वीकार कर ली। उन्हो ने विचार किया, कि यह सूबेदारी स्वीकार कर मैं शिवाजी और महाराष्ट्र हिन्दुओं का बल बढ़ा दक्षिण को यवन—सम्राट् औरङ्गजेब के शासन—पाश से निकालने में साहाय्य दे सकूगा। महाराज ने अपने विचार के अनुसार ही कार्य्य किया; गुजरात पहुच छत्रपति शिवाजी से पत्र व्यवहार कर उन्हो ने हिन्दुओं के भाग्योदय

और मुसलमानो के नाश का पथ प्रशस्त किया। कितने ही लोगो का कहना है, कि महाराज यशवन्तसिंह के सङ्केत ही से शिवाजी के हाथो शाइस्ताखा मारा गया। महाराज यशवन्तसिंह और शिवाजी के इस गुप्त सम्बन्ध का समाचार जब औरङ्गजेब को मिला, तब उसने उनसे प्रत्यक्ष मे कुछ न कह कर भी उन्हें उनके पद से हटा महाराज जयसिंह को गुजरात का सूबेदार बनाया। महाराज जयसिंह शिवाजी को अभय दे औरङ्गजेब के पास दिल्ली लाये। दिल्ली में आ जयसिंह ने जब यह देखा कि औरङ्गजेब शिवाजी की हत्या किया चाहता है, तब उन्हों ने शिवा जी को दिल्ली से भगा दिया। इस घटना का समाचार पा औरङ्गजेब ने गुजरात की सूबेदारी जयसिंह से ले एक वार फिर महाराज यशवन्तसिंह को दी। यशवन्तसिंह ने देखा, कि शत्रु वाध्य हो एक बार फिर वश हुआ है; इस वार के भी इस सुअवसर से लाभान्वित होना चाहिये। दक्षिण का सूबेदार, औरङ्गजेब का पुत्र शाहजादा मुअज़्ज़िम, औरङ्गजेब के विरुद्ध बगावत किया चाहता था। महाराज यशवन्तसिंह का साहाय्य पा शाहजादा मुअज़्ज़िम प्रकाश्य रूप से बागी हो गया। यह देख औरङ्गजेब ने यशवन्तसिंह को एक वार फिर पदच्युत कर उनका पद ग्रहण करने के लिये अपने सेनापति दिलेरखा को दक्षिण भेजा। दिलेरखा अभी औरङ्गाबाद पहुचा था; ऐसे समय उसे समाचार मिला, कि शाहजादा मुअज़्ज़िम और यशवन्तसिंह की सम्मिलित सैन्य उसकी ओर आ रही है। यह समाचार पाते ही, वह यदि वापस न भागता, तो मारा जाता। दिलेरखा के वापस भागने पर यशवन्तसिंह

की ओर से औरङ्गजेब और भी चिन्तित हुआ। अन्त मे उसने यशवन्तसिंह के पास एक फरमान भेजा, जिसमें लिखा था, कि तुम दक्षिण परित्याग कर यथा सम्भव शीघ्र अपने सूबे गुजरात जाओ। यशवन्तसिंह दक्षिण से गुजरात पहुंचे। वहां पहुच उन्हो ने देखा कि उनसे औरङ्गजेब ने दगा की है; गुजरात—राजधानी अहमदाबाद में एक नया सूबेदार बैठा दिया है। यह देख सदलबल यशवन्तसिंह गुजरात से स्वदेश की ओर लौटे और सन् १६७० ई० मे मेवाड़ पहुंच गये। इस तरह औरङ्गजेब और यशवन्त सिंह के बीच की शत्रुता का वृक्ष महामहीरूह में परिणत हुआ।

इसके उपरान्त कई वर्ष तक उभय पक्ष की गति-विधि प्रकट न हुई; यशवन्तसिंह शान्ति पूर्वक मेवाड़ मे बैठे रहे; औरङ्गजेब विविध प्रयोजनीय कार्यों मे प्रवृत्त रह उनकी ओर उतना ध्यान दे न सका। अन्त मे यशवन्तसिंह की ओर औरङ्गजेब ने फिर ध्यान दिया और उन्हें बार-बार पत्र लिख मेवाड़ से दिल्ली बुलाया। महाराज यशवन्तसिंह के दिल्ली आने पर कई दिनो तक उनसे औरङ्गजेब ने भेंट न की। इसी अवसर में उस घोर अन्धकारमयी रजनी मे गुप्त घातकों ने महाराज पर आक्रमण किया। इसमें सन्देह नहीं, कि इस आक्रमण के फल से महाराज यदि मारे जाते, तो वह औरङ्गजेब से कभी भेंट कर न सकते। किन्तु ऐसा न हुआ। मुकुन्ददास ने यथा समय मेवाड़ से दिल्ली पहुच और घटनास्थल में उपस्थित हो महाराज की प्राण रक्षा की। इस घटना के दूसरे दिन औरङ्गजेब से भेंट हुई, जिसका विवरण ऊपर के परिच्छेद में प्रकाशित किया जा चुका है। पाठकों ने देखा होगा, कि इस भेंट के फल से

महाराज यशवन्तसिंह को दूर—अति दूर के ग्रव्वर अफगा-नस्थान की सूबेदारी दी गई और महाराज के मित्र वीरवर मुकुन्ददास के शेर के मुंह में जाने की व्यवस्था हुई। इस विवरण को पढ अब हमारे पाठक समझ गये होंगे, कि औरङ्गजेब और महाराज यशवन्तसिंह के बीच कैसी शत्रुता थी। मुकुन्ददास औरङ्गजेब के ऐसेही घोर शत्रु का परममित्र और सरदार था। फलत मुकुन्ददास की शेर द्वारा हत्या होने की जो व्यवस्था हुई उसका प्रधान कारण मुकुन्ददास का औद्धत्य नहीं, वर उसकी और यशवन्तसिंह की पारस्परिक-मैत्री थी। औरङ्गजेब की इस व्यवस्था की सूचना पाते ही यशवन्तसिंह और मुकुन्ददास दोनों इसका प्रधान कारण समझ गये थे। औरङ्गजेब के समीप से अपने महल लौट मुकुन्ददास को महाराज ने शेर का सामना करने से विरत होने के लिये बहुत कुछ समझाया; किन्तु उनके समझाने का कोई फल न हुआ। मुकुन्ददास ने अन्त तक यही कहा कि जो बात मेरे मुंह से निकल गई है, मैं उसके अनुसार ही कार्य्य करूंगा।

औरङ्गजेब ने अपने प्रतिज्ञानुसार उसी दिन सन्ध्या को सारी दिल्ली में ढिंढोरा फिरवा घोषणा करा दी, कि कल पशुओं की लड़ाई के अखाड़े में एक शेर और निरस्त्र मुकुन्ददास के बीच सामना होगा। इसी के साथ साथ अपने प्रधान पशुपालक को अपने सामने बुला उससे कहा, "जो बहुत बडा शेर हाल में वन से पकडा जाकर आया है, आज सन्ध्या को और कल प्रातःकाल उसे कुछ भी माँस न देना। कल तीसरे पहर उसे अखाड़े मे पहुंचाओ। निरस्त्र मुकुन्ददास से उसे सामना करना होगा।" जिस

लोगों ने इस मनुष्य-पशु-युद्ध का समाचार सुना, उन लोगों को विश्वास हो गया, कि मुकुन्ददास पर कुपित हो उसे औरङ्गजेब शेर के मुंह में डलवा रहा है। जिस मनुष्य पर औरङ्गजेब कुपित होता था, उसे नाना प्रकार की यन्त्रणा दे मरवाता था। किसी को साप से डसवाता था, किसी का अङ्ग प्रत्यङ्ग टुकडे टुकडे कराता था, किसी की खाल उतरवाता था, किसी को दीवार में चुनवाता था; किसी-किसी को छाती तक भूमि में गड़वा शिकारी कुत्तो से नुचवाता था। फलत मुकुन्ददास के इस तरह मरवाये जाने का समाचार पा लोगों को आश्चर्य न हुआ। हा, यह समाचार पा लक्ष-लक्ष मनुष्य क्षुधित व्याघ्र द्वारा मुकुन्ददास के मारे जाने का बीभत्स दृश्य देखने के लिये उत्सुक अवश्य हुए।

दूसरे दिन प्रात काल ही से किले के समीप का पशुओ की लड़ाई का चहारदीवारी से घिरा चन्द्राकार अखाड़ा शाही बेलदारो ने साफ करना आरम्भ किया। अखाड़ा साफ किया गया, अखाड़े के इहाते के ऊपर बनी साधारण दर्शको के बैठने की छत साफ की गई, इहाते के एक पार्श्व मे बनी सम्राट् के बैठने की सङ्गीन बारहदरी साफ की गई। इहाते की सब खिड़कियो के लोहे के सलाखो से बने द्वार बन्द कर दिये गये। सिर्फ प्रधान द्वार खुला रखा गया। अच्छा स्थान पाने के लिये मध्याह्न से पहले ही दिल्ली के साधारण लोग अखाड़े के इहाते की छत मे एकत्र होने लगे। मध्याह्न के उपरान्त लक्ष-लक्ष दर्शको से छत परिपूर्ण हो गई। इतने बड़े जन-समूह के बोलने से घोर कल-कल रव की सृष्टि हुई। अपराह्न से कुछ पहले दर्शको को डङ्के की ध्वनि सुन पड़ी। दर्शक समझ गये, कि औरङ्गजेब

आता है। अल्प समय के उपरान्त सदलबल औरङ्गजेब उस सङ्गीन बारहदरी में प्रविष्ट हो रत्नजटित एक कुरसी पर बैठा; उसके इर्द गिर्द अमीर उमरा तथा पीछे बहुसख्यक सशस्त्र शरीर-रक्षक सिपाही खडे हुए। औरङ्गजेब को देख दर्शकों ने उठ सलाम किया। दर्शको का कल-कल रव बहुत कुछ स्थगित हुआ। जो रह गया था, उसे चोबदारों और नकीबो की तीक्ष्ण 'अदब-अदब' ध्वनि ने मिटा दिया।

औरङ्गजेब के आने के उपरान्त पहियो पर रखा बहुत बडा एक लोह-पिञ्जर अखाडे में लाया गया। इसी मे शेर था। शेर के पालने वाले ने पिजरे पर चढ उसका द्वार ऊपर खींच लिया और फुरती से पिजरे से कूद अखाडे के फाटक के बाहर हो गया। अखाडे का फाटक बन्द कर दिया गया। क्षुधित शेर अपने पिजरे से बाहर निकला। लोगो ने देखा, कि बहुत बडा और अतीव हृष्ट-पुष्ट शेर है। दुम से नाक तक कोई बारह हाथ लम्बा होगा। पिजरे से निकल कुछ देर तक चारो ओर देख वह शेर उस दीवार के नीचे आ बैठा, जिस दीवार पर बारहदरी थी और जिस में औरङ्गजेब बैठा था। शेर के समीप आने पर उसे देख औरङ्गजेब ने कहा,—"कितना सुन्दर शेर है।"

एक मुसाहब—बहुत ही सुन्दर। शेर जैसा सुन्दर है, वैसा ही हृष्ट पुष्ट भी है।

औरङ्गजेब—अब विलम्ब क्यो हो रहा है?

दूसरा मुसाहब—जहापनाह! मुकुन्द अभी तक नहीं आया है।

औरङ्गजेब-(मुस्कुरा कर) कहीं क्षत्रिय अपने वादे से फिर तो नहीं गया?

ऐसे समय मानो औरङ्गजेव के व्यङ्ग का प्रत्युत्तर देने के लिये अखाड़े के प्रधान फाटक के समीप सहस्र-सहस्र मनुष्यों में कल—कल रव उत्थित हुआ। इसके उपरान्त ही लक्ष लक्ष दर्शकों ने कहा,—मुकुन्द-मुकुन्द। सचमुच ही यह मुकुन्ददास ही था। उसने अपने घोड़े से उतर अपने साथियों से विदा हो अखाड़े के फाटक के समीप पहुच उसके रक्षक सिपाहियों से द्वार खोलने के लिये कहा। मुकुन्ददास का भयङ्कर वेश देख फाटक के रक्षक सिपाही भीत हुए। उनके अफसर ने मुकुन्द से कहा,—"हुजूर! आज्ञा है-हुजूर हथियार।"

मारे भय के अफसर इससे आगे और कुछ कह न सका। उसकी बात असंलग्न और असम्पूर्ण होने पर भी उसके मन का भाव मुकुन्द समझ गया। उसने कहा,—" चुप बदतमीज! मेरे पास कोई हथियार नहीं, शीघ्र फाटक खोल।" मुकुन्द का भीषण कण्ठस्वर सुन अफसर और भी सन्त्रस्त हुआ। उसने मुकुन्द से और कुछ न पूछ अपने अधीनस्थ सिपाहियों से अखाड़े का फाटक खोलने के लिये कहा। फाटक खोला और उस से मुकुन्द के निकल जाने पर फिर वन्द कर लिया गया। अत्यन्त निर्भीक भाव से मुकुन्द ने उस अखाड़े मे प्रवेश किया। मुकुन्द को देखते ही लक्ष-लक्ष दर्शकों ने 'मुकुन्द-मुकुन्द' ध्वनि की।

आज मुकुन्द का आकार-प्रकार और ही था, परिच्छद भी और ही था। कल रात भर सुनिद्रा का सुख उपभोग कर आज प्रात काल उठ नित्य क्रिया और सन्ध्या जाप से निवृत हो, अन्यान्य दिवस की अपेक्षा अधिक कोई पाच घन्टे तक मुकुन्द ने व्यायाम किया था। व्यायाम से निवृत्त होने पर भोजन से पूर्व्व और उसके उपरान्त अधिक मात्रा से

मुकुन्द को 'कुसुम्भा' पान हुआ था। कुसुम्भे के तीव्र नशे से मुकुन्द के आकर्णविस्तृत नयन रक्ताभ हो गये थे; गौरवर्ण मुकुन्द का मुखमण्डल लाल हो गया था। उसने अपने बड़े बड़े बालों पर बहुत बड़ी पगड़ी खूब कस कर बांधी थी; ऊनी पायजामे और अङ्ग पर बहुत बड़ी चमड़े की एक रुयेंदार पोस्तीन पहनी थी। बहुत ही लम्बा एक दुशाला मुकुन्द की कमर में कसा हुआ था। मुकुन्द का दाहिना हाथ खुला हुआ था; बायें हाथ पर बहुत बड़ी एक रेशमी चादर लिपटी हुई थी। और दिनों मुकुन्द की लम्बी दाढ़ी कानो पर चढ़ी हुई रहती थी; आज वह खोली जाने के कारण मुकुन्द की छाती पर लहरा रही थी। मुकुन्द की बड़ी बड़ी मूछो ने खुली हुई दाढी को स्पर्श कर मुकुन्द के होंठो और मुह को बिलकुल ही छिपा दिया था। इसमें सन्देह नहीं, कि सर्व्वाकृति स्थूल-काय महाबल सम्पन्न मुकुन्द का यह रूप अत्यन्त त्रास-जनक था। आज मुकुन्द, मुकुन्द नही; एक किम्भूत-किमा-कार त्रासजनक जीव जान पड़ता था। अखाड़े में एकत्र लक्ष-लक्ष दर्शक मुकुन्द को देख यह स्थिर कर न सके, कि अधिक भय किस से करना चाहिये,—उस मासलोलुप नृशंस क्षुधित शेर से या इस भीषण दर्शन महाबल सम्पन्न रक्तकषायित लोचन मुकुन्द से।

अखाड़े में प्रवेश कर मुकुन्द ने शेर को देखा। उस समय भी वह औरङ्गजेब की बारहदरी के नीचे की दीवार से लगा बैठा था। अखाड़े के फाटक से शेर के बैठने का स्थान कुछ दूर था। धीर मन्थरगगित से चल मुकुन्द शेर के समीप पहुंचा। उस समय लक्ष-लक्ष दर्शको की दृष्टि मुकुन्द और

शेर की ओर थी। इतने बड़े जन-समूह से कोई भी शब्द उत्थित होता न था। दर्शक तन्मय हो निमिषशून्य लोचन से अपने सामने के उस नर और व्याघ्र दोनो को देख रहे थे।

मुकुन्द ने औरङ्गजेब को सामने पा सलाम किया और उस शेर की ओर बढा। उस से कोई पाच कदम के फासिले पर ठहर मुकुन्द ने गगनभेदी स्वर में कहा,—"ओ मियाँ के शेर! आ यशवन्त के शेर से सामना कर!" निस्तब्ध दर्शकमण्डली के प्रत्येक मनुष्य ने मुकुन्द की यह ललकार सुनी। इसे सुन हिन्दू मुस्कुराये, मुसलमानो के तेवर बदले।

मुकुन्द की यह ललकार सुन औरङ्गजेब के क्षुधित शेर ने अपना शिर उठा मुकुन्द की ओर देखा। मुकुन्द की आँखो से उसकी आँखे मिली। विविध घोर वन और असख्य गिरि-गह्वर में विचरण करने पर भी उस शेर ने ऐसी भीषण-मूर्त्ति इससे पहले देखी न थी। क्षुधा और अपने स्वाभाविक नृशस स्वभाव की निर्भीकता के कारण वह एक बार अपनी जगह चिपक कर बैठ मुकुन्द पर उछलने के लिये प्रस्तुत हुआ; किन्तु दूसरे ही क्षण उसकी निर्भीकता पर त्रास का प्रभाव पड़ा; वह जहा का तहा बैठा रह गया।

इधर मुकुन्द शेर को चिपक कर बैठा देख उससे द्वन्द्व करने पर प्रस्तुत हुआ। उसने पैतरा बदल रेशमी दुपट्टे से छिपा अपना बायाँ हाथ सामने किया। उसे अपने भुजबल पर पूर्ण विश्वास था। उसे निश्चय था, कि एक बार शेर को पकड़ते ही उसकी हड्डियाँ चूर्ण-विचूर्ण कर उसकी देह वह विदीर्ण कर डालेगा।

कुछ क्षण तक मुकुन्द ने इसी भाव से शेर के उछलने की प्रतीक्षा की। अन्त में शेर को स्थिर भाव से अपनी जगह

बैठा देख वह स्वयं उस पर आक्रमण करने के लिये धीरे-धीरे उसकी ओर अग्रसर हुआ । लक्ष-लक्ष नेत्रों ने अत्यन्त विस्मय पूर्व्वक एक वीर क्षत्रिय के एक क्षुधित शेर की ओर अग्रसर होने का अभूतपूर्व्व दृश्य देखा । शेर से कोई दो कदम के फासिले पर पहुंच मुकुन्द के वज्र निर्घोष जैसे स्वर मे कहा,—"ओ मियां के शेर ! सावधान !"

यह कह जैसे ही मुकुन्द शेर की ओर झपटा वैसे ही शेर इस पुरुष-सिंह के भय से भीत हो अपनी पिछली दोनों टांगो के बीच अपनी दुम दबा द्रुत गति से अपने पिंजरे की ओर भागा और यथासम्भव शीघ्र उसके समीप पहुंच उसमे घुस गया । उपस्थित जन-सागर से कलोल कोलाहल उत्थित हुआ, लक्ष-लक्ष मनुष्यो ने उच्च स्वर से 'धन्य मुकुन्द' 'वाह मुकुन्द' आदि वाक्य कहे ।

शेर के भागते ही एक क्षण के लिये औरङ्गजेब अप्रतिभ हुआ । उसी समय मुकुन्द ने औरङ्गजेब की ओर देख अत्यन्त उच्च स्वर से कहा,—"रण-विमुख शत्रु पर प्रहार करना क्षत्रियो के लिये धर्म्म्य नही; आप का शेर रण विमुख हुआ है; इसलिये अब मैं उस पर आक्रमण किया नहीं चाहता ।"

मुकुन्द के बोलते ही दर्शक-मण्डली ने एक बार फिर निस्तब्ध हो मुकुन्द के मुंह का निकला एक-एक शब्द सुना। औरङ्गजेब ने भी मुकुन्द की बात सुनी । उसने मन का क्षोभ मन में ही दबा अपने समीप के एक नकीब से कुछ बातें कही । नकीब ने बारहदरी के छोर पर पहुंच दर्शक-मण्डली को सम्बोधन कर कहा,—"आज का यह खेल समाप्त हुआ । मुकुन्द का बल-विक्रम देख मुकुन्द पर सम्राट् अत्यन्त सन्तुष्ट

हुए हैं। अपना यह सन्ताप प्रकाश करने के लिये इस समय मुकुन्द को सम्राट् ने 'नाहर खा' उपाधि दी है। सम्राट् की आन्तरिक कामना है, कि आज से मुकुन्ददास, मुकुन्द-दास नहीं, नाहरखाँ प्रसिद्ध हो।"

ऐसा ही हुआ। इस ऐतिहासिक घटना के दिन से इस ऐतिहासिक पुरुष का नाम परिवर्त्तित हुआ, मुकुन्द-दास नाहरखा हो गया। नकीब ने जैसेही यह घोषण समाप्त की, वैसे ही औरङ्गजेब अपनी कुरसी से उठा और अपने दलबल के साथ बारहदरी से चला गया। औरङ्गजेब के जाते ही दर्शक भी अपना स्थान परित्याग करने लगे। शेर पिंजरे में तो था ही, उसका द्वार गिरा उसमें एक बार फिर बन्द किया और अखाड़े से हटाया गया।

औरङ्गजेब के जाने के उपरान्त मुकुन्द उर्फ नाहरखा अपनी जगह चुपचाप खड़ा था; ऐसे समय महाराज यश-वन्तसिंह के भेजे कितने ही सरदारों ने उसका घोड़ा उसके पास पहुंचाया और मृत्यु-मुख से रक्षा पाने पर उसे बधाई दी। नाहर अपने घोड़े पर सवार हो महाराज के सरदारों और अपने साथी सवारो से घिर उस अखाड़े से महाराज के महल की ओर गया।

चतुर्थ परिच्छेद।

यह कौन है?

जिस दिन मुकुन्द और शेर के बीच सामना हुआ, उसके दूसरे दिन प्रातःकाल मदलबल महाराज यशवन्तसिंह दिल्ली से चले गये। एक सुदृढ़ शाही फौज और काबुल की सूबेदारी की सनद पा उन्हों ने औरङ्गजेब को लिख भेजा

था,—" मेरे अधीन जो शाही फौज है, वह दिल्ली से लाहौर जा ठहरेगी, मै दिल्ली से स्वदेश जाऊगा और वहा अपने ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीसिंह को मेवाड़ का शासन—भार दे अपने दोनो कनिष्ठ पुत्रो और महल के साथ लाहौर पहुच, वहाँ ठहरी शाही फौज से मिलूगा। यह फौज ले यथासम्भव शीघ्र काबुल पहुच वहां पूर्ण शान्ति स्थापित करूगा।" इस पर औरङ्गजेब ने महाराज से कहलाया था,—" आपने काबुल जाने की जो व्यवस्था की है, उसके सम्बन्ध में मै कोई आपत्ति किया नहीं चाहता। आप जैसा उचित समझिये कीजिये। मै सिर्फ इतना ही चाहता हू, कि काबुल मे यथासम्भव शीघ्र शान्ति स्थापित की जाये। आप से मेरा एक अनुरोध है। वह यह कि आप स्वदेश परित्याग करने से पहले राज्यशासन-भार प्राप्त अपने ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीसिंह से कह जाये, कि वह राज्य शासन-सम्बन्धीय आरम्भिक व्यवस्था सम्पन्न करते ही एक बार दिल्ली आ मुझे सलाम कर मेरी दी खिलअत पहन जायें।" किसी नये देशी नरेश के राज्यभार ग्रहण करने पर औरङ्गजेब की सेवा में उपस्थित हो उसे भेंट देने और उस से खिलअत लेने का उस समय नियम था, इसलिये औरङ्गजेब की यह बात सुन मेवाड़पति ने, अपने ज्येष्ठ पुत्र को यथासम्भव शीघ्र दिल्ली भेजने का वादा किया। इन सब बातो के होने के उपरान्त मेवाड़पति महाराज यशवन्त दिल्ली से चले गये। महाराज की इस यात्रा से एक और स्वय मेवाड़पति दूसरी ओर औरङ्गजेब निश्चिन्त हुआ।

मुकुन्ददास उर्फ नाहरखा अपने मित्र मेवाड़पति के साथ दिल्ली परित्याग कर न सका था। दिल्ली परित्याग

करने से पहले मुकुन्द को अपने कितने ही प्रयोजनीय कार्य्य बता महाराज यशवन्तसिंह ने कहा था,—"इन सब कार्यों को सम्पन्न करते ही मुकुन्द! तुम एक बार अपने घर जा वहा से मेरे पास काबुल आना। मै तुम्हें अपने साथ ले जाता, इन प्रयोजनीय कार्यों के सम्पन्न करने के लिये विवश हो यहा छोड़ चला हू। यह याद रखना, कि जब तक तुम काबुल न पहुचोगे, तब तक मैं अतीव चिन्ता पूर्व्वक तुम्हारी मार्ग-प्रतीक्षा करता रहूगा।" फलत यशवन्तसिंह के जाने पर भी मुकुन्द दिल्ली ही मे था और महाराज के परामर्शानुसार यथासाध्य औरङ्गजेब की दृष्टि से बचता रहता था। दिन को सरकारी कार्य्यालय में जा सहकारी कर्म्मचारियो से मिल महाराज का राज्यकार्य्य-सम्बन्धीय कार्य्य सम्पादन करता और सन्ध्या को अपने घोड़े पर सवार हो वायु सेवन के लिये नगर के बाहर एकान्त मैदान मे चला जाता था।

एक दिन सन्ध्या समय मुकुन्द अपने घोड़े पर सवार दिल्ली के बाहर एकान्त मे बने एक बाग के समीप से जा रहा था, ऐसे समय बाग में बने एक मकान से किसी स्त्री के चीत्कार की ध्वनि उसे सुनाई दी। ध्वनि अत्यन्त करुणा-व्यञ्जक थी। उसे सुन मुकुन्द ने अपना घोड़ा रोक लिया। इसके उपरान्त ही उसे किसी पुरुष का अत्यन्त कर्क्कश कण्ठ-स्वर और इसके उपरान्त एक बार फिर वही करुणा-व्यञ्जक रमणी-कण्ठ-ध्वनि सुनाई दी। यह ध्वनि एकाएक रुक गई। ऐसे समय क्षीणकाय विचित्र आकृति और परिच्छद का एक युवक द्रुत गति से एक ओर से आ नाहर के घोड़े के समीप खड़ा हुआ। नाहर से उसने पूछा,—"इस बाग के इस

मकान से किसी स्त्री की चीत्कार—ध्वनि हुई है; क्या तुमने भी सुनी है?"

नाहर—सुनी है।

युवक—इसके सम्बन्ध में क्या तुम कोई बात बता सकते हो?

नाहर—नही। मैं स्वय जानना चाहता हूं, कि यह चीत्कार-ध्वनि किसने और क्यों की?

युवक—तब तुमसे इसके सम्बन्ध में बातें करना व्यर्थ है।

यह कह वह युवक द्रुत गति से बाग के फाटक की ओर चला। कौतुक-वश उसका मुकुन्द ने अनुसरण किया। बाग के फाटक के सामने पहुच मुकुन्द ने देखा, कि वहा कठोर पहरे की व्यवस्था है; कितने ही मुसलमान सिपाही नङ्गी तलवारें लिये फाटक के बाहर और भीतर घूम रहे थे। मुकुन्द से आगे पहुंचने वाले उस युवक ने एक सिपाही के समीप पहुच पूछा,—"यह बाग किसका है?"

सिपाही—भारत-सम्राट् औरङ्गजेब के मुसाहिब जुल्फिकारखाँ का।

युवक—क्या जुल्फिकारखां बाग में मौजूद है?

सिपाही—हा मौजूद है।

युवक—उनसे कहो, कि मै उनसे भेंट किया चाहता हूं।

सिपाही—इस समय उनसे कोई भी भेंट कर नही सकता।

युवक—क्यो?

सिपाही—उनकी आज्ञा ही ऐसी है।

युवक—अच्छा, अब से कुछ क्षण पहले इस बाग के मकान से किसी स्त्री की चीत्कार—ध्वनि हुई है। यह ध्वनि किस स्त्री ने और क्यों की?

युवक की यह बात सुनते ही वह सिपाही चुप हो गया। चुप होने के साथ—साथ उसके साथी सिपाहियो की तरह उसकी भी देह स्पन्दन रहित हुई। और तो क्या; चीत्कार करने के लिये उसने अपना मुह जितना खोला था, वह उतनाही खुला रह गया। सिपाही को इसी अवस्था में छोड उस युवक ने आगे बढ उन दोनों कोठरियो के बीच का परदा हटा पहली कोठरी से दूसरी कोठरी में प्रवेश किया। यह दूसरी कोठरी बडे ही बहुमूल्य सामान से सजी थी। इसके सङ्गमरमर के फर्श पर दरी थी और चादनी। उसके ऊपर एक बहुमूल्य मोटा ऊनी कालीन बिछा था, जिस पर मखमली मसनद और कई तकिये रखे थे। चमकीली दीवारो और छत पर रङ्ग—बरङ्गे बेल—बूटे बने थे, जिनमें स्थान-स्थान में सोने-रूपे का काम किया हुआ था। दीवारो से कितने ही दीवारगीर और छत से कितने ही फानूस लगे थे। इन मे दो फानूस जल रहे थे। इस कोठरी से आगे और एक कोठरी थी। उसके खुले हुए द्वार से उसके भीतर की अवस्था दिखाई देती थी। वह कोठरी और कुछ नही; अत्यन्त सुसज्जित एक शयनागार थी।

इस दूसरी कोठरी में बहुमूल्य पोशाक पहने स्थूलकाय एक मुसलमान मसनद से लगा बैठा था। उसके सामने दो ख्वाजासरा खडे थे। दोनों ख्वाजासराओ के समीप अत्यन्त सुन्दरी एक स्त्री मूर्च्छितावस्था मे पड़ी थी। उसके वस्त्रादि से जान पडता था, कि वह मुसलमान नही, हिन्दू थी। वह स्थूलकाय मुसलमान उन दोनो ख्वाजासराओ को सम्बोधन कर कुछ कहा चाहता था; ऐसे समय इस कोठरी का परदा हटा वह युवक इस कोठरी मे आ खडा हुआ। उसे

ऊपर की मञ्जिल की वही सीढी थी । उसके नीचे चबूतरे पर नङ्गी तलवारें लिये दो सिपाही टहल रहे थे । उस अपरिचित युवक को एकाएक अपने सामने पा वह दोनों सिपाही आश्चर्य्यान्वित हुए। उन में एक ने अपने कन्धे पर की रखी तलवार कन्धे से उठा सीधी की, दूसरे ने ललकार कर पूछा,–"कौन है ?–कहाँ जाता है ?"

उन सिपाहियो की ओर उस युवक ने अधिक ध्यान न दिया। उनके समीप पहुंच उसने अपने दाहने हाथ की तर्ज्जनी अपने होंठ से लगा केवल इतना ही कहा,–"चुप–चुप ।" उसकी यह बात सुनते ही वह दोनों सचमुच ही चुप हो गये । एक क्षण में उनका मुह बन्द हुआ,—उनकी देह स्पन्दनविहीन हुई । उनके बीच से निकल वह युवक ऊपर जाने वाली उस सीढी पर चढा ।

नीचे की मञ्जिल की बारहदरी के ऊपर बनी कई बहुत बडी कोठरियो से पहली कोठरी के द्वार तक पहुंच वह सीढी समाप्त हुई थी । उस युवक ने वह सीढी समाप्त कर उस कोठरी में प्रवेश किया । वहा एक बडा फानूस जल रहा था और उसके प्रकाश मे एक सिपाही नङ्गी तलवार लिये खडा था। उस पहली और दूसरी कोठरी के बीच एक ऊनी रङ्गीन परदा पडा था। दूसरी कोठरी के प्रज्वलित प्रदीप के प्रकाश की रश्मिया उस गुरुभार बहुमूल्य परदे पर पड रही थी । उस युवक को अपने सामने पा उस कमरे का खडा सिपाही केवल चौंक ही नही पडा, साथ-साथ उसने चीत्कार करने के लिये मुह खोला। ऐसे समय उस युवक ने दाहने हाथ की वही तर्ज्जनी एक बार फिर उठा एक बार फिर कहा,—"चुप-चुप ।"

युवक की यह बात सुनते ही वह सिपाही चुप हो गया। चुप होने के साथ—साथ उसके साथी सिपाहियों की तरह उसकी भी देह स्पन्दन रहित हुई। और तो क्या; चीत्कार करने के लिये उसने अपना मुह जितना खोला था, वह उतनाही खुला रह गया। सिपाही को इसी अवस्था में छोड़ उस युवक ने आगे बढ़ उन दोनों कोठरियों के बीच का परदा हटा पहली कोठरी से दूसरी कोठरी में प्रवेश किया। यह दूसरी कोठरी बड़े ही बहुमूल्य सामान से सजी थी। इसके सङ्गमरमर के फर्श पर दरी थी और चादनी। उसके ऊपर एक बहुमूल्य मोटा ऊनी कालीन बिछा था, जिस पर मखमली मसनद और कई तकिये रखे थे। चमकीली दीवारों और छत पर रङ्ग—बरङ्गे बेल—बूटे बने थे, जिनमें स्थान स्थान में सोने-रूपे का काम किया हुआ था। दीवारो से कितने ही दीवारगीर और छत से कितने ही फानूस लगे थे। इन में दो फानूस जल रहे थे। इस कोठरी से आगे और एक कोठरी थी। उसके खुले हुए द्वार से उसके भीतर की अवस्था दिखाई देती थी। वह कोठरी और कुछ नही; अत्यन्त सुसज्जित एक शयनागार थी।

इस दूसरी कोठरी में बहुमूल्य पोशाक पहने स्थूलकाय एक मुसलमान मसनद से लगा बैठा था। उसके सामने दो ख्वाजासरा खड़े थे। दोनों ख्वाजासराओं के समीप अत्यन्त सुन्दरी एक स्त्री मूर्च्छितावस्था में पड़ी थी। उसके वस्त्रादि से जान पड़ता था, कि वह मुसलमान नही; हिन्दू थी। वह स्थूलकाय मुसलमान उन दोनो ख्वाजासराओं को सम्बोधन कर कुछ कहा चाहता था ; ऐसे समय इस कोठरी का परदा हटा वह युवक इस कोठरी मे आ खड़ा हुआ। उसे

देख वह स्थूलकाय मुसलमान पहले चौंका; फिर अपनी जगह से उठ खड़ा हुआ। अपने सामने खड़े उस युवक को कुछ देर तक देखने के बाद उसमें उसने पूछा,—"तू कौन है?"

युवक-(मुस्कुरा कर) देखता ही तो है, कि मनुष्य हूं।

मुसलमान—यहां क्यों और कैसे आया?

युवक-अवश्य ही तुझ से मिलने या निष्प्रयोजन नहीं आया हूं। एक आवश्यक कार्य्य के लिये मेरा यहां आना हुआ है।

मुसलमान—क्या मेरे सिपाहियों ने तेरे रोकने का कोई यत्न न किया?

युवक—किया था।

मुसलमान—तब तू यहां कैसे आ सका?

युवक—तेरे सिपाही मेरे रोकने का यत्न करके भी मुझे रोक न सके। तेरे सिपाहियों में मेरे रोकने की क्षमता नहीं।

युवक का गम्भीर भाव और इसकी यह बातें सुन वह मुसलमान कुछ विस्मित और कुछ क्रुद्ध हुआ। कुछ चिन्ता कर अन्त में उसने कहा,—"तुझे मालूम है, कि इस समय तू किसके सामने है?"

युवक—काम, क्रोध और लोभ के मद से अन्धे एक तुच्छ यवन के सामने।

मुसलमान—बदमाश! तुझे खबर नहीं, कि तू किसके सामने है। मेरा नाम जुलफिकार खां है। मैं इस बाग का मालिक और शाहनशाह औरङ्गजेब का मुसाहिब हूं। मेरे जरा से इशारे पर तेरी और तेरे जैसे हजारों काफिरों की गरदनें काटी जा सकती हैं।

युवक—होगा।

जुलफिकार—(क्रोध से चीत्कार कर) क्या तुझे अपने प्राण का भय नहीं ?

युवक-(आगे बढ और जुलफिकार के समीप पहुंच) यही प्रश्न तुझ से मै किया चाहता था।

जुलफिकार—(अपनी तलवार म्यान से निकाल कर) समय देख कर इस बात को मैं यहा तक बढाया न चाहता था। किन्तु जब तू अपने प्राण से हाथ धो चुका है, तब तेरी रक्षा का कोई प्रयोजन दिखाई नही देता।

युवक—(अत्यन्त घृणा से) रे बर्बर, यवन ! यदि तुझे अपना जीवन प्रिय है, तो अपनी तलवार फेंक दे और मेरी बातों का प्रत्युत्तर प्रदान कर।

क्षुब्ध सागर, शान्त हुआ,–अग्नि की जगह सुशीतल सलिल का प्रादुर्भाव हुआ;–उस युवक की यह बात सुन और उसके नेत्रो की निकलती ज्योति देख जुलफिकार का सर्वाङ्ग थर-थर काप गया। उसने अपने हाथ की नङ्गी तलवार फेंक दी और उस युवक की आंखो से अपनी आँखें हटा नीची कर ली।

युवक—जुलफिकार !

जुलफिकार—क्या ?

युवक–जो सुन्दरी स्त्री यहा पड़ी है, अब से अल्प समय पहले दो बार क्या उसी ने चीत्कार किया था ?

जुलफिकार–हा।

युवक–उस स्त्री का मैं सविस्तार वर्णन सुना चाहता हू। यह सुन जुलफिकार ने एक दीर्घ निश्वास परित्याग किया और अपनी दोनो आँखे अपने दोनो हाथो से मलने लगा।

युवक—(जुलफिकार को कुछ क्षण तक देख कर) इस

में सन्देह नहीं, कि तू अतीव कठोर हृदय है। अच्छा; मैं प्रश्न करता हूं; तू उनके उत्तर दे। उस स्त्री का नाम क्या है?

जुलफिकार–उर्व्वशी।

युवक–अब से पहले वह कहां और किसकी रक्षा में थी?

जुलफिकार–इलाहाबाद के समीप मेरी जागीर है। उस में कन्दर्पसिंह नामक एक जमीन्दार है। उर्व्वशी उसी की पुत्री है और वह अब से पहले अपने पिता की रक्षा में उसके पास थी।

युवक–क्या उर्व्वशी का विवाह हो चुका है?

जुलफिकार–नहीं। मैने बाधा दे उर्व्वशी का विवाह होने न दिया।

युवक–तूने यह बाधा क्यों दी?

जुलफिकार–बात यह है, कि अब से कोई दो वर्ष पहले कन्दर्पसिंह के ग्राम में एक दिन सुजाताङ्गी सुकुमारी उर्व्वशी को मैंने एकाएक देख लिया। उसे देख मेरे मन में आया कि वह किसी काफिर के घर में रहने लायक नहीं; उसकी शोभा से भारत-सम्राट् का महल प्रकाशित होना चाहिये।

युवक–इसके बाद क्या हुआ?

जुलफिकार–इसके बाद यह हुआ, कि घोर दुर्भिक्ष उपस्थित होने की वजह कन्दर्पसिंह अपनी भूमि का खजाना जमा कर न सका; इस पर उसे मैंने गिरफ्तार करा लिया। एकान्त मे उससे मैंने कहा, कि यदि वह अपनी कन्या उर्व्वशी को शाही महल मे भेजना स्वीकार करेगा, तो उस की उस वर्ष और आगामी चार वर्ष, कुल पाँच वर्ष की माल-गुजारी माफ कर दी जायेगी और यदि वह इस बात से असम्मत होगा, तो अपनी जमीन्दारी और उर्व्वशी दोनों

से हाथ धो बैठेगा।

युवक—इस पर कन्दर्पसिंह ने क्या उत्तर दिया?

जुलफिकार—कन्दर्पसिंह विलासी है; इस लिये क्षत-वीर्य्य है। एक विवाहिता और कोई बीस अविवाहिता स्त्रियों का स्वामी है। उर्व्वशी उसी एक विवाहिता स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुई है। फलत विलासी कन्दर्प ने पहले अनुनय—विनय कर मुझे अपना यह प्रस्ताव वापस लेने के लिये कहा। यह भी कहा, कि उर्व्वशी की मंगनी समीप के एक जमीन्दार के पुत्र लक्ष्मणसिंह के साथ हो गई है, इसलिये उसे वह शाही महल में भेज नहीं सकता। किन्तु मेरे अपने प्रस्ताव पर अटल—अचल रहने की वजह अन्त में कन्दर्प मेरे प्रस्ताव पर सम्मत हो गया। इसके उपरान्त उससे मैंने कहा कि वह उर्व्वशी का विवाह न कर उसे शाही धन समझ उसकी रक्षा करे; सुअवसर पा उर्व्वशी को मैं दिल्ली ले जा औरङ्गजेब को दूगा। उससे मैंने यह भी कह दिया, कि उर्व्वशी के सम्बन्ध की यह व्यवस्था गुप्त रखी जाये, उसके शाही महल में प्रविष्ट होने से पहले इस व्यवस्था का समाचार किसी को दिया न जाये।

युवक—अहो, भारत-ललना-कुल! तुम्हारा इतना पतन? (जुलफिकार से) इसके उपरान्त उर्व्वशी यहा कैसे आई?

जुलफिकार—इसके उपरान्त अब से कोई एक वर्ष पहले सुअवसर देख उर्व्वशी का समाचार मैने औरङ्गजेब को दिया। उन्हो ने कृपापूर्व्वक दासीरूप में उर्व्वशी को अपने महल में ले लेना स्वीकार किया। औरङ्गजेब की यह स्वीकारोक्ति सुन उर्व्वशी को लाने के लिये मैं स्वय उसके ग्राम गया। कन्दर्पसिंह उर्व्वशी को ले मेरे साथ दिल्ली आया। ऍं?

में सन्देह नहीं, कि तू अतीव कठोर हृदय है। अच्छा; मैं प्रश्न करता हूं; तू उनके उत्तर दे। उस स्त्री का नाम क्या है?

जुलफिकार—उर्वशी।

युवक—अब से पहले वह कहां और किसकी रक्षा में थी?

जुलफिकार—इलाहाबाद के समीप मेरी जागीर है। उस में कन्दर्पसिंह नामक एक जमीन्दार है। उर्वशी उसी की पुत्री है और वह अब से पहले अपने पिता की रक्षा में उसके पास थी।

युवक—क्या उर्वशी का विवाह हो चुका है?

जुलफिकार—नहीं। मैंने बाधा दे उर्वशी का विवाह होने न दिया।

युवक—तूने यह बाधा क्यों दी?

जुलफिकार—बात यह है, कि अब से कोई दो वर्ष पहले कन्दर्पसिंह के ग्राम में एक दिन सुजाताङ्गी सुकुमारी उर्वशी को मैंने एकाएक देख लिया। उसे देख मेरे मन में आया कि वह किसी काफिर के घर में रहने लायक नहीं; उसकी शोभा से भारत-सम्राट् का महल प्रकाशित होना चाहिये।

युवक—इसके बाद क्या हुआ?

जुलफिकार—इसके बाद यह हुआ, कि घोर दुर्भिक्ष उपस्थित होने की वजह कन्दर्पसिंह अपनी भूमि का खजाना जमा कर न सका; इस पर उसे मैंने गिरफ्तार करा लिया। एकान्त में उससे मैंने कहा, कि यदि वह अपनी कन्या उर्वशी को शाही महल में भेजना स्वीकार करेगा, तो उसकी उस वर्ष और आगामी चार वर्ष, कुल पाँच वर्ष की मालगुजारी माफ कर दी जायेगी और यदि वह इस बात से असम्मत होगा, तो अपनी जमीन्दारी और उर्वशी दोनों

से हाथ धो बैठेगा।

युवक—इस पर कन्दर्पसिंह ने क्या उत्तर दिया?

जुलफिकार—कन्दर्पसिंह विलासी है, इस लिये क्षत-वीर्य्य है। एक विवाहिता और कोई बीस अविवाहिता स्त्रियों का स्वामी है। उर्व्वशी उसी एक विवाहिता स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुई है। फलत विलासी कन्दर्प ने पहले अनुनय—विनय कर मुझे अपना यह प्रस्ताव वापस लेने के लिये कहा। यह भी कहा, कि उर्व्वशी की मंगनी समीप के एक जमीन्दार के पुत्र लक्ष्मणसिंह के साथ हो गई है; इसलिये उसे वह शाही महल में भेज नही सकता। किन्तु मेरे अपने प्रस्ताव पर अटल—अचल रहने की वजह अन्त में कन्दर्प मेरे प्रस्ताव पर सम्मत हो गया। इसके उपरान्त उससे मैने कहा कि वह उर्व्वशी का विवाह न कर उसे शाही धन समझ उसकी रक्षा करे; सुअवसर पा उर्व्वशी को मै दिल्ली ले जा औरङ्गजेब को दूंगा। उससे मैंने यह भी कह दिया, कि उर्व्वशी के सम्बन्ध की यह व्यवस्था गुप्त रखी जाये, उसके शाही महल में प्रविष्ट होने से पहले इस व्यवस्था का समाचार किसी को दिया न जाये।

युवक—अहो, भारत-ललना-कुल! तुम्हारा इतना पतन! (जुलफिकार से) इसके उपरान्त उर्व्वशी यहां कैसे आई?

जुलफिकार—इसके उपरान्त अब से कोई एक वर्ष पहले सुअवसर देख उर्व्वशी का समाचार मैंने औरङ्गजेब को दिया। उन्हो ने कृपापूर्व्वक दासीरूप में उर्व्वशी को अपने महल में ले लेना स्वीकार किया। औरङ्गजेब की यह स्वीकारोक्ति सुन उर्व्वशी को लाने के लिये मैं स्वयं उसके ग्राम गया। कन्दर्पसिंह उर्व्वशी को ले मेरे साथ दिल्ली आया। उर्व्वशी

को इस बात की सूचना दी न गई, कि वह कहाँ और किस लिये जाती है। उर्व्वशी और उसके पिता को मैंने अपने दिल्ली के मकान मे ठहरा उर्व्वशी के आने की सूचना सम्राट् को दी। सम्राट् ने उर्व्वशी को आज इस बाग में पहुंचाने की आज्ञा दी। यह भी कहा, कि आज सन्ध्योपरान्त उर्व्वशी को देखने वह इस बाग में आयँगे। अब से कोई दो घण्टे पहले उर्व्वशी को उसका पिता इस बाग की इस कोठरी में पहुंचा दिल्ली वापस गया। जाते समय उर्व्वशी से कह गया, कि तू यहा बैठ तेरे पास मैं शीघ्र ही लौट आऊगा।

युवक—अब से कुछ समय पहले उर्व्वशी ने चीत्कार क्यों किया और वह इस समय मूर्च्छितावस्था में क्यों पड़ी है?

जुलफिकार—उर्व्वशी के पिता के जाने के उपरान्त इस कमरे में प्रवेश कर उससे मैंने उसके सम्बन्ध का यथार्थ विषय प्रकट कर अन्त में कहा, कि तू भारत-सम्राट् औरङ्गजेब से भेंट करने के लिये प्रस्तुत हो जा।

युवक—तब-तब?

जुलफिकार—तब इस दुष्टा ने अपने मुह से मुसलमान-धर्म के सम्बन्ध मे कुफ्र की बाते निकाली और भारत-सम्राट् को अपमान व्यञ्जक शब्दों मे स्मरण किया। इस पर उसे मैने जब धमकाया तब उसने वह प्रथम चीत्कार किया। इसके उपरान्त उसने, इस कोठरी से भागने का उपक्रम किया। यह देख इन दोनो ख्वाजासराओ ने उसे बलपूर्व्वक पकड़ लिया। इस तरह पकड़ी जा उसने वह दूसरा चीत्कार किया। उस दूसरे चीत्कार की समाप्ति के साथ-साथ वह अचेत हो गिर पड़ी। उसकी यह अवस्था देख उसे चैतन्य करने के सम्बन्ध में मैं इन दोनो ख्वाजा-

सराओ से बातचीत कर रहा था, ऐसे समय तूने इस कोठरी मे प्रवेश किया। (एक दीर्घ विश्वास परित्याग कर) ओ दीन का दुश्मन ! तू कौन है? तूने मुझ पर यह कैसा जादू डाला है ! मेरा वीरत्व कहाँ गया,-मेरी शक्ति कहा गई ! मै तेरा ऐसा गुलाम कैसे बन गया ? (पृथ्वी पर पैर पटक कर) मेरे साहस ! तू कहां है !

युवक—(चिन्तापूर्वक कुछ समय तक जुलफिकार को देख कर) आध्यात्मिक शक्ति से अनभिज्ञ विषय-वासना-विमुग्ध दुर्वुद्धि जीव ! तूने यदि अपने को केवल मर्म्मचक्षु से देखने का कुछ भी अभ्यास किया होता, तो आज अपनी ऐसी दशा देख तुझे इतना आश्चर्य-चकित होना न पड़ता।

जुलफिकार—ओ काफिर ! तुझ से मेरी प्रार्थना है, कि अब तू यहा से चला जा। भारत-सम्राट् औरङ्गजेब के आने का समय हो गया है, वह यदि आ जायँगे, तो एक ओर उनके आनन्द मे विघ्न उपस्थित होगा, दूसरी ओर तेरी रक्षा किसी तरह भी हो न सकेगी।

युवक—रे बर्ब्बर ! तू मेरी रक्षा की इतनी चिन्ता न कर। तेरी तरह मै भी यही चाहता हूं, कि यहा न ठहर चला जाऊं। किन्तु जाने से पहले मै एक काम किया चाहता हूं। मेरा पहला काम इस स्त्री के चीत्कार का कारण जानना सम्पन्न हो चुका है। अब मै एक दूसरा काम किया चाहता हूं।

जुलफिकार-(भयभीत हो) तेरा दूसरा काम क्या है?

युवक-तेरे भारत-सम्राट् औरङ्गजेब के आने का समय क्या है?

युवक के इस प्रश्न का उत्तर जुलफिकार दिया चाहता

देखू। मुझे और मेरे पहरेदारों को इस शैतान की शैतानी से बचाइये।

औरङ्गजेब—(उस युवक की ओर देखकर) तू कौन है?

युवक—मनुष्य।

औरङ्गजेब—यहां किस लिये आया?

युवक—इस स्त्री की चीत्कारध्वनि सुन चला आया।

औरङ्गजेब—जान पडता है, कि तू पागल है; (अपने ख्वाजासरा की ओर देखकर) काफूर! इस पागल को इस बाग के बाहर निकाल दे।

काफूर के आकार प्रकार से जान पड़ा, मानो वह यह आज्ञा पाने के लिये विह्वल था। इसे पाते ही उसने एक हाथ अपनी तलवार के कब्जे पर रखा और दूसरा हाथ फैला उस युवक की गरदन पकड़ने के लिये अग्रसर हुआ।

वह युवक तनिक भी विचलित न हुआ। अत्यन्त शान्त भाव से उसने काफूर की ओर देख कहा,—"कहाँ बढ़ा आता है; बदतमीज, गुलाम! पीछे हट कर अदब से खड़ा हो,—यह अदब की जगह है।"

औरङ्गजेब ने देखा; उस कोठरी के सब मनुष्यों ने देखा, कि युवक के मुह से पूर्वोक्त आदेश निकलते ही काफूर के मुह का रङ्ग श्वेत हो गया और वह तड़ित प्रवाहाहत मनुष्य की तरह पेच खाता उस युवक से दूर हट खड़ा हो गया।

यह देख औरङ्गजेब भीत भी हुआ, चकित भी हुआ। उसने अपना दाहिना पञ्जा अपनी कमर से लगे उस पेशंकब्ज के दस्ते पर डाला और शैतान से त्राण देने वाली क़ुरान की आयत 'ला हौल व ला क़ूवत' इत्यादि पढ़

पढ कर अपने मुह से अपनी छाती और अपनी भुजाओ पर फूकें मारने लगा।

औरङ्गजेब की यह दशा देख उस युवक ने उच्च स्वर से हास्यकर कहा,—" रे यवन-सम्राट् ! तू अपनी प्राण रक्षा के लिये इतना अधीर न हो । यद्यपि इस समय तू मेरे वश है और तुझे मै उसी तरह मार सकता हू, जिस तरह कोई स्फीत केशर केशरी किसी मृग को मार सकता है ; तथापि जब तक तू स्वय अपनी किसी दुष्टता से मेरे द्वारा मृत्यु का आह्वान न करेगा, तब तक मैं तेरा बध न करूंगा । हिन्दू-शास्त्र राजवध की आज्ञा नही देता। हिन्दू—शास्त्र की इस निषेधाज्ञा का उद्देश्य यह है, कि पापिष्ठ राजा को पाप-कवलित होने के लिये छोड देना चाहिये ; पापिष्ठ राजा का पाप केवल उस राजा ही को नहीं,—उसके परिवार को भी किसी न किसी समय समूल नष्ट कर देता है।"

औरङ्गजेब—(बडा साहस कर) मेरे साथ तू क्या व्यवहार किया चाहता है ?

युवक-कोई व्यवहार नही, औरङ्गजेब ! तू मेरे किसी भी व्यवहार का पात्र नही । मैं जानता हू, कि तूने अपने कुकर्म्म से अकबर का स्वर्ण—सिहासन कण्टकाकीर्ण बना दिया है, आत्म-सम्बन्धियो तथा अपने इष्ट-मित्रो से विश्वासघात कर उन्हे अपना घोर शत्रु बना लिया है। रे म्लेच्छ ! मै यह भी जानता हू, कि तू हिन्दू-जाति और हिन्दू- धर्म्म का घोर शत्रु है ; तूने असख्य देव—मन्दिर ध्वस करा देव-विग्रह चूर्ण- विचूर्ण कराये है ; अगणित हिन्दुओ का सत्यानाश कर उनके बालको को अनाथ और

उनकी स्त्रियों को धर्म्म-भ्रष्ट किया है। रे मूढ़! मुझ से यह विषय भी अविदित नहीं, कि अपना जो दाहना पञ्जा इस समय तूने अपने पेशकब्ज के दस्ते पर लगा रक्खा है, वह अब से पहले तेरे सहोदर भाई और तेरे और सजात पुत्र के रक्त से रञ्जित हो चुका है। इस तरह मैं जानता हूं कि तू हिंस्र पशु से भी अधम है; विष-धर सर्प से भी अधिक भयङ्कर है; फिर भी, जब तक तू स्वय मेरे द्वारा अपनी मृत्यु का आह्वान न करेगा, तब तक मैं तेरा वध न करूंगा।

औरङ्गजेब—इसमें सन्देह नहीं कि तू बड़ा ही निर्भय है।

युवक—औरङ्गजेब! मैं निर्भय हूं सही; किन्तु तू मेरी अपेक्षा बहुत अधिक निर्भय है। मुझे भगवान का भय है; अपने गुरू का भय है; धर्म्म का भय है; प्राणिमात्र के अभिशाप का भय है। तुझे भगवान का भय नहीं; गुरू का भय नहीं; धर्म्म का भय नहीं; किसी का भय नहीं; केवल प्राण-भय है। जो प्राण--भय अत्यन्त असार; नितान्त नगण्य है; वही प्राण--भय सदा तुझे सन्त्रस्त किया करता है। जिस प्राण को तू कभी बचा नहीं सकता, उसी प्राण की ममता से तू इतना व्याकुल क्यों रहता है? औरङ्गजेब! प्रकृत भय मृत्यु से नहीं; पाप फल से होना चाहिये। तू जितनी अधिक आयु प्राप्त करेगा, उतना ही अधिक पाप कर्म्म करेगा। तेरे इस पाप-कर्म्म का फल अवश्य प्रकट होगा। कुछ तो तेरे सामने ही प्रकट होगा; अवशेष तेरे वंशधरगण के सम्मुख उपस्थित होगा। सम्भवत: तेरा पाप- फल तेरे वंशधरगण को समूल —

औरङ्गजेब—शैतान! तेरी बातें विष से भी अधिक यन्त्रणादायक हैं।

युवक—रे नराधम ! मैने कभी प्राणि हिंसा नही की ; मिथ्या भाषण नहीं किया ; पराया धन अपहरण नहीं किया ; अत्याचार का प्रश्रय नही दिया ; अपने गुरुजन का थोड़ा भी अपमान नही किया ; अपने मित्रो की रक्षा मे तत्पर रहा ; ऐसी अवस्था में मै शैतान हो नही सकता । जो मनुष्य धर्म के नाम से अधर्म करता और नित्य पापनिरत है, वही मनुष्य शैतान कहलाने का उपयुक्त पात्र है।

औरङ्गजेब—(क्रोध से अत्यन्त अधीर हो) ओ काफिर ! बेईमान ! मै चाहता हू, कि तेरी जीवितावस्था में पहले तेरी आँखें निकाली जायँ ; जुबान काटी जाये ; इसके उपरान्त खाल खींची जाये ।

युवक—आध्यात्मिक शक्ति से अनभिज्ञ पाशविक शक्ति का पोषक, तुच्छ मनुष्य ! तेरे जैसे सहस्र-सहस्र औरङ्गजेबो का सम्मिलित बल भी मेरा केश स्पर्श तक कर नही सकता । मैं तुझे थोड़ा सा दण्ड देता ; किन्तु शास्त्रीय आज्ञा और गुरुदेव के उपदेश से विवश हो तुझे छोड़ता हूं । नियति के नियम में बाधा उपस्थित करने का दुःसाहस मै प्रकाश कर नही सकता । तेरा पाप-जीवन स्थिर रख उससे जगदीश कितने ही कार्य्य करा रहे है ; तेरा निधन साधन कर या तुझे किसी प्रकार का दण्ड दे मैं तेरे द्वारा सम्पन्न होते हुए कार्य्यों मे बाधा उपस्थित किया नही चाहता । अब मैं यहा से जाऊगा, औरङ्गजेब ! किन्तु जाने से पहले तुझ से एक बात कह जाया चाहता हूं । वह बात यह है, कि यद्यपि इस समय हिन्दू-धर्म्म बहुत कुछ लोप हो गया है ; तथापि आज भी आस्तिक हिन्दू वर्त्तमान है और जब तक इनका अस्तित्व रहेगा,

तब तक लाख यत्न करके भी तू हिन्दू-धर्म्म का कुछ भी विगाड़ न सकेगा।

यह कह वह युवक औरङ्गजेब के समीप से हट उस वाताहता सुकोमल लता असीम लावण्यशालिनी मूर्च्छिता उर्वशी के समीप गया।

औरङ्गजेब—खबरदार! उस स्त्री को हाथ न लगाना।

युवक—इसी अवला के उद्धार के लिये, औरङ्गजेब! मैं यहाँ आया और इस समय तक ठहरा हूं। कसाई के हाथ पड़ने से जिस तरह गौ भयसूचक शब्द करती है; तेरे मुसाहिब इस जुलफिकार के हाथ पड़ने से उर्वशी ने उसी तरह अतीव करुणा-व्यञ्जक चीत्कार किया था। वह चीत्कार सुन अतीव दुःखित हो इसका उद्धार करने के लिये ही मै यहां आया हूं। (मूर्च्छिता उर्वशी से) हे कोमलाङ्गी उर्वशि! उठो,-तुम्हारा मै रक्षक हूं; मेरे साथ चलो।

उस युवक के यह कहते ही जो घटना हुई, उसे देख उस कोठरी में एकत्र सभी मुसलमान भीत हुए, उनमे कितने ही कांप गये। उस युवक की बात समाप्त होते ही उर्वशी उठ खड़ी हुई। उसकी आंखे बन्द थी; उसके मुख से मूर्च्छा के सभी चिन्ह परिलक्षित थे; फिर भी, वह भूमि से उठ उस युवक के सामने खड़ी हो गई।

युवक—सुन्दरि! क्या तुम मेरा अनुगमन कर सकोगी?

इस पर घोर निद्राग्रस्त मनुष्य की तरह उर्वशी ने अपने कलकण्ठ से कहा,-"हां अनुगमन कर सकूगी।"

युवक—तब इस पापस्थान से निकलने के लिये मेरे पीछे पीछे आओ। (औरङ्गजेब की ओर देख कर) यदि जीवन प्रिय है, औरङ्गजेब! तो मुझे या उर्वशी के रोकने

का कोई यत्न न करना।

यह कह वह युवक आगे-आगे चला; उर्व्वशी उसके पीछे-पीछे चली। उर्व्वशी की आँखे बन्द थी, उसका सुन्दर मुख उसके कन्धे पर झुका हुआ था; फिर भी, वह किसी जागते हुए मनुष्य की तरह उस युवक के पीछे पीछे चली।

उर्व्वशी को साथ ले वह युवक औरङ्गजेब की उस कोठरी, उस कोठरी के बाद की वह दूसरी कोठरी, वह सीढी, उस सीढी के नीचे का चबूतरा और बाग का फाटक तय कर उस बाग के बाहर आया। उस बाग के भीतर विभिन्न स्थानों मे जो पहरेदार खड़े थे, वह पूर्व्ववत नीरव निश्चल खड़े थे। उन्होने उस युवक या उर्व्वशी को देख किसी प्रकार की भी बाधा उपस्थित न की। उस बाग के बाहर कितने ही सवार खडे थे; वह सब औरङ्गजेब के शरीर रक्षक थे; उसके साथ वहा आये थे; उन सब ने भी उन दोनो की राह में कोई बाधा उपस्थित न की।

वह दोनों उस बाग के फाटक से निकल अपने सामने के एक जनशून्य मैदान में चले। उस समय सान्ध्य अन्धकार सघन हो गया था। शीतकालीन कुहरे के मिल जाने से वह अन्धकार और भी सघन हो गया था। रात्रि के पक्षी आकाश मे उड रहे थे; शृगालादि जन्तु अपने छिपने की जगह से निकल इधर-उधर विचरण कर रहे थे।

वह युवक उर्व्वशी को ले उस मैदान मे अभी कुछ ही दूर अग्रसर हुआ था; ऐसे समय उस बाग के बाहर के एक कुए के चबूतरे पर बैठ उस युवक की मार्ग-प्रतीक्षा करनेवाला नाहर उसे देख अपने घोडे की बागडोर पकड शीघ्र-शीघ्र पैदल चल उन दोनो के समीप पहुचा।

नाहर—(उस युवक के साथ उर्वशी को देख कर) क्यो महाशय! आपके साथ यह स्त्री कौन है?

युवक—(ठहर कर) तुम कौन हो? याद आया। बाग के भीतर प्रवेश करने से पहले कदाचित् तुम्हीं से मैंने उस चीत्कार के सम्बन्ध मे प्रश्न किया था।

नाहर—आपका अनुमान सत्य है। मै इस समय भी उस चीत्कार का कारण जानने के लिये उत्सुक हूं। अपनी इस उत्सुकता के कारण ही उस बाग के द्वार पर बैठ आपकी मै मार्ग प्रतीक्षा करता था। आपके साथ यह स्त्री कौन है?

युवक—इसी ने वह चीत्कार-ध्वनि की थी। यह कितने ही अत्याचारियो के फन्दे मे फँस गई थी; उससे इसका मैंने उद्धार किया है।

नाहर-कैसे अत्याचारी? महाशय! यदि कष्ट न हो, तो इस स्त्री का हाल संक्षेप मे मुझसे कह दीजिये।

युवक-कष्ट की कोई बात नहीं; समय का अभाव है।

नाहर— यदि यह बात है, तो आप जिधर चलना चाहते हो, चलिये; मै आपके साथ-साथ चलूंगा। राह में आप इस स्त्री का हाल कहते चलियेगा; मै सुनता चलूगा।

उस युवक ने देखा, कि नाहर बिना उर्वशी का हाल जाने शान्त न होगा। इसलिये वह नाहर के इस प्रस्ताव से सम्मत हो गया। वह युवक, उर्वशी और नाहर तीनो उस मैदान मे एक ओर चले। नाहर के साथ साथ उसका घोड़ा भी चला। चलने-चलते नाहर से उस युवक ने पूछा,—"तुम कौन हो; तुम्हारा परिचय क्या है?" इस पर उस युवक को नाहर ने संक्षेप में अपना परिचय प्रदान किया। यह परिचय पा उस युवक ने अपना सन्तोष प्रकट किया

और सशोव मे उर्वशी और उसके रक्षा पाने की कहानी नाहर से कह सुनाई। उसे सुन नाहर के आश्चर्य की सीमा न रही। उसने उस युवक से कहा,-"औरङ्गजेब साक्षात् नर-पिशाच है, उसके चङ्गुल से उर्वशी को आप कैसे छुड़ा सके?"

युवक—जगदीश्वर की अपार दया के फल से ही यह कठिन कार्य्य सम्पन्न हुआ है।

नाहर—(एक जगह ठहर कर) प्रभो! मुझ बुद्धिहीन मपञ्चरहित योद्धा को विडम्बना में पतित न कीजिये। जिसने औरङ्गजेब की महाशक्ति को तृणवत् तुच्छ प्रमाणित किया है, उसने अपने इस कार्य से वह कार्य्य किया है, जो मनुष्य द्वारा सम्पन्न किया जा नहीं सकता। फिर; उस बाग के उस फाटक के बर्बर पहरेदारों को अपनी एक ही दृष्टि द्वारा निश्चल बनाना अमानुषिक अलौकिक कार्य्य करना है। आपके इन कार्य्यों से ज्ञात पड़ता है, कि आप मनुष्य नहीं, इस मर्त्य मे हठात् आविर्भूत होने वाले देवता है। मै मूर्ख हूं; बुद्धिहीन हू; आपको पहचान नही सकता; इसलिये मुझ पर दया कर आपही मुझे बता दें, कि आप कौन है।

युवक—नाहर! मेरा परिचय पाने के लिये तुम इतनी हठ न करो। तुमने मुझ से उर्वशी के उद्धार का विवरण जानने की इच्छा की; तुम्हें मैंने वह प्रदान कर तुम्हारी एक कामना पूर्ण की। अब मुझ से तुमने यह दूसरी कामना प्रकट की है। तुम्हारी यह दूसरी कामना पूर्ण करने में मै असमर्थ हू।

नाहर—जो महात्मा ऐसे कठोर बन्धन में पड़ी उर्वशी का उद्धार कर सकते है, वह मेरी यह सामान्य कामना

पूर्ण करने मे असमर्थ कैसे हो सकते है ? नही, भगवन् ! आपकी इन बातो से मेरा सन्तोष न होगा; आप अपना परिचय प्रदान कर मुझे अपना चिरदास बनाइये ।

युवक–नाहर ! मेरा परिचय प्राप्त करने के लिये तुम्हारी ओर से इतना आग्रह प्रकाशित होना नितान्त असङ्गत है । तुम्हारी पहली कामना मैने पूर्ण कर दी । जिस उद्देश्य से तुम मेरे साथ आये थे, तुम्हारा वह उद्देश्य सफल हुआ । अब मेरा साथ छोड़ तुम अपना मार्ग अनुसरण करो ।

नाहर—इस तुच्छ मनुष्य की इस तुच्छ प्रार्थना का इतना निरादर न कीजिये, प्रभो ! आप से अपना परिचय प्रदान करते समय मै अपने को मारवाड़पति महाराज यशवन्तसिंह का मित्र बता चुका हूं । महाराज यशवन्तसिंह घोर दुर्दशाग्रस्त कोटि–कोटि हिन्दुओ के परम शुभचिन्तक और सच्चे मित्र हैं । फलत मेरे विचार से नहीं, तो इन कोटि–कोटि हिन्दुओ; इन महाराज ही के विचार से मुझे आप अपना परिचय प्रदान कीजिये।

युवक—नाहर ! हिन्दू अपने कर्म्म–फल से इस समय दुर्दशा भोग रहे हैं। कर्म्म-फल परिवर्त्तित करने का मै पक्षपाती भी नही, ऐसा करने की मुझ मे क्षमता भी नही । ऐसी स्थिति में मेरा दिया हुआ आत्म–परिचय तुम्हारे, तुम्हारे महाराज और कोटि–कोटि हिन्दुओ के किसी भी प्रयोजन का हो नही सकता ।

नाहर—क्या ऐसा कोई भी उपाय नही, जिससे आप का परिचय मै पा सकू ?

युवक—नही ।

नाहर—अच्छा; इस उर्वशी को आप कहाँ लिये जाते हैं ?

युवक—(चौंक कर) यह प्रश्न तुमने किस उद्देश्य से किया ?

नाहर-इस उद्देश्य से, कि आप यदि आज्ञा दें, तो इसे मैं इसके पिता के पास या किसी सुरक्षित स्थान मे पहुँचा दूं।

युवक—इसके पिता के पास इसे पहुँचाने का कोई फल न होगा। वह क्षतवीर्य्य पतित पिता स्वार्थ के लिये एक बार फिर किसी मुसलमान के हाथ कन्या-विक्रय पर उद्यत होगा। तुम्हारे पास इसकी रक्षा का कोई स्थान नही। इसे पाने के लिये औरङ्गजेब अनायास ही तुम्हारी हत्या करा डालेगा।

नाहर—तब उर्वशी कहाँ जायेगी ?

युवक—मेरे पास रहेगी, मै स्वयं उसकी रक्षा करूँगा।

नाहर—यह कैसी बात है ? आप के साथ यह युवती स्त्री कैसे रहेगी।

यह बात सुन नाहर को उस युवक ने तीव्र दृष्टि से देखा। नाहर भयभीत हो पीछे हट गया। उसे उस युवक की आखो से अग्निस्फुलिङ्ग निकलते दिखाई दिये। इतना ही नही; उस नवयुवक की नयन-ज्योति ने तड़ितप्रवाह की तरह नाहर के सर्वाङ्ग में प्रविष्ट हो नाहर को विकल कर दिया। महाशक्ति सम्पन्न नाहर का शरीर क्षणमात्र मे शक्ति शून्य हो गया।

युवक—जिस प्रश्न के उपस्थित करने के तुम अधिकारी नही, उस प्रश्न को उपस्थित करने से तुम घोर विपद् में पतित हो सकते हो।

नाहर—शिव-शिव; आपकी नेत्र-ज्योति ने मुझे अत्यन्त व्यथित किया।

युवक—इन व्यर्थ की बातो का प्रयोजन नहीं; अब तुम अपना-पथ अवलम्बन करो।

नाहर ने आगे बढ़ उस युवक को प्रणाम कर अपने घोड़े की पीठ पर आरोहण किया। ऐसे समय उस मैदान का छाया कुहरा कुछ घटा और जिस जगह नाहर आदि खड़े थे, उस जगह खण्डचन्द्र का प्रकाश प्रकट हुआ। इस प्रकाश मे नाहर उस युवक और उसके साथ की उर्वशी का मुख देख सका। उसने देखा, कि उर्वशी की आखें बन्द थी; वह मानो खड़ी-खड़ी सो रही थी। यह देख इसके सम्बन्ध मे वह कुछ प्रश्न किया चाहता था; ऐसे समय उस युवक ने बाधा दे कहा,—"नही, नाहर! अब अधिक प्रश्नोत्तर का समय नही; मै तुम्हें यहा से यथासम्भव शीघ्र जाने की आज्ञा देता हू।"

नाहर—और मै आपकी यह आज्ञा शिरोधार्य्य करता हू; फिर भी, प्रभो! इतना बता दीजिये, कि आपका आश्रम कहा है?

युवक—इस समय मेरा कोई भी निर्द्धारित आश्रम नही।

नाहर—तब क्या और कभी आपसे मेरी भेट हो न सकेगी?

युवक—सम्भवत कभी नही।

नाहर—मेरी समझ मे इसके सम्बन्ध में निश्चित रूप से कोई बात कही जा नही सकती। भगवान् के इस राज्य में सम्भव असम्भव और असम्भव सम्भव हुआ करता है। मै जाता हू; किन्तु आप से यह प्रार्थना किये जाता हूं, कि जिस हिन्दू-धर्म्म के योग शास्त्र ने आपको इतनी क्षमता प्रदान की है; आप उस शक्ति को अपने अभीष्ट साधन में व्यय करने के साथ-साथ हिन्दू-धर्म्म की रक्षामें

भी व्यय करें।

यह कह और उस युवक को हाथ जोड़ एक बार फिर प्रणाम कर नाहर ने अपने घोड़े की बाग दिल्ली नगर की ओर मोड़ी। नाहर दिल्ली नगर की ओर चला। अभी वह कुछ ही दूर आगे गया था, ऐसे समय उसे किसी की चीत्कार ध्वनि सुनाई दी। यह ध्वनि और किसी की नहीं, उसी रूप-लावण्यशालिनी उर्वशी की थी। इसे सुन नाहर ने पलट कर उस स्थान की ओर देखा, जिस स्थान में वह उस युवक और उर्वशी को छोड़ उनकी ओर पीठ फेर दिल्ली की ओर चला था। नाहर को दिखाई दिया, कि उस स्थान मे कोई न था,–वह युवक भी न था; उर्व्वशी भी न थी। नाहर को अपनी दृष्टि पर विश्वास न हुआ। वह अपना घोड़ा उस स्थान मे ला चारो ओर दृष्टि निक्षेप कर देखने लगा। उसने देखा, कि समीप या दूर कहीं भी वह दोनो नहीं। यह देख नाहर के चिरनिर्भर हृदय में भय का सञ्चार हुआ। क्षणमात्र के लिये वीरवर का सर्व्वाङ्ग काप उठा। अधिक समय तक नाहर उस स्थान में ठहर न सका; उसने अपना घोड़ा द्रुत वेग से दिल्ली-नगर की ओर भगाया।

षष्ट परिच्छेद।

फिर परीक्षा।

ऊपर के परिच्छेद में जिस घटना का उल्लेख किया गया है, उसके कोई एक सप्ताह बाद एक दिन अपराह्न में नाहर-सिंह अपने घोड़े पर सवार दिल्ली के किले से निकल यमुना-तट के मैदान की सैर करता अपने डेरे की ओर लौट रहा

था। महाराज यशवन्तसिंह नाहर को अपने राज्य के सम्बन्ध के जो कार्य्य सौंप गये थे, इस दिन वह सब कार्य्य समाप्त हो गये थे। इन कार्य्यों की समाप्ति के साथ साथ नाहरसिंह के दिल्ली मे रहने की आवश्यकता भी समाप्त हो गई थी। इस दिन इन कार्य्यों के समाप्त होने पर नाहर ने स्थिर किया था, कि वह दूसरे दिन स्वदेश लौट वहा से यथासम्भव शीघ्र महाराज यशवन्तसिंह की सेवा मे काबुल जायेगा।

महाराज यशवन्तसिंह के दिल्ली परित्याग करने के उपरान्त उनके परामर्शानुसार अपने इस दिल्ली-प्रवास में नाहर औरङ्गजेब के सामने न गया था। वह राह या मैदान मे औरङ्गजेब की सवारी देख उससे बचने के लिये दूर हट जाता था। इसीलिये महाराज यशवन्तसिंह के दिल्ली-परित्याग करने के बाद से इस दिन तक नाहरसिंह और औरङ्गजेब का सामना हुआ न था। महाराज यशवन्तसिंह का कार्य्य समाप्त होने पर नाहर मन ही मन यह विचार अत्यन्त प्रसन्न हुआ, कि उसका दिल्ली-प्रवास-काल भी समाप्त हुआ और औरङ्गजेब से भेंट भी न हुई। नाहर जानता था, कि औरङ्गजेब उसे उस समय यदि देख पायेगा, तो कोई ऐसी चाल चलेगा, जिससे वह यथासमय दिल्ली-परित्याग पूर्व्वक महाराज यशवन्तसिंह के पास पहुच न सके।

इस दिन इस मैदान मे नाहरसिंह ने बड़े ही निश्चिन्त मन से प्रवेश किया। उसकी इच्छा थी, कि वह अल्प समय तक इस मैदान का सुखद समीरण सेवन कर अपने डेरे लौट कल प्रातःकाल दिल्ली परित्याग करने की तैयारी मे प्रवृत्त हो जाये। इस मैदान में कुछ ही दूर आगे बढने पर नाहर को दिखाई दिया, कि एक जगह थोड़े से सवार

खड़े हैं और कई सवार घोड़े उड़ाते एक ओर जा रहे हैं। उन खड़े सवारों में शाही शरीर-रक्षक सवारों को न देख नाहर को विश्वास हो गया, कि वहाँ औरङ्गजेब नहीं। इस ओर से निश्चिन्त हो वह उन सवारों के एकत्र होने का उद्देश्य जानने के लिये उनके समीप पहुंचा। वहा पहुंच उसने देखा, कि घोड़ों पर सवार कितने ही हिन्दू और मुसलमान सवारों के बीच औरङ्गजेब का पुत्र शाहजादा आज़म अपने घोड़े की पीठ पर बैठा था। उस जगह से कोई सौ गज दूर इमली का एक पुराना वृक्ष था। इस वृक्षकी एक मोटी शाखा अपनी अन्यान्य शाखाओं से जुदा हो किसी फैली हुई भुजा की तरह भूमि की समान्तर रेखा में कुछ दूर जा ऊपर उठ गई थी। इस वृक्ष—शाखा और भूमि के बीच कोई पाच हाथ का अन्तर था। इसके नीचे से घोड़ा निकल जा सकता था, उसका सवार निकल न सकता था। इस शाखा को देख आजम को एक कौतुक सूझा था। उसने आज्ञा दी थी, कि उसके साथी सवारों में कुछ सवार अपने घोड़े इस वृक्ष—शाखा की ओर दौड़ायें और इसके समीप पहुंच घोड़े की पीठ से उचक इस वृक्ष-शाखा पर जा बैठें; कोतल घोड़े इस वृक्ष-शाखा के नीचे से निकल जायें। नाहर ने वहा पहुंच देखा, कि इस आज्ञा के अनुसार कार्य्य हो रहा था; कितने ही सवारों ने यह कसरत दिखाई थी, इन में कितने ही कृतकार्य्य हुए थे; कितने ही अकृतकार्य्य हो इस वृक्ष-शाखा की टक्कर से धराशायी हो अपनी हड्डी तोड़ चुके थे।

जिस समय नाहर सवारों के इस दल में पहुंचा और शाहज़ादे को सलाम कर खड़ा हुआ, उस समय शाहज़ादे

ने बनेरे के हिन्दू-नरेश से कहा,—"राजा साहब! आप बहुत अच्छे घुड़सवार हैं। इस बार आप अपना करतब दिखायें।"

बनेरापति—हूजूर! करतब दिखाने में हर्ज नहीं; किन्तु यह काम कुछ टेढ़ा है।

शाहजादा—मैं चाहता हूं, कि इस बार आप ही जायें।

बनेरापति—आपकी आज्ञा है, तो मैं जाता हूं, किन्तु ऐसे खेल मैं पसन्द नहीं करता।

यह कह बनेरापति ने अपने वस्त्र और शस्त्र ठीक किये और कमर कस अपना घोड़ा दौड़ाने पर उद्यत हुए।

शाहजादा—आप का घोड़ा बड़ा ही जानदार है, आशा है, कि इसे आप बड़ी ही तेजी से दौड़ायेंगे।

इस बात का कोई उत्तर न दे बनेरापति ने अपने घोड़े पर एक चाबुक जमाया। लोगों ने देखा, कि एड़ की भी चोट न सहनेवाला बनेरापति का घोड़ा चाबुक की चोट खा एक बार बड़े वेग से उछल आंधी की त्वरा से उस वृक्ष-शाखा की ओर दौड़ा। उसे अपने सम्मुख पा उस पर बनेरापति अपने घोड़े की पीठ से उछल सवार होने के लिये प्रस्तुत हुए। उस वृक्ष शाखा से कोई एक हाथ के फासिले पर पहुंच उस पर सवार होने के लिये बनेरापति अपने घोड़े की पीठ से उछले। उन्हों ने अनुमान किया था, कि उनके पैर वृक्ष शाखा पर जम जायेंगे। किन्तु ऐसा न हुआ। एक ओर उनका घोड़ा उस वृक्षशाखा के नीचे से निकल गया; दूसरी ओर उनके पैर उस वृक्ष शाखा पर जम न सके। वह बड़े वेग से भूमि पर गिरे। उनका गिरना देख शाहजादा हंसा, उसके साथी तरह तरह की बातें करने लगे।

वनेरापति का घोड़ा यथासम्भव शीघ्र पकड़ा गया और उस पर वह सवार हो शाहजादे के समीप वापस आये। उनके आकार से लज्जा और भीषण यन्त्रणा के चिह्न दिखाई देते थे। उन्हें देख उनसे शाहजादे ने कहा,- "राजा साहब! आप अकृतकार्य्य हुए; उस वृक्ष-शाखा पर चढ़ न सके।"

वनेरापति—हुजूर! मैं ने आप से पहले ही कह दिया था, कि यह काम मेरे लिये कठिन है।

शाहजादा—एक बार फिर आप यह यत्न करें।

वनेरापति—क्षमा करें, हुजूर! अब मैं फिर यह यत्न कर नहीं सकता।

शाहजादा—कारण?

वनेरापति—कारण यह, कि इससे पहले मैंने ऐसा जोर यत्न किया है, उसमे अकृतकार्य्य होने से मेरी पसुली टूट गई है। इससे मुझे बड़ी यन्त्रणा हो रही है। आप यदि आज्ञा दें, तो मैं अपने डेरे वापस जा अपनी सेवा-शुश्रूषा कराऊँ।

शाहजादा—आप की पसुली टूटने का समाचार सुन मैं अतीव दुःखित हुआ हूं। आप अपने डेरे वापस जायँ।

वनेरापति के अपने सरदारों के साथ अपने डेरे की ओर वापस जाने पर शाहजादे ने पूछा,—"अब और कौन यह करतब दिखायेगा?"

इस पर शाहजादे के एक मुसलमान मुसाहब ने उससे कहा,—"हुजूर! आपके समीप ही नाहरसिंह खड़े हैं; इस काम के लिये इनसे अधिक उपयुक्त और कौन मनुष्य होगा।"

यह बात सुन सब की दृष्टि नाहर की ओर गई।

नाहर के आकार ने एकाएक कठोर भाव धारण किया।

शाहजादा—(हंस कर) नाहर! इस बार तुम्हीं जाओ; मुझे विश्वास है, कि तुम यह बाजी ले जाओगे।

नाहर-नहीं हुजूर!

शाहजादा-क्या तुम यह बाजी ले जा नहीं सकते?

नाहर—बात यह है, हुजूर! कि मैं शीघ्र ही एक प्रयोजनीय कार्य्य में प्रवृत्त हुआ चाहता हूं; इस लिए इस बात का बड़ा प्रयोजन है, कि मेरी हड्डी-पसुली सलामत रहे।

शाहजादा—किन्तु मेरी इच्छा यह है, कि इस बार तुम्हीं यह बाजी ले जाओ।

नाहर—किन्तु मेरी इच्छा यह है, हुजूर! कि ऐसे तमाशे मे मै कभी सम्मिलित न हूं।

शाहजादा-यह तमाशा नही; घुड़सवारो की परीक्षा है। इस परीक्षा मे तुम्हें सम्मिलित होना ही होगा।

नाहर—इसे मै परीक्षा नहीं; बच्चो का खेल समझता हूं और इस खेल मे मै कदापि सम्मिलित न हूंगा।

शाहजादा—(क्रुद्ध होकर) मै आज्ञा देता हूं, कि तुम इस परीक्षा में सम्मिलित हो और मेरी यह आज्ञा अस्वीकार करने से पहले यह सोच लो, कि इसका क्या फल हो सकता है।

नाहर—(अत्यन्त क्रुद्ध हो उच्चस्वर से) हुजूर! इस खेल में मै कभी सम्मिलित न हूंगा। यह परीक्षा नही; खेल है और यह खेल भी मनुष्यों का नहीं; बन्दरो का है। इस खेल के लिये आप कोई बन्दर चुनिये। वही आप के आज्ञानुसार दौड़ते घोड़े की पीठ से उचक वृक्ष-शाखा पर चढ़ आपको संतुष्ट करेगा। मेरा खेल देखना

है, तो तलवार का कोई काम मुझे दीजिये; फिर देखिये, कि आप को मैं कैसा सन्तुष्ट करता हूं।

यह बात सुन शाहजादे का मुख क्रोध से लाल हो गया। वह अपने साथ के सवारों की ओर घूम नाहर के सम्बन्ध में कोई आज्ञा दिया चाहता था; ऐसे समय वहां एकत्र बहुतेरे सवारों ने एक साथ कहा,—"शाहन्शाह-शाहन्शाह!"

सब ने देखा, क उनके समीप औरङ्गजेब अपने घोड़े पर सवार उपस्थित था। उसके पीछे उसके बीस या पचीस शरीर-रक्षक सवार थे। औरङ्गजेब वायु-सेवन के लिये निकला था; सवारों का यह जमाव देख उसका कारण जानने के लिये उसके समीप आया था। शाहजादे के साथ के सवार शाहजादे और नाहर की बात चीत ध्यान दे सुन रहे थे; इसी लिये औरङ्गजेब के समीप आने से पहले उसे वह देख न सके।

नाहर को देख क्षण भर के लिये औरङ्गजेब के नेत्रों से घोर घृणा-सूचक चिन्ह परिलक्षित हुए। वह बोला,—"नाहर! क्या अभी तक तुम दिल्ली ही में थे?"

नाहर—(औरङ्गजेब को सलाम कर) जी हां अभी तक मैं दिल्ली ही में था।

औरङ्गजेब—तुम महाराज यशवन्तसिंह के साथ काबुल क्यों न गये या मेरे ही पास क्यों न आये?

नाहर—इसलिये, हुजूर! कि महाराज के जाने के बाद से आज तक मैं कितने ही प्रयोजनीय कामों में फँसा था।

औरङ्गजेब—यहां क्या कर रहे हो?

शाहजादा—इनका यहां का काम मैं बताता हूं।

यह कह शाहज़ादे ने उस वृक्ष-शाखा पर चढ़ने की कसरत और उसके करने से नाहर के इन्कार का हाल औरङ्गजेब को सुनाया । जैसे ही शाहज़ादे ने अपनी बात समाप्त की, वैसे ही औरङ्गजेब से नाहर ने पूछा,—"क्यों, हुजूर ! क्या वीरों के वीरत्व की परीक्षा लेने का यही ढङ्ग है ?"

औरङ्गजेब—(कुछ चिन्ता कर) नहीं; तुम्हारी परीक्षा लेने का यह ढङ्ग नहीं; तुम्हारी परीक्षा के लिये कोई और ही बात स्थिर होना चाहिये ।

शाहज़ादा—हुजूर ! मै चाहता हूं, कि किसी तरह हो; बलदर्पित नाहर की परीक्षा अवश्य लेना चाहिये ।

नाहर—जहांपनाह एक बार मेरी परीक्षा ले सन्तोष प्रकाश कर चुके है ।

औरङ्गजेब—फिर भी; बात जब-यहाँ तक बढ़ गई है और शाहज़ादा तुम्हारे वीरत्व की परीक्षा लेने की इतनी ज़िद करता है, तब मै भी चाहता हूं, कि एक बार फिर तुम्हारे वीरत्व की परीक्षा हो ।

नाहर-(चिन्तित होकर) क्या आप की भी ऐसी ही इच्छा है ?

औरङ्गजेब—हां । नाहर ! तुमने सुना होगा, कि सिरोही का देवरा महाराज सुरतानसिंह बहुत दिनो से बागी बना बैठा है । इस पर शाही फौज ने कई बार चढाई की , किन्तु उसका कोई फल न हुआ। सुरतान सघन बनाच्छादित पार्वत्य देश का राजा है। उस पर जब शाही फौज चढ़ा करती है, तब वह सघन वन में घुस जाया करता है, उसके पीछे वन-वन और पर्वत-पर्वत घूमने में असमर्थ हो लौट आया करती है। इस तरह बहुत दिनों

से बगावत करने पर भी सुरतान अभी तक पकड़ा नहीं गया है। इस बार तुम्हारे वीरत्व की परीक्षा के लिये सुरतान के पकड़ने का काम तुम्हे दिया जाता है।

नाहर यह सुन अत्यन्त चिन्तित हुआ। उसने मन ही मन कहा, कि इतने दिनो तक मैने जिस विपद् से रक्षा पाने का यत्न किया था; अन्त मे उसी विपद् से मेरा सामना हुआ; औरङ्गजेब ने मेरी काबुल-यात्रा में घोर व्याघात उपस्थित किया।

औरङ्गजेब-नाहर! तुमने मेरी बात सुन ली?

नाहर-सुन ली, हुजूर!

औरङ्गजेब—इस पर तुम क्या कहते हो?

नाहर—मैं यही सोचता हू, कि क्या कहू।

औरङ्गजेब—तुम्हें यह परीक्षा देना ही पड़ेगी।

नाहर—मैं भी जानता हूं, कि मुझे इस दूसरे कठोर कर्म्म में प्रवृत्त होना ही पड़ेगा। ऐसी दशा में इससे बचने के सम्बन्ध मे आप से कोई प्रार्थना करना व्यर्थ है।

औरङ्गजेब—तुम इस परीक्षा से बचने की इतनी चिन्ता क्यो करते हो?

नाहर-हुजूर! मै महाराज यशवन्तसिंह की सेवा के लिये काबुल जाया चाहता हू।

औरङ्गजेब—क्या जब तक तुम काबुल न जाओगे, तब तक महाराज यशवन्तसिंह काबुल की बगावत मिटा न सकेंगे?

नाहर-नहीं हुजूर! काबुल की बगावत मिटाने के लिये मेरा प्रयोजन नहीं। उस दिन दिल्ली में महाराज पर जब प्राण-सङ्कट उपस्थित हुआ था, तब उनकी मैने सेवा की थी। मैं चाहता हूं, कि काबुल में यदि ऐसा कोई

सङ्कट उपस्थित हो, तो वहां रह मैं, अपने अन्नदाता और मित्र महाराज यशवन्तसिंह की सेवा कर सकूं।

औरङ्गजेब—(दाँतों से अपना ओंठ काट कर) महाराज के साथ शस्त्र-शस्त्र राजपूत हैं। ऐसे सङ्कट के समय वह सब महाराज की रक्षा कर सकेंगे।

नाहर—ठीक है। इसी लिये आप से मैं आप के बताये इस द्वितीय परीक्षा-कार्य्य से बचने की प्रार्थना किया नहीं चाहता।

औरङ्गजेब—तुम यदि चाहो, तो सुरतान की गिरफ़्तारी के लिये इच्छानुसार शाही फौज अपने साथ ले जाओ।

नाहर—शाही फौज साथ ले जाने से काम न होगा।

औरङ्गजेब—क्यों?

नाहर—इस लिये, कि शाही फ़ौज का सामना किसी शाही फौज से ही होना चाहिये। सुरतान कष्टसहिष्णु कठिनप्राण योद्धा है; उससे सामना करने के लिये उसके ही जैसे योद्धाओं को जाना चाहिये। इस काम के लिये मैं अपने कम्पावत वीरों को अपने साथ लूंगा। मुझे अपने साथ फौज ले जाने का प्रयोजन नहीं; मुष्टिमेय कम्पावत वीरों से मेरा कार्य्य सिद्ध हो जायेगा। फिर भी; हमारी इस चढ़ाई का व्यय-भार शाही खजाने को उठाना होगा।

औरङ्गजेब—कुछ परवा नहीं। तुम्हें जितने धन का प्रयोजन हो, उतना धन शाही खजाने से ले लो।

नाहर—एक बात और है, हुजूर!

औरङ्गजेब—और क्या बात है?

नाहर—अब से कुछ वर्ष पहले अम्बराधिपति महाराज जयसिंह छत्रपति शिवाजी को पकड़ जब आपके सामने

लाये थे, तब आपने शिवाजी को कैद करने की आज्ञा दी थी। मैं चाहता हूं, कि इस स्थल में ऐसी कोई व्यवस्था न हो। सुरतान को पकड़ मैं यदि आप के पास ले आऊं, तो उनके प्रति आप ऐसा कोई कुव्यवहार न करें।

औरङ्गजेब—तुम हिन्दू क्या यह चाहते हो, कि मैं अपने चिरशत्रु हिन्दुओं से सुव्यवहार किया करूँ?

नाहर—हम हिन्दू यह चाहते हैं, कि आप की आज्ञा से हम जिस वीर को अभय दे आप के पास लायें; आप उसके कैद या वध की आज्ञा न दें।

औरङ्गजेब—बादशाह की नीति में तुम हिन्दुओं को इस तरह बाधा उपस्थित करने का कोई अधिकार नहीं।

नाहर—ऐसी दशा में बादशाह अपने उन्हीं कर्म्मचारियों द्वारा अपनी आज्ञा का प्रतिपालन करायें, जिनकी विवेक बुद्धि चिरनिद्रा के वश हो चुकी हो।

औरङ्गजेब-बादशाह के सभी कर्म्मचारियों को शाही-आज्ञा अङ्गीकार न करने का परिणाम जान रखना चाहिये।

नाहर-यदि यह बात है, हुजूर! तो बादशाह को भी अपने प्रत्येक कर्म्मचारी को पहचान रखना चाहिये; जो कर्म्मचारी जैसा हो, उसे वैसी ही आज्ञा प्रदान करना चाहिये।

यह सुन औरङ्गजेब ने एक क्षण निस्तब्ध रह उच्च हास्य कर कहा,—"नाहर! देखता हूं, कि तुम केवल योद्धा ही नहीं; बुद्धिमान भी हो। अच्छा; सुरतान कैद किया जाकर यदि मेरे सामने लाया जायगा, तो उसके प्रति मैं कोई भी कुव्यवहार न करूंगा।"

नाहर—आशा है, कि समय उपस्थित होने पर आप अपनी यह प्रतिज्ञा भूल न जायेंगे।

औरङ्गजेब—नाहर ! किसी बादशाह की प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में ऐसा सन्देह सूचक वाक्य कहना बादशाह का घोर अपमान करना है।

नाहर—हुजूर ! जीवन में असंख्य बार मृत्यु के सम्मुखीन होनेवाले योद्धा सुख में पले मुसाहिबों की तरह साधारण वाक्य द्वारा मानापमान होने का विचार कर नहीं सकते। आशा है, कि आप मेरे इस प्रश्न से असन्तुष्ट हुए न होंगे।

औरङ्गजेब—मैं एक बार फिर कहता हूं, कि सुरतान के सम्बन्ध मे मैंने जो प्रतीज्ञा की है, समय उपस्थित होने पर मै उसके अनुसार ही कार्य्य करूँगा। अब तुम यह बताओ, कि सुरतान की ओर तुम कब यात्रा करोगे ?

नाहर—मै कल प्रात काल दिल्ली से स्वदेश जाऊंगा। वहाँ अल्प समय ठहर थोड़े से कम्पावत वीरो को अपने साथ ले सिरोही की ओर यात्रा करूँगा।

औरङ्गजेब—आशा है, कि तुम्हारी इस यात्रा का उद्देश्य सफल होगा।

नाहर—काम टेढा है, हुजूर ! देखूं, क्या होता है।

सप्तम परिच्छेद।

महल का खण्डर।

राजपूताने का सिरोही—राज्य आज भी है; औरङ्गजेब के समय भी था; औरङ्गजेब के पूर्व पुरुषो के समय भी था। आज यह राज्य तीन सहस्र बीस वर्गमील भूमि पर विस्तृत है। इसके पश्चिम और उत्तर मारवाड़, पूर्व्व मेवाड़ और दक्षिण पालनपुर और माहीकाँठा तथा ईडर और दान्ता राज्य है। सिरोही वन और पर्व्वतो से परिपूर्ण है। अरा-

वलीपर्वत-माला ने इसके मध्य मे अवस्थित हो इसे दो भागो मे विभक्त कर दिया है। यह पर्वत-माला इस राज्य मे दक्षिण-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की ओर फैली हुई है। इस राज्य के जिस अंश मे यह पर्वत-माला प्रवेश करती है, वह अंश और भी पार्वत्य तथा दुर्गम्य है। इस राज्य के इसी अंश में प्रसिद्ध आबू पर्वत है। कृष्ण पाषाण से सगठित आबू गिरि बड़ा ही विशाल,-बड़ा ही उन्नत है। इसका सर्वोच्च शिखर सागर-वक्ष से कोई पाँच सहस्त्र छ सौ तिरपन फुट ऊंचा है। आबू गिरि मे स्थान स्थान मे उत्तमोत्तम उपत्यकायें है। वर्षाकाल मे अरावली पर्वत के दोनो पार्श्व से बहने वाली नदियाँ और नालो के जल से यह राज्य जलपूर्ण हो जाता है। जल की प्रचुरता से सम्पूर्ण राज्य सघन वनाच्छादित है। इन दिनों इस राज्य के बीच से 'वेष्टर्न राजपूताना' रेल-पथ बन गया है। यह रेल-पथ आबू पर्वत के पूर्व से निकल गया है। इसकी वजह इस राज्य के सघन वन का बहुत सा अंश कट गया है। फिर भी; इस राज्य मे वन का अभाव नहीं और यह वन व्याघ्र, भालू आदि विविध हिंस्र पशुओं से परिपूर्ण है। पूर्वकाल में यह वन और भी सघन थे; इनमे रहनेवाले हिंस्र पशुओं की सख्या और भी अधिक थी। औरङ्गजेब के शासनकाल से पहले सिरोही-राज्य अत्यन्त समृद्ध था। इसके विविध अंश मे विशाल अट्टालिकायें, ग्राम, नगर आदि थे। सिरोही का पतन होने पर यह सब नष्ट हो गये। औरङ्गजेब के शासन-काल में यह अट्टालिकायें, ग्राम आदि न थे; इनके खण्डर रह गये थे। यह खण्डर उस समय भी थे, आज भी मौजूद हैं। आज भी इस राज्य के दुर्गम्य वनो के

भीतर जगह जगह विविध भवन, ग्राम आदि के ध्वंसावशेष दिखाई देते हैं।

सिरोही के अधिपति चौहानवंशीय क्षत्रिय हैं। भारत-सम्राट् दिल्लीपति पृथ्वीराज सिरोही—नरेश के पूर्व्व पुरुष थे। सम्राट् पृथ्वीराज के वंशधर महाराज देवराज सिरोही-राजवंश के बड़े ही प्रसिद्ध पुरुष हो गये हैं। उन्हीं के नाम से उनके उत्तराधिकारियों ने देवरा उपाधि धारण की। आज जो नरनाथ सिरोही सिंहासन की शोभा वृद्धि कर रहे हैं, वह भी देवरा ही कहलाते हैं। औरङ्गजेब के शासनकाल में देवरा सुरतानसिंह सिरोही के अधिपति थे। सुरतानसिंह प्रदीप्त तेजस्वी, युद्धविद्याविशारद, आत्माभिमानी योद्धा थे। औरङ्गजेब ने अन्यान्य बहु-सख्यक देशी नरेशों की तरह सुरतानसिंह को भी वश करने का यत्न किया। इस पर उन्हों ने औरङ्गजेब से कह-लाया,—"हिन्दू-सम्राट् के वंशधर सुरतान का मस्तक एक यवन—सम्राट् के सम्मुख अवनत हो नहीं सकता।" यह बात सुन औरङ्गजेब हंसा और उसने सुरतानसिंह के पकड़-ने तथा सिरोही-राज्य के नष्ट करने के लिये एक शाही फौज भेजी। औरङ्गजेब ने समझा था, कि क्षुद्र सिरोहीराज्य के नष्ट करने तथा उसके अधिपति के पकड़े जाने मे अ-धिक समय न लगेगा। उधर सुरतानसिंह ने शाही फौज के आने का समाचार पाते ही उससे युद्ध करने का आयो-जन किया। वह अपनी छोटी सी सैन्य ले अपने राज्य के सघन वन में घुसे और अवसर पाते ही वन से निकल शाही फौज पर बारबार आक्रमण करने लगे। ऐसे आक्र-मणों के फल से, अल्प समय में ही शाही फौज का खजाना

और रसद दोनो लुट गये, उसके बहुसख्यक सिपाही मारे गये। ऐसे युद्ध का अभ्यास न रहने की वजह इतनी क्षति स्वीकार कर शाही फौज सिरोही से निकल भागी। यह देख औरङ्गजेब ने क्रुद्ध हो अपेक्षाकृत सुदृढ दूसरी शाही फौज सिरोही भेजी। इस फौज ने बड़ी कठिनता से सिरोही राज्य में घुस सिरोही नगर नष्ट किया और आबू-पर्व्वत के अचलगढ़ पर अधिकार कर लिया; किन्तु सिरोही-पति को पा न सकी। रात दिन आक्रमण कर सिरोही-पति ने इस फौज को भी नष्ट करना आरम्भ किया। वह अपने अल्पसख्यक योद्धाओ को ले एक वन से निकल शाही फौज के किसी अंश को नष्ट कर दूसरे वन मे चले जाते थे। अन्त में यह दूसरी शाही फौज भी धैर्यच्युत हुई और सिरोही-राज्य से निकल भागी। इस तरह कई बार शाही फौज सिरोही गई और अकृतकार्य्य हो वापस आई। अपनी फौज के बारबार अकृतकार्य्य होने से औरङ्गजेब अतीव क्रुद्ध भी हुआ, लज्जित भी हुआ। उसने स्थिर किया, कि इस बार विशाल सैन्य सागर द्वारा सिरोही को तथा सुरतानसिंह को सवंश ध्वस करना चाहिये। उसका यह विचार अभी कार्य्य में परिणत होने न पाया था; ऐसे समय उसे सुरतानसिंह को पकड़ने के लिये नाहर के नियुक्त करने का सुअवसर मिला। उसने इस सुअवसर से लाभान्वित होने की जो चेष्टा की, उसका विवरण ऊपर के परिच्छेद में प्रकाशित किया गया है। सुरतानसिंह के पकड़ने के कार्य्य में नाहर को प्रवृत्त कर औरङ्गजेब मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ था। नाहर और सुरतान के बीच टक्कर होने से एक या दोनो का पतन अनिवार्य्य था।

औरङ्गजेब ने विचार किया था, कि यह दोनो ही मेरे श
है; इनमे किसी की भी मृत्यु होने से मेरा मङ्गल होगा
एक साथ दोनो की मृत्यु होने से और भी मङ्गल होगा

जिस दिन की घटना ऊपर के परिच्छेद में लिख
गये है, उसके कोई एक मास के उपरान्त एक दिन अप
रान्ह में पन्द्रह सवारों का एक दल सिरोही राज्य के ए
सघन वन में धीरे धीरे अग्रसर हो रहा था। इस दल के
सभी सवार सशस्त्र थे; उनके आकार-प्रकार से प्रकट होत
था, कि वह सब रण देखे हुए पुराने योद्धा थे। इस दल
के सवारो का एक अफसर था। वह अन्यान्य सवारों से
कुछ आगे चल रहा था। कुछ दूर आगे बढने पर वह अफ
सर ठहर गया। उसके ठहरते ही उसके अधीनस्थ सवार
भी ठहर गये।

अफसर—मेरी समझ मे अब हम लोगों को आगे
बढ़ना न चाहिये।

एक सवार-क्यो?

अफसर-इस लिये, कि सरदल देवरा जिस वन में
है, वह वन इस वन के समीप है। सशङ्क और सतर्क
देवरा के गुप्तचर इस वन में भी उपस्थित रह सकते हैं।
वह हमें यदि देख लेंगे तो हम अपना काम तो कर ही न
सकेंगे; उलटे विपद् में फँस जायेंगे।

दूसरा सवार—यहा ठहर कर हम अपना कार्य्य कैसे
सम्पादन कर सकेंगे?

अफसर-इस प्रश्न के उत्तर का समय अभी नहीं आया
है। फिर भी मै जो कार्य्य किया चाहता हूं, उसके सम्पा-
दन के लिये हमें यही ठहरना चाहिये।

तीसरा सवार—क्या इसी वन में ?

अफसर-नहीं; यहां ठहरने से हम देख लिये जायेंगे। इस वन के किसी गिरि-गह्वर या और किसी गुप्त स्थान में गुप्त भाव से हमें ठहरना चाहिये।

चौथा सवार—ऐसी दशा मे सब से पहले हमें अपने ठहरने का कोई स्थान निर्द्धारित करना चाहिये। सन्ध्या शीघ्र-शीघ्र समीप आ रही है। कुछ ही समय के उपरान्त इस घोर वन में घनान्धकार फैल जायेगा।

अफसर—(एक सवार से) तुम वृक्ष पर चढने में विशेष पटु हो। इस ऊँचे वृक्ष की चोटी पर चढ देखो, कि इस वन के आगे क्या है और जिस स्थान मे हम लोग खड़े हैं, उसके समीप कोई नाला या गिरि-गह्वर है या नहीं।

उस अफसर की यह आज्ञा पा वह सवार अपने घोड़े से उस वृक्ष पर चढ उसके नीचे उतरा।

अफसर—इस वन से आगे क्या है ?

सवार—यहां से कई कोस आगे एक खुला मैदान है और उस मैदान से आगे एक दूसरा वन है।

अफसर—सम्भवतः उसी वन में सदल बल देवरा अवस्थान करते हैं। अच्छा, इस स्थान के समीप हम लोगो के गुप्तभाव से रहने योग्य कौन सा स्थान है।

सवार—प्रभो! इस स्थान के समीप कोई नाला भी नहीं; गिरि-गह्वर भी नहीं; कई सौ गज दक्षिण सघन वन के बीच एक विशाल खण्डहर है।

अफसर—क्या इस खण्डहर में ऐसा कोई स्थान है, जिसमें हम लोग गुप्त भाव से रह सकें।

सवार—अन्नदाताजी! यदि मेरी दृष्टि ने मुझे भ्रान्त

नहीं किया है, तो इस खण्डर के कितने ही अंश अभी तक वासोपयोगी हैं और उनमें हम लोग गुप्त भाव से अच्छी तरह रह सकते हैं।

अफसर—इस खण्डर के सिवा वन में या मैदान में क्या तुम्हें और भी कोई प्रयोजनीय दृश्य दिखाई दिया है?

सवार—नहीं।

अफसर—कोई मनुष्य, कोई मनुष्य-चिह्न, कोई शिविर—कुछ भी दिखाई न दिया?

सवार—नहीं।

अफसर—ऐसी अवस्था में अब हमें यहां न ठहर उस खण्डर की ओर चलना चाहिये; तुम आगे चलो; हम लोग तुम्हारा अनुसरण करेंगे।

इसके उपरान्त सवारों का यह छोटा दल एक ओर चला। जैसे-जैसे यह आगे बढ़ा, वैसे-वैसे यह वन और भी सघन होता गया। अन्त में सघन वन के भीतर एक विशाल महल का विशाल खण्डर दिखाई दिया। यह दल इस खण्डर के सामने जा खड़ा हुआ।

अफसर—विशाल महल का विशाल खण्डर है। किसी समय यह महल सहस्र-सहस्र हिन्दुओं का अत्यन्त सुखद निवासस्थान होगा; आज यह इस वन-भूमि का भारमात्र बना हुआ है। जिन लोगों ने इसे उत्साह पूर्वक बनवाया होगा; जिन लोगों ने इसके बन जाने पर शुभ समय में इसमें प्रवेश किया होगा, उन लोगों को इसकी इस दुर्दशा का ध्यान स्वप्न में भी हुआ न होगा। कोई समझे या न समझे; जाने या न जाने;—नियति का ऐसा ही अनिवार्य्य नियम है। जो बनता है, वह बिगड़ता है; जो बिगड़ता

है, वह बनता है। अच्छा; तुम लोग यहीं ठहरो; मैं खण्डर में घुस यह देख आता हूं, कि इसका कौन सा अंश हमारे ठहरने योग्य है।

यह कह उस अफसर ने अपने सामने पड़े ईंट-पत्थर के बहुत ऊँचे ढेर के भीतर घुस उस खण्डर को घूम-घूम कर देखना आरम्भ किया। ईंट-पत्थर के उस पहले ढेर के बाद वृक्षों और झाड़ियों से परिपूर्ण खुली भूमि थी; उसके उपरान्त वैसा ही और एक ढेर था। इस ढेर के उपरान्त टूटी हुई एक दालान थी। इसमें एक द्वार था। इस द्वार के भीतर बहुत बड़ा एक सङ्गीन आँगन था, जिसमें चारो ओर सङ्गीन दालानें बनी थीं। प्रथम द्वार के सामने एक दूसरा द्वार था। इस द्वार के भीतर बहुत बड़ा एक कमरा था। इस कमरे के एक पार्श्व से बहुत ही चौड़ी सङ्गीन सीढ़ियों का सिलसिला ऊपर गया था। यह सीढ़ियाँ एक विशाल कमरे के द्वार तक जा समाप्त हुई थीं। इस कमरे की दीवारों पर बहुत ही मैले बेल-बूटे बने थे और इसकी विशाल छत बहुसंख्यक खम्भों और बड़ी-बड़ी शहतीरों पर ठहरी हुई थी। इस बड़े कमरे में चारो ओर कितने ही द्वार और कुछ अलमारियाँ बनी थीं। यह सब द्वार बन्द थे; यत्न करने पर भी खुल न सकते थे। इस से आगे का यह विशाल खण्डर देखने के लिये बहुत समय अपेक्षित था।

यह सब देख उस अफसर ने लौट अपने साथियों से कहा, कि स्थान चुन लिया गया; तुम लोग अपने घोड़ों के साथ मेरे पीछे आओ। वह अफसर उन सवारों को साथ ले वह आँगन पार कर उन सीढ़ियों के नीचे की

उस कोठरी में पहुंचा। वहा पहुंच उसने कहा,—"यह कोठरी घोड़ों के रखने लायक है।" इसके उपरान्त ऊपर के उस विशाल कमरे में पहुच उसने कहा,—"इस कमरे में हम लोगो का डेरा पड़ेगा। नीचे की कोठरी का आँगन की ओर का द्वार बन्द रखा जायेगा। वहा चार सिपाही रहेगे। सिवा इसके इस आगन के बाहर ईंट—पत्थर के प्रथम और द्वितीय ढेर के बीच जो वृक्ष और झाड़िया हैं, उनमें रात-दिन एक जवान का पहरा रहेगा। तीन तीन घण्टे बाद पहरा बदला जायेगा। पहरे का जवान कोई नई बात देखते ही उसकी सूचना हम लोगों को देगा।"

इस दल के इस खण्डर में पहुंचने के कोई एक घण्टे बाद उस नीचे की कोठरी में घोड़े बँध गये; ऊपर की कोठरी में सवारों के बिस्तर बिछ गये और ईंट—पत्थर के दोनो ढेरो के बीच उस झाड़ी मे एक जवान का पहरा बैठ गया। इन सवारो की रसद इनके साथ थी; ऊपर के उस विशाल कमरे में भोजन प्रस्तुत करने का आयोजन हुआ।

सूर्य्यास्त होने पर पहरे के उस जवान ने एकाएक अपने अफसर के सम्मुख आ उस से कहा,—"अन्नदाताजी! जिस जगह मेरा पहरा है, उससे आगे के उस ढेर पर कोई मनुष्य खड़ा इस खण्डर की ओर देख रहा है।" इस पर उस अफसर ने अपनी तलवार उठाई और उस पहरेदार के साथ उस झाड़ी में पहुचा। सचमुच ही एक मनुष्य उस टीले पर खड़ा कभी खण्डर कभी वन की ओर देख रहा था। उसे इस बात की खबर न थी, कि उसके समीप की झाड़ी मे छिपे दो मनुष्य उसकी गति-विधि का लक्ष्य कर रहे थे।

कुछ देर तक उस टीले पर खड़ा रह वह मनुष्य इधर-

उधर देखता था; अन्त मे जैसे ही वह उस टीले से उतरने लगा, वैसे ही उस अफसर ने उस झाड़ी से निकल और धीरे-धीरे उस मनुष्य के समीप पहुंच उसकी ओर उछल उसे पकड़ लिया। अपने ऊपर उस अफसर का हाथ पड़ते ही उस मनुष्य ने चीत्कार करने के लिये मुह खोला; ऐसे समय उस अफसर ने उसके कान मे मृदुस्वर से कहा,— "सावधान! यदि तुम चीत्कार करोगे, तो मार डाले जाओगे। यदि प्राण-रक्षा किया चाहते हो, तो चुपचाप मेरे साथ आओ।" यह बात सुन वह मनुष्य निस्तब्ध हो गया। उसने छुटकारा पाने का कोई यत्न न किया। उसे मालूम हो गया, कि उसका पकड़नेवाला कोई असाधारण बलसम्पन्न मनुष्य है।

वह अफसर उस मनुष्य को ले उस सङ्गीन आँगन में पहुचा। यद्यपि सूर्य्यदेव अस्त हो चुके थे, तथापि उनका प्रकाश आकाश मे फैला हुआ था और उसकी ज्योति से वह आगन अन्धकाराच्छन्न हुआ न था। उस अफसर ने उस मनुष्य को उस आँगन मे ला देखा, कि वह कोई बाईस या चौबीस वर्ष का नवयुवक था। उसका वर्ण गौर; मुख अतीव सुन्दर था। उसकी आखो के गिर्द पड़े हुए गड्ढे उसके मन की किसी घोर व्यथा की सूचना दे रहे थे। उसके आकार प्रकार से जान पड़ता था, कि वह कोई उच्च वंशीय राजपूत था। उसकी देह का परिच्छद साधारण था; उसकी कमर से एक तलवार लटक रही थी। उसको अच्छी तरह देखते ही उसके प्रति उस अफसर के मन में करुणा उत्पन्न हुई। उसने उस से कोमल स्वर में पूछा,—"तुम कौन हो?"

नवयुवक— एक अभागा राजपूत हूं।

अफसर—क्या तुम इसी राज्य के अधिवासी हो ?

नवयुवक—नहीं; मै परदेशी हूं। प्रयाग के समीप के एक ग्राम का अधिवासी हूं । कालचक्र के आवर्त्तन मे पड यहा चला आया हूं ।

अफसर-यहा किस लिये आये हो ?

नवयुवक-यहाँ आने का मेरा कोई विशेष उद्देश्य नहीं। मेरे पैर मुझे इस तरफ ले आयें; इसलिये मैं चला आया ।

अफसर-नवयुवक ! तुम्हारा आकार-प्रकार देख और तुम्हारी बाते सुन मुझे जान पड़ता है, कि तुम किसी घटना-चक्र मे पड अत्यन्त चिन्तित और हृदय-भग्न हुए हो। मैं चाहता हू, कि तुम यहा बैठ सक्षेप मे अपनी जीवन-कथा मुझे सुनाओ ।

नवयुवक – (चारो ओर देख कर) क्या आप इस स्थान से परिचित है ?

अफसर—इस स्थान का अर्थ क्या यह खण्डर है ?

नवयुवक—हाँ ।

अफसर-इस खण्डर का विशेष परिचय प्राप्त करने की आवश्यकता क्या है ?

नवयुवक-आवश्यकता अवश्य है । मेरी समझ में यह खण्डर अत्यन्त भयङ्कर है । इसमें-इसमें—

अफसर—इस मे क्या है ?

नवयुवक—इस मे प्रेतो का निवास है ।

अफसर-(हस कर) इसका प्रमाण क्या है ?

नवयुवक-इसका प्रमाण यह है, कि अब से कुछ समय पहले एक दिन रात्रि को मै इस खण्डर में सोया था । प्रेतो के गाने बजाने और चलने —फिरने से मेरी नींद खुल

गई। प्रातःकाल होते ही मै यहा से भागा।

अफसर—तुम किस जगह सोये थे?

नवयुवक—इस आँगन से आगे एक कोठरी है। उस कोठरी के ऊपर के एक विशाल कमरे में।

अफसर—वहा तुम्हारे कानो तक प्रेतों के नाच-गाने और चलने फिरने का शब्द किस ओर से पहुचा?

नवयुवक—मै नही जानता, कि किस ओर से पहुचा; फिर भी, इसमे सन्देह नहीं, कि इस शब्द से ही मेरी निद्रा भङ्ग हुई और फिर इस खण्डहर में मेरा निवास हो न सका।

अफसर—(उच्च हास्य कर) तुम्हारी बातें यदि सत्य हैं, तो इस खण्डहर का यह कौतुक देखने योग्य है। अच्छा; इस समय इस बात को छोड़ तुमसे मैने जो बात कही है, उसके अनुसार मुझे अपनी जीवन कथा सुनाओ।

यह कह वह अफसर अपने दोनो पैर आँगन में रख आँगन से कोई एक हाथ ऊंची अपने समीप की दालान मे बैठ गया। उसके पासही उसी ढङ्ग से वह युवक भी बैठ गया।

कुछ देर तक निस्तब्ध रह उस युवक ने कहा,-"मेरी जीवन-कथा अत्यन्त सक्षिप्त और दु खद है। श्रीप्रयागधाम के समीप औरङ्गजेब के एक मुसाहिब जुलफिकारखा की जागीर है।"

अफसर-(चौंक कर) जुलफिकार खा?

नवयुवक-हा; क्या उसे आप जानते हैं?

अफसर-जानता हू, किन्तु इससे तुम्हारी जीवन कथा का कोई सम्बन्ध नहीं। तुम अपनी बात कहो।

नवयुवक-जुलफिकार की जागीर के एक क्षुद्र जमीन्दार का मैं इकलौता पुत्र हू। लक्ष्मणसिंह मेरा नाम है। एक

दिन अपने समीप से एक जमीन्दार कन्दर्पसिंह के घर जा उनकी अप्रतिम रूप लावण्यशालिनी कन्या उर्व्वशी को दैवात् देख उस पर मैं मोहित हुआ। उर्व्वशी के प्रेम के कारण मैं कन्दर्पसिंह के घर बारबार जाने लगा। उर्व्वशी ने भी मुझ पर कृपा की; वह भी मुझे चाहने लगी। यह देख मेरे पिता ने मेरे साथ उर्व्वशी का विवाहना स्थिर किया। मेरे पिता का इस विवाह का प्रस्ताव उर्व्वशी के पिता कन्दर्पसिंह ने स्वीकार कर लिया। उर्व्वशी की मगनी हो गई। इसी अवसर में उर्व्वशी को जुलफिकार ने देखा और वह कन्दर्प को दबा यह मंगनी तुड़ा उर्व्वशी को औरङ्गजेब की भेट करने के लिये प्रयाग से दिल्ली लाया। कन्दर्प भी उर्व्वशी के साथ दिल्ली आया। कन्दर्प ने अपनी इस यात्रा का समाचार गुप्त रखा। उर्व्वशी ने अपनी इस यात्रा का समाचार किसी तरह पा इसे एक पत्र में लिख उसे अपने एक विश्वस्त कर्म्मचारी के हाथ मेरे पास भेजा। उस पत्र मे केवल इतना लिखा था, कि वह दिल्ली जाती है। यह पत्र पा बिना किसी सूचना के मैंने घर से निकल दिल्ली की यात्रा की। अब से कोई डेढ मास पहले मैं दिल्ली पहुंचा। ढूंढने पर वहा मुझे कन्दर्प मिला। उस से मैने उर्व्वशी के सम्बन्ध में प्रश्न किया। उसने मेरी दशा पर दया कर मुझ से कहा, कि उर्व्वशी सम्राट् की भेट के लिये दिल्ली लाई गई थी। एक दिन वह दिल्ली के बाहर जुलफिकार के एक बाग में पहुंचाई गई। वहीं उर्व्वशी का सत्यानाश होने को था; वह औरङ्गजेब की भेट की जाने को थी। किन्तु ठीक भेंट के समय कोई जादूगर आ औरङ्गजेब आदि को वशीभूत कर उर्व्वशी को उस बाग से निकाल न जाने कहा चला

गया। तब से उर्व्वशी का पता नही । कन्दर्पसिंह ने यह भी कहा, कि इस घटना के उपरान्त से जुलफिकारखा मुझ से असन्तुष्ट हो गया है और उसने मुझे स्वदेश लौटने की आज्ञा दे दी है; किन्तु मै उर्व्वशी को खो स्वदेश लौटना उचित नही समझता। कन्दर्प की इस बात पर मुझे विश्वास न हुआ। मैंने उस बाग में जाच की, तो मुझे जान पड़ा, कि उसकी वह बात सत्य है। इसके उपरान्त से मैं उर्व्वशी को ढूढ रहा हू । दिल्ली और मारवाड़ ढूढने के उपरान्त कुछ दिनो से इस राज्य में आया हू । यहा कई दिनो तक वन-वन घूमता रहा। ऐसे ही समय एक दिन रात्रि के समय इस खण्डर मे सो यहा की भूत-लीला का अनुभव मैंने प्राप्त किया। इस खण्डर से भागने पर मै इससे आगे के वन में गया। वहा मुझे सदलबल सिरोही-पति सुरतान-सिंह मिले। उन्हों ने मेरी यह जीवन-कथा सुन मुझ पर बड़ी कृपा प्रकाशित की और अपनी छावनी में रहने की आज्ञा दी। आज प्रातःकाल सदलबल महाराज उस वन से निकल अन्यत्र गये है। दो या तीन दिन में लौटेंगे। मेरे पास घोड़ा न था; इसलिये मै महाराज के दल के साथ जा न सका। चिन्तित मन से इधर-उधर भटकता एकाएक यहा आ पहुचा। इस भयङ्कर खण्डर को देख पहले मेरी यह इच्छा हुई, कि मैं यहा से भाग जाऊँ। फिर एकाएक मेरे मन में यह आया, कि अपने सामने के उस ढेर पर अवस्थित हो एक बार फिर इस भयङ्कर खण्डर को देख लेना चाहिये। अन्त में मैंने ऐसा ही किया। यह खण्डर देख जैसे ही मैं वापस लौटने पर उद्यत हुआ, वैसे ही आपने मुझे पकड़ लिया।

उस अफसर ने उस नवयुवक की यह बातें सुन और इन पर कुछ समय तक विचार कर कहा,–"लक्ष्मणसिंह! क्या तुम इस तरह वन-वन और देश-देश भटक उर्व्वशी को ढूंढ निकालने में समर्थ होगे?"

लक्ष्मण–इस में क्या; कोई भी बता नहीं सकता। फिर भी, एक बात सुनिश्चित है। इस तरह भटक या तो मै उर्व्वशी को ढूढ निकालूगा या इस यत्न मे प्राण-विसर्ज्जन करूँगा। जब तक उर्व्वशी न मिलेगी, तब तक मै गृहस्थ बन स्थिर हो रहना नहीं चाहता।

अफसर—तुम्हारे इस व्रत पर मुझे दया भी आती है; हँसी भी आती है।

लक्ष्मण—आप किसी कामिनी के प्रेम-पाश मे आबद्ध नहीं हुए है, इसी लिये मेरा यह व्रत देख हँसते हैं।

अफसर—(गम्भीर स्वर मे) नही; लक्ष्मणसिंह! हम सब के ही कामिनियों के प्रेम-पाश में बँधने का प्रयोजन नही। यह बात हम तुम्हारे सम्बन्ध में नही कहते; किन्तु वस्तुत आज कोई पाच सौ वर्ष से हम हिन्दू प्रेम लीला का रसास्वाद चखते-चखते अपने को तो खो ही चुके; अब अपने अस्तित्व को भी खोने पर उद्यत हुए है। हम बाल्य मे क्रीडा करते; कैशोर में कान्ताओ के कमनीय कटाक्ष पर मरना सीखते इसके फल से यौवन में वृद्ध हो अकाल ही पञ्चत्व को प्राप्त होते है। कोटि कोटि हिन्दुओ के जन्म ग्रहण करने का चरम-लक्ष्य प्रेम-पाश में आवद्ध होना और मर जाना ही हो गया है। मै यह बात प्रकृत प्रेमियो को लक्ष्य कर नही कहता; हिन्दू-जाति की रुचि की गति ही मेरी इन बातों का प्रधान लक्ष्य है। ऐसे कामातुर

हिन्दुओं की सन्तति हीन-बल पुरुषार्थ-वर्जित हो रही है; इसके फल से हिन्दू-जाति क्रम-क्रम से ध्वंस हो रही है। (हंस कर) फिर भी; तुम्हारा अनुमान बहुत सत्य है; मैंने कामिनियों को मर्य्यादापूर्व्वक देखा है सही; किन्तु कभी मैं उनके प्रेम पाश में आबद्ध न हुआ। मेरा अधिकांश समय युद्धस्थल में बीता; अवशेष समय में मैंने विश्राम किया; प्रेमानन्द लूटने का मुझे अवसर ही न मिला।

लक्ष्मण—आप कौन हैं?

अफसर—तुम्हारी तरह मैं भी क्षत्रिय ही हूं।

लक्ष्मण—आप का नाम क्या है?

अफसर—नाहरसिंह।

लक्ष्मण—(ससम्भ्रम अपने स्थान से उठ कर) महाराज यशवन्तसिंह के मित्र नाहरसिंह?

नाहर—वही।

लक्ष्मण—आप हिन्दू-जाति के मित्र, राजपूतों के मित्र और हिन्दू-धर्म्म के मित्र हैं। आप के वीरत्व की कहानियां हिन्दुओं के घर-घर प्रसिद्ध हैं और समय पाकर भारत के इतिहास में स्थान पायेंगी। आपको मैं वारवार प्रणाम करता हूं। अपने बड़े ही सौभाग्य के कारण आज आपका मैंने दर्शन पाया।

नाहर—(अपनी जगह से उठ और लक्ष्मणसिंह का हाथ अपने हाथ में ले) इन बातों का प्रयोजन नहीं। अन्धकार फैल गया; अब हमें यहां से चलना चाहिये। आज से तुम अपने को मेरा अतिथि समझो।

लक्ष्मण—अब आप कहां जाया चाहते हैं?

नाहर—(हंस कर) उसी विशाल कमरे में, जिसमें

अद्य से कुछ दिनो पहले तुमने भूत-लीला देखी थी।

उत्तमण—मै आपके साथ हूं।

अष्टम परिच्छेद।

यह कैसा रहस्य ?

अपने श्रीमानो और श्रीपतियों से हमें यह कहने का प्रयोजन नही, कि उस खण्डर में पड़े उन गिनती के सवारों का अफसर नाहरसिंह और कोई नहीं; हमारा वही-पूर्व्व परिचित नाहरसिंह है। सिरोही पति सुरतानसिंह के पकड़ने की औरङ्गजेब की आज्ञा अनिच्छा पूर्व्वक शिरोधार्य्य कर नाहर दिल्ली से मारवाड़ पहुंचा और वहाँ से अपने उन कुछ विश्वस्त सवारो को साथ ले उसने सिरोही प्रवेश किया। सिरोही मे वन के भीना आदि से सुरतानसिंह का पता लगाता अन्त मे वह उस वन मे पहुंचा और उसने अपने सवारों के साथ गुप्तरूप से उस खण्डर में अवस्थान किया।

नाहर जानता था, कि सुरतान महा तेजस्वी वीर है। सम्मुख समर मे किसी तरह भी जीवित पकड़ा जा नही सकता। इसी लिये नाहर ने सुरतान के पकड़ने की एक नई युक्ति उद्भावित की थी। नाहर यदि चाहता, तो सम्राट् और कम्पावतो की एक सुविशाल सैन्य ले सिरोही में घुसता और सुरतान से युद्ध कर अन्त में उसे मार डालता। किन्तु वह इस वीर क्षत्रिय की हत्या तो हत्या; उसके एक केश को भी नष्ट किया न चाहता था। उसकी आन्तरिक कामना यह थी, कि सुरतान किसी तरह पकड़ा जाकर औरङ्गजेब के सामने पहुचाया जावे और वहा ऐसी व्यवस्था हो, जिससे वीर सुरतान और औरङ्गजेब के बीच यदि

वास्तव में नहीं, तो प्रत्यक्ष में मैत्री हो जाये। नाहर ने अनुमान किया था, कि इस मैत्री के फल से ही सुरतान अपने पैतृक राज्य मे लौट शान्ति पूर्वक अपना राज्य-कार्य्य सम्पादन कर सकेगा। यथार्थ में नाहर का यह विचार सुरतान के पक्ष में अत्यन्त हितकर था और नाहर द्वारा सुरतान के सम्मुख उपस्थित किया जा सकता था। किन्तु नाहर को इस बात का विश्वास था, कि यह प्रस्ताव अपने सामने पा इसे सुरतान कभी अस्वीकार न करेगा। वह स्पष्ट कह देगा, कि उसे मृत्यु स्वीकार है; किन्तु बन्धन में पड़ औरङ्गजेब के सामने जाना स्वीकार नहीं। इसी लिये यह प्रस्ताव सुरतान के सामने उपस्थित करने के बदले नाहर ने इसके अनुसार कार्य्य करना स्थिर किया था।

इस खण्डर में आये नाहर को दो रातें बीत चुकी थीं। यह तीसरे दिन का प्रात काल था। इस अवसर में नाहर और लक्ष्मणसिंह के बीच बड़ा प्रेम-भाव उत्पन्न हुआ था। इस दिन नाहर लक्ष्मण का हाथ पकड़ उसे अपने साथ उस खण्डर के एक किनारे ले गया। वहा एक पत्थर पर दोनो बैठे। कुछ समय तक निस्तब्ध रह नाहर बोला,—"लक्ष्मणसिंह! क्या तुम यह जानते हो, कि मै यहाँ किस लिये आया हू ?"

लक्ष्मण—नहीं।

नाहर—मैं सुरतानसिंह का बहुत बड़ा उपकार करने आया हू। भगवत्कृपा से मेरा यत्न यदि सफल हो जायेगा, तो सुरतान अपना वर्त्तमान वन-जीवन समाप्त कर एक बार फिर सुख-शान्ति पूर्वक अपने पैतृक राज-सिंहासन पर बैठ शासन-दण्ड परिचालन कर सकेंगे।

लक्ष्मण-यदि यह बात है, तो आप इस सहर में क्यों ठहरे हुए हैं; सिरोही-पति के पास जा उनसे यह बात क्यों नहीं कहते ?

नाहर-वह मेरी बात से सहमत न होंगे; इसी लिये उनके पास मैं नहीं गया हूं।

लक्ष्मण-(आश्चर्य्यान्वित हो) मैं जहाँ तक जानता हूं, सिरोही-पति केवल वीर ही नहीं; बुद्धिमान् भी हैं; अपने हित की आप की इस बात को वह स्वीकार क्यों न करेंगे ? मेरी समझ में आप-का नाम सुनते ही वह आप की बात का विश्वास करेंगे।

नाहर—नहीं; लक्ष्मणसिंह ! तुम मेरी बात समझ नहीं सके हो; इसी लिये ऐसा कहते हो। क्या तुमने इस बात की ओर ध्यान दिया है, कि सिरोही-पति एक बार फिर शान्त भाव से स्वराज्य-शासन कैसे कर सकते हैं ?

लक्ष्मण—नहीं।

नाहर—जिस कारण से सिरोही-पति को वर्त्तमान अशान्ति प्राप्त हुई है, उसका अभाव ही उनके शान्तिलाभ का एकमात्र कारण है। इसका अर्थ यह है, कि औरङ्गजेब की शत्रुता के कारण सिरोही-पति को वर्त्तमान अशान्ति प्राप्त हुई है और औरङ्गजेब से मैत्री होने पर ही सिरोही-पति अपनी पूर्व्व शान्ति एक बार फिर प्राप्त कर सकते हैं।

लक्ष्मण-औरङ्गजेब और सिरोही-पति के बीच मैत्री कैसे हो सकती है ?

नाहर-सिरोही-पति के औरङ्गजेब के सामने जाने से।

लक्ष्मण—किन्तु—,"

नाहर-किन्तु सिरोही-पति स्वेच्छा पूर्व्वक औरङ्गजेब के

सामने न जायेंगे। इसीलिये मैं चाहता हूं, कि सिरोही-पति स्वेच्छापूर्वक हो या अनिच्छा पूर्वक औरङ्गजेब के सम्मुखीन अवश्य हों।

लक्ष्मण-इस बात का क्या प्रमाण है, कि औरङ्गजेब सिरोही-पति को अपने सामने पा उनकी हत्या करने की आज्ञा न देगा।

नाहर-ऐसा न होगा; कारण, औरङ्गजेब इस बात की प्रतिज्ञा कर चुका है, कि सिरोही-पति को अपने सामने पा उनका किसी प्रकार का भी अनिष्ट न करेगा।

लक्ष्मण—औरङ्गजेब ने यह प्रतिज्ञा किस से की है?

नाहर—मुझ से।

लक्ष्मण—ठीक है। अब मैं सब बातें समझ गया। आप सिरोही-पति को औरङ्गजेब के पास ले जाने के लिये यहां आये हैं।

नाहर—मेरे यहां आने का यही कारण है।

लक्ष्मण-तब आप अपना यह उद्देश्य कार्य्य मे परिणत करने के लिये कोई कार्य्य क्यो नही करते?

नाहर-इस लिये, कि मैं अत्यन्त गुप्त भाव से यह कार्य्य सम्पादन किया चाहता हूं। सिवाय इसके एक कठिनता भी है। परसों तुमने मुझ से कहा था, कि सिरोही-पति इस वन के समीप का वन छोड़ अन्यत्र चले गये हैं। मै नहीं जानता, कि वह लौटकर अपने पहले स्थान में एक बार फिर अवस्थित हुए हैं या नहीं।

लक्ष्मण—आप यदि मुझे आज्ञा दें, तो मैं उस वन में जा इस बात की सूचना ला सकता हूं।

नाहर-इस से तुम्हारा मुझ पर बड़ा उपकार होगा

और मैं प्रतिज्ञा करता हूं, कि तुम यदि मुझे यह साहाय्य दोगे, तो मैं तुम्हें तुम्हारी उर्वशी के ढूंढने में साहाय्य दूंगा।

लक्ष्मण—(दीर्घ निश्वास परित्याग कर) नाहरसिंह जी ! उर्वशी का मिलना कठिन ही नहीं ; असम्भव है; ऐसी दशा में मुझे प्रत्युपकार का कोई प्रयोजन नहीं; मैं आप के उद्देश्य का महत्व देख आप को यथासाध्य साहाय्य देने पर प्रस्तुत हूं।

नाहर—भगवान् की कृपा से सम्भव असम्भव होता है; जगत् में नित्य ही बहुतेरे सम्भव असम्भव और असम्भव सम्भव हुआ करते हैं। भगवत्कृपा से आप की उर्वशी का मिल जाना कोई बड़ी बात नहीं। आज मैं आप से एक रहस्य उद्घाटन करता हूं। मैने आप की उर्वशी को देखा है; उसका अपहृत होना भी देखा है।

यह कह नाहर ने उस दिन जुलफिकार के बाग के सामने उर्वशी के सम्बन्ध मे जो बातें देखी तथा सुनी थीं, वह सब लक्ष्मण से कह सुनाईं। इन्हें ध्यान पूर्वक सुन लक्ष्मण ने कहा,—" आप की समझ में मेरी उर्वशी को कौन ले गया?–उर्वशी को ले जाने वाला वह युवक कौन था?"

नाहर—मेरी समझ में वह कोई तपस्याभ्रष्ट योगी थे। उनमें जो योग-बल था, उसका उन्हों ने अन्त में दुरुपयोग किया। उर्वशी को अपने साथ ले जा उन्हों ने अपनी सुप्रवृत्ति का परिचय न दिया। किन्तु इसमें उनका दोष नहीं; काल का दोष है। काल के प्रभाव से महाप्रभाव हिन्दू योगी भी तपस्याभ्रष्ट और लक्ष्यभ्रष्ट होने लगे हैं। जो योगी आप की उर्वशी को ले गये हैं; मुझे विश्वास है, कि वह इच्छा करते ही भारत का; कोटि–कोटि हिन्दुओं

का असीम कल्याण कर सकते है; किन्तु काल के प्रभाव से वह अपनी शक्ति को इस कार्य्य में न लगा अपनी विलास-वासना की परितृप्ति में लगाया चाहते हैं।

लक्ष्मण—हाय! मेरी उर्वशी एक योगी की माया में फँसी हुई है।

नाहर—चिन्ता करने का प्रयोजन नहीं; योगी की माया में फँसी रहने पर भी उर्वशी जब तक स्वय धर्म्म-भ्रष्ट होने की इच्छा प्रकाश न करेगी, तब तक वह धर्म्म-भ्रष्ट की न जायेगी। किन्तु इस योगी के हाथ से छूटी हुई उर्वशी को क्या तुम ग्रहण कर सकोगे ?

लक्ष्मण—अवश्य ग्रहण कर सकूगा। मुझे और किसी बात की नहीं; केवल उर्वशी के पाने की चिन्ता है।

नाहर—ठीक है। यदि भगवत्कृपा हुई, तो आप को आप की उर्वशी अवश्य मिलेगी और मैं एक बार फिर कहता हू, कि यद्यपि यह कार्य्य कठिन है सही, तथापि इसके सम्बन्ध मे आप को मैं यथासाध्य साहाय्य दूंगा। अब तुम सुरतानसिंह के वन की ओर जा यह देखो, कि वह वहा लौट आये हैं या नहीं। इसी के साथ यह भी देखना, कि उनका शिविर वन के किस भाग में अवस्थित है और उनके शिविर तक पहुचने की अपेक्षाकृत कोई गुप्त राह है या नहीं।

लक्ष्मण-(उठ कर) मैं अभी जाता हूं।

नाहर-किन्तु एक बात याद रखना; यदि मेरे यहा आने या मेरे और तुम्हारे बीच सम्बन्ध स्थापित होने का समाचार सुरतान को मिल जायेगा, तो मेरा उद्देश्य सफल हो न सकेगा और ऐसा होने से मेरी उतनी क्षति

न होगी, जितनी सुरतान की होगी।

लक्ष्मण—(मुस्कुरा कर) आप मुझे ऐसा दुर्बोध न समझें। आपकी खातिर और सुरतानसिंह की हितकामना से इस समय मैं आप के गुप्तचर का कार्य्य करूँगा। सन्ध्या तक मैं आप के पास वापस आ जाऊँगा।

यह कह लक्ष्मणसिंह चला गया। उसके दृष्टि पथ से लोप होने पर नाहरसिंह अपनी जगह से उठ उस विशाल कमरे में वापस गया।

उस दिन सन्ध्या से कुछ पहले लक्ष्मणसिंह ने लौट नाहर को सूचना दी;—"आज प्रात काल सदलबल महाराज उस वन में लौट आये हैं। उनका शिविर प्रतिष्ठित हो गया है। चारो ओर उनके सरदारो और सवारो के शिविर हैं; मध्य में उनका शिविर है। बहुसख्यक शिविरों को बिना पार किये कोई मनुष्य महाराज के शिविर तक पहुच नहीं सकता।"

नाहर—शिविरो के बीच पहरे की क्या दशा है?

लक्ष्मण—चारो-ओर कठोर पहरा है। शिविरो के बीच तो पहरा है ही; उनके गिर्द वन में भी पहरा है। वन के बाहर भी पहरा है।

नाहर—(कुछ देर तक चिन्ता कर) जिस वन में महाराज अवस्थान करते हैं, उसमें कोई नदी भी है?

लक्ष्मण—है।

नाहर—यह नदी उन शिविरो से कितने अन्तर पर है और इसमें जल है या नहीं?

लक्ष्मण—इस नदी में थोड़ा जल है और यह शिविरों के बीच से बही है। महाराज की सैन्य इसी नदी का

सद व्यवहार करती है।

नाहर—महाराज का शिविर इस नदी के तट से कितने अन्तर पर है ?

लक्ष्मण—यदि मैं भ्रम नहीं करता, तो उनका शिविर नदी के ठीक तटदेश पर अवस्थित है।

नाहर—अन्यान्य शिविरो और महाराज के शिविर में क्या प्रभेद है ?

लक्ष्मण—महाराज का शिविर अपेक्षाकृत प्रशस्त और ऊँचा है। उसमें दश या बारह बड़े स्तम्भ हैं। मध्य के सर्वोच्च स्तम्भ पर राज-पताका लगी है।

नाहर—ठीक है। लक्ष्मणसिंहजी ! आज प्रात काल से तुमने आहार नही किया है। आहार कर अब विश्राम करो। इस दौड़-धूप मे बहुत क्लान्त हो गये होगे।

सन्ध्या से पूर्व ही सदलबल नाहर ने भोजन कर विश्राम किया। उस विशाल कमरे मे पहले सान्ध्य अन्धकार; फिर कृष्णपक्ष की रात्रि का अन्धकार फैला। नाहर-सिंह के साथियो के पास मशालें थीं; किन्तु नाहर की आज्ञा से वह जलाई जाती न थी। नाहर को भय था, कि मशालो के प्रकाश से महाराज के दल का कोई मनुष्य उनके उस अवस्थान से सूचित हो सकता था। फलत रात्रि होते ही वह विशाल कमरा विषम अन्धकार से आच्छन्न हुआ।

क्रमश उस कमरे में निस्तब्धता फैली। परस्पर वार्तालाप करनेवालो में बहुतेरे मनुष्य निद्रादेवी के वशीभूत हुए। अन्य लोगों की निद्रा भङ्ग होने के भय से अब शेष लोग धीरे—धीरे बातचीत करने लगे। उस विशाल कमरे में लेटे हुए यह मनुष्य बहुत बड़े सन्दूक में पड़ी

कुछ चींटियों की तरह जान पड़ते थे। लक्ष्मणसिंह उस समय सोया न था। उस विशाल अन्धकारमय कमरे का क्षोभ उसके मन पर छा गया। इसके फल से बहुत यत्न करके भी वह सो न सका। वह जब आँखें खोलता, तब उस अन्धकार में उसे बहुतेरी भीषण-दर्शन मूर्त्तियां नाचती-कूदती दिखाई देतीं। इन्हें देख वह तुरन्त आखें बन्द कर लेता था।

एक प्रहर रात्रि बीत गई; द्वितीय प्रहर रात्रि समीप आई; फिर भी, लक्ष्मणसिंह को निद्रा न आई। वह सोने का जितना यत्न करता, उतना ही जागता था। अन्त में, अपनी इस अनिद्रा से दुःखित हो वह उठ कर अपने बिस्तर पर बैठ गया। ऐसे समय उसे जान पड़ा; मानो उस कमरे के एक अंश में खड़े दो मनुष्य अत्यन्त मृदु स्वर से बातें कर रहे थे। इन बातों के समाप्त होने पर उसे मनुष्य के पद-शब्द सुनाई दिये। यद्यपि लक्ष्मणसिंह बहुतेरे वीर पुरुषों के बीच सोया था, तथापि इन दोनों बातों की वजह उसका दुर्बल हृदय कांप उठा। उसके समीप ही नाहर सो रहा था। उसके समीप धीरे-धीरे जा उसे लक्ष्मण ने जगाया।

नाहर—कौन ?

लक्ष्मण—चुप-चुप-शोर न करिये; मैं हूं, लक्ष्मणसिंह।

नाहर-(मृदु स्वर से) क्यों कुशल तो है न ?

लक्ष्मण—भूत-भौतिक लीला आरम्भ हुई है।

नाहर लक्ष्मण का भय देख उस अन्धकार में मुस्कराया

लक्ष्मण-मैं अपने बिस्तर पर जा लेटता हूं; किन्तु आप से प्रार्थना करता हूं, कि आप जागते रहें। ऐसा करने से आप भी भौतिक गति-विधि का शब्द सुन सकेंगे, जिस से आप को मेरी बातों का सत्यासत्य विदित हो जायेगा।

यह कह लक्ष्मण वापस जा अपने बिस्तर पर लेटा। अभी वह अच्छी तरह लेटा न था; ऐसे समय उस कमरे के एक कोने से किसी चीज के गिरने का धमाका हुआ। इसे सुन लक्ष्मण एक बार फिर उठ बैठा और नाहर चौंका। जिस ओर से धमाका हुआ था, दोनों ने उसी ओर अपने कान लगाये। उस धमाके के कुछ क्षण के उपरान्त उस ओर से एक बार फिर दो मनुष्यों के परस्पर बातचीत करने की ध्वनि सुनाई दी और इसके उपरान्त पद-शब्द सुनाई दिये।

इसे सुन नाहर स्थिर रह न सका। वह अपनी तलवार ले उठा। ऐसे समय लक्ष्मण एक बार फिर उसके समीप पहुंचा। उससे उसने कहा,—" क्यों; अब आप को मेरी बात पर विश्वास हुआ?"

नाहर-इस कमरे में या इसके समीप और मनुष्यों का भी अवस्थान है।

लक्ष्मण—यह आप का भ्रममात्र है। जिस रात्रि को पहले-पहल मैं इस कमरे में सोया था, उस रात्रि के बीतने पर प्रात काल मैंने इस कमरे के प्रत्येक बन्द द्वार को अच्छी तरह देखा था। सब सब दृढता पूर्वक बन्द थे। मुझे तो ऐसा ज्ञात पड़ा, कि उन द्वारों की दूसरी तरफ टूटी इमारत के टुकड़ों का ढेर लगा हुआ था। फलतः उन द्वारों के भीतर किसी मनुष्य के होने की सम्भावना नहीं। रह गया इस कमरे में किसी अजनबी मनुष्य का अवस्थान।

इसके सम्बन्ध में आप को इस बात का यह विश्वास दिलाना निरर्थक है, कि यह असम्भव है।

ऐसे समय जिस ओर से वह धमाका सुनाई दिया था, उसी ओर से किसी के मृदु-मृदु हँसने का शब्द सुनाई दिया। इसे सुन नाहर भी क्षुब्ध हुआ। उसने लक्ष्मण से कहा,—"लक्ष्मणसिंह! क्या तुम मेरे साथ आ सकते हो?"

लक्ष्मण—यद्यपि इस भौतिक कारड के पीछे पड़ने की मेरी इच्छा नहीं, तथापि आप के साथ मै यम-सदन में भी जाने के लिये प्रस्तुत हूं।

नाहर—क्या तुम्हारी तलवार तुम्हारे हाथ में है?

"नहीं; मै अभी उसे उठा लेता हू" कह लक्ष्मण ने अपनी तलवार अपने बिस्तर से उठा ली।

"लक्ष्मण! सोते हुए जवानो का विस्तर बचा मेरे पीछे-पीछे आओ।"

यह कह नाहर आगे-आगे चला और लक्ष्मण उस के पीछे-पीछे। दोनों उस कमरे के उस भाग में आये, जिस भाग से उन्हो ने नाना प्रकार के शब्द सुने थे। वहाँ पहुच और उस अधकार में टटोल नाहर ने यहाँ के प्रत्येक द्वार को देखा। सभी द्वार दृढतापूर्वक बन्द थे। उनमें कान लगा ध्यानपूर्वक सुनने से उनके भीतर से किसी तरह का शब्द सुनाई न दिया। इस तरह के अपने सभी यत्न में अकृत-कार्य्य हो अन्त में नाहर अपने विस्तर की ओर लौटा चाहता था; ऐसे समय उसे घुगरू के बोलने का शब्द सुनाई दिया। यह शब्द उसके अत्यन्त समीप हुआ था। इसे सुनते ही नाहर चौंक पड़ा।

नाहर—लक्ष्मण!

लक्ष्मण—जी।

नाहर—घुगरू का शब्द तुमने भी सुना है ?

लक्ष्मण—सुना है।

नाहर—यह शब्द किस ओर से आया ?

लक्ष्मण—मेरे अत्यन्त समीप यह शब्द हुआ है। मुझे तो ऐसा जान पड़ा, कि किसी ने मेरे कान के समीप घुगरू बजाया। आप से एक प्रार्थना है, महाशय।

नाहर—क्या ?

लक्ष्मण—हमें इन झगड़ो में न फँस अपने बिस्तर की ओर लौट चलना चाहिये और कल प्रातःकाल यह दूषित खण्डहर परित्याग करना उचित है। इस वन में ऐसे कितने ही स्थान हैं, जिन में आप सदलबल रह सकते हैं।

नाहर—लक्ष्मणसिंह ! इस समय इन बातों का प्रयोजन नहीं। इस समय हमें यह देखना चाहिये, कि यह क्या रहस्य है; यह सब शब्द कहाँ से आते हैं और इनका करनेवाला या करनेवाले कौन है ? इस समय तुम यह देखो, कि तुम्हारे जिस कान में घुगरू का शब्द हुआ, तुम्हारे उस कान के समीप कोठरी की दीवार में क्या है।

लक्ष्मण—मेरे दाहने कान के समीप वह शब्द हुआ था और इस कान के समीप इस कोठरी की दीवार में एक अलमारी है।

नाहर तुरन्त उस अलमारी के समीप पहुंचा। अलमारी के द्वार बन्द थे। हिलाने से हिलते थे; खोलने से खुलते न थे। नाहर ने उस अलमारी के दोनो द्वारो के बीच अपना कान लगाया। उसे कोई शब्द सुनाई न दिया; किन्तु मुक्त वायु का मृदु प्रवाह अलमारी के

इसके सम्बन्ध में आप को इस बात का यह विश्वास दिलाना निरर्थक है, कि यह असम्भव है।

ऐसे समय जिस ओर से वह धमाका सुनाई दिया था, उसी ओर से किसी के मृदु-मृदु हँसने का शब्द सुनाई दिया। इसे सुन नाहर भी क्षुब्ध हुआ। उसने लक्ष्मण से कहा,—"लक्ष्मणसिंह! क्या तुम मेरे साथ आ सकते हो?"

लक्ष्मण—यद्यपि इस भौतिक कारड के पीछे पड़ने की मेरी इच्छा नहीं, तथापि आप के साथ मै यम-सदन में भी जाने के लिये प्रस्तुत हूं।

नाहर—क्या तुम्हारी तलवार तुम्हारे हाथ में है?

"नही; मैं अभी उसे उठा लेता हूं" कह लक्ष्मण ने अपनी तलवार अपने बिस्तर से उठा ली।

"लक्ष्मण! सोते हुए जवानो का बिस्तर बचा मेरे पीछे-पीछे आओ।"

यह कह नाहर आगे-आगे चला और लक्ष्मण उस के पीछे-पीछे। दोनों उस कमरे के उस भाग में आये, जिस भाग से उन्हो ने नाना प्रकार के शब्द सुने थे। वहाँ पहुच और उस अधकार मे टटोल नाहर ने वहाँ के प्रत्येक द्वार को देखा। सभी द्वार दृढतापूर्वक बन्द थे। उनमें कान लगा ध्यानपूर्वक सुनने से उनके भीतर से किसी तरह का शब्द सुनाई न दिया। इस तरह के अपने सभी यत्न में अकृत-कार्य्य हो अन्त में नाहर अपने बिस्तर की ओर लौटा चाहता था; ऐसे समय उसे घुगरू के बोलने का शब्द सुनाई दिया। यह शब्द उसके अत्यन्त समीप हुआ था। इसे सुनते ही नाहर चौक पड़ा।

नाहर—लक्ष्मण!

लक्ष्मण—जी ।

नाहर—घुंगरू का शब्द तुमने भी सुना है ?

लक्ष्मण—सुना है ।

नाहर—यह शब्द किस ओर से आया ?

लक्ष्मण—मेरे अत्यन्त समीप यह शब्द हुआ है। मुझे तो ऐसा जान पड़ा, कि किसी ने मेरे कान के समीप घुंगरू बजाया । आप से एक प्रार्थना है, महाशय।

नाहर—क्या ?

लक्ष्मण—हमें इन झगड़ों में न फँस अपने बिस्तर की ओर लौट चलना चाहिये और कल प्रातःकाल यह दूषित खण्डहर परित्याग करना उचित है। इस वन में ऐसे कितने ही स्थान हैं, जिन में आप सदलबल रह सकते हैं ।

नाहर—लक्ष्मणसिंह ! इस समय इन बातों का प्रयोजन नहीं। इस समय हमें यह देखना चाहिये, कि यह क्या रहस्य है; यह सब शब्द कहाँ से आते हैं और इनका करनेवाला या करनेवाले कौन है ? इस समय तुम यह देखो, कि तुम्हारे जिस कान में घुंगरू का शब्द हुआ, तुम्हारे उस कान के समीप कोठरी की दीवार में क्या है।

लक्ष्मण—मेरे दाहने कान के समीप वह शब्द हुआ था और इस कान के समीप इस कोठरी की दीवार में एक अलमारी है ।

नाहर तुरन्त उस अलमारी के समीप पहुंचा । अलमारी के द्वार बन्द थे । हिलाने से हिलते थे; खोलने से खुलते न थे । नाहर ने उस अलमारी के दोनो द्वारों के बीच अपना कान लगाया । कोई शब्द सुनाई न दिया; किन्तु सुख वायु का मृदु प्रवाह अलमारी के भीतर

से आ उसके कान से टकराया। इस से नाहर समझ गया, कि उस अलमारी के भीतर कोई मुक्त स्थान है।

लक्ष्मण—क्या कोई बात मालूम हुई?

नाहर—जो बात मालूम हुई है, वह प्रयोजनीय भी हो सकती है और अप्रयोजनीय भी।

ऐसे समय दोनो ने स्पष्ट सुना, मानो उनके समीप ही कोई धीरे-धीरे हँस रहा है। यह हँसी सुन लक्ष्मण अत्यन्त भय-विह्वल हुआ; नाहर ने बड़े ही आनन्द से कहा,—"अब जो बात मालूम हुई है, वह बड़ी ही प्रयोजनीय है।"

लक्ष्मण—कौन सी बात?

नाहर—वह बात यह है, कि यह सब शब्द इसी अलमारी के भीतर से आये है और इस समय जो हास्य-ध्वनि आई है, वह भी इसी अलमारी के भीतर से आई है।

लक्ष्मण—यह कैसी बात है?

नाहर—यह एक रहस्य है, जिसे मैं उद्घाटन किया चाहता हूं।

यह कह नाहर ने उस अलमारी का द्वार खोलने का विशेष रूप से यत्न किया; किन्तु इसका कोई फल न हुआ। इसके उपरान्त नाहर का सुदृढ़ स्कन्ध उस अलमारी से लगा। नाहर ने जैसे ही उस द्वार पर अपने कन्धे का बल प्रयोग किया, वैसे ही वह विविध मृदु शब्द करता धीरे-धीरे खुलने लगा। वह द्वार जीर्ण था उसे नाहर अपने एकही पदाघात से तोड़ सकता था। किन्तु ऐसा करने से महा शब्द होता और उस से नाहर के सोते हुए साथी जाग जाते। नाहर अपने साथियो को बिना जगाये अपना उस समय का कार्य्य सम्पादन किया चाहता था।

अन्त में नाहर के उस बल-प्रयोग का सुफल उत्पन्न हुआ। उस अलमारी का बन्द द्वार एकाएक खुल गया। सुशीतल मुक्त वायु का मन्द प्रवाह आ लक्ष्मणसिंह और नाहरसिंह के चेहरे पर लगा।

नाहर ने उस खुले हुए द्वार के भीतर दृष्टि की। उस घोर अन्धकार मे वहाँ उसे क्या दिखाई दे सकता था ? उस अलमारी के भीतर का अन्धकार इतना प्रगाढ था, कि उसमें आँखें फाड़-फाड़ कर देखने से भी कोई चीज दिखाई न देती थी। नाहर ने हाथ फैला उस अलमारी की किसी दीवार को स्पर्श करने का यत्न किया। इस यत्न मे उसे सफलता न हुई। उसने अपनी बगल में खड़े लक्ष्मणसिंह से कहा,—" यह अलमारी नहीं; कोठरी है।"

लक्ष्मण-कोठरी है ?

नाहर-हा; और मै इसमें प्रवेश किया चाहता हू। क्यो लक्ष्मण! क्या तुम भी मेरे साथ इसमें प्रवेश कर सकोगे ?

लक्ष्मण—प्रवेश करने में आपत्ति नही; किन्तु प्रश्न यह है, कि इसका फल क्या होगा ?

नाहर—फल का हाल पीछे खुलेगा; इस समय यह देखना चाहिये, कि जिन शब्दों को तुम भूतो का शब्द बताते हो, उन शब्दो के प्रकट होने का रहस्य क्या है ?

लक्ष्मण—इस रहस्य को प्रकट करके क्या कीजियेगा ?

नाहर-जो बात अभी तक अज्ञात है, उसका परिणाम-फल मै कैसे बता सकता हूं ? लक्ष्मण! तुम यहीं ठहरो; मैं प्रकाश करने का सामान ले अभी वापस आता हू।

यह कह नाहर लक्ष्मण के समीप से चला गया और कुछ क्षण के उपरान्त लौट उससे उसने कहा,—" मै इस

अलमारी में घुसता हूं; तुम यदि आया चाहो, तो मेरे पीछे आओ ।"

आगे नाहर ने; उसके पीछे लक्ष्मण ने उस अलमारी में प्रवेश किया । उस विशाल कमरे की गच से अलमारी का द्वार कोई दो हाथ ऊंचा था । यह दोनो बारी-बारी से अलमारी के खुले द्वार में बैठ दूसरी ओर उतर गये। दूसरी ओर पहुंचते ही नाहर ने अलमारी के खुले हुए द्वार को भीतर से बन्द कर लिया । यह द्वार टूटा न था । सावधानी से बन्द किया जाने पर उसी तरह बन्द हो गया, जिस तरह पहले बन्द था । नाहर उस द्वार के बन्द करने के कार्य्य से अभी पूर्णतया निवृत्त हुआ न था; ऐसे समय उसे उस अन्धकार में किसी का पद-शब्द और इसके उपरान्त किसी की हास्य-ध्वनि सुनाई दी ।

लक्ष्मण—मेरी समझ में यह भूत-लीला है और इससे सामना करना; अपने जीवन से युद्ध करना है ।

नाहर—और मेरी समझ में यह कोई गुप्त रहस्य है, जिसका उद्भेदन हमारा प्रधान कर्त्तव्य है।

यह कह नाहर ने चकमाक झार आग उत्पन्न की और उसके साहाय्य से बहुत मोटी और लम्बी एक मोमबत्ती जलाई । उसके प्रकाश मे नाहर और लक्ष्मण दोनो ने अपनी चारो ओर देखा । उन्हें दिखाई दिया, कि सचमुच ही वह एक सङ्कीर्ण कोठरी में खड़े थे । उसके एक छोर से सङ्कीर्ण सीढ़ियो का एक सिलसिला नीचे की ओर चला गया था । उस कोठरी और उन सीढ़ियो के रङ्ग-रूप से जान पड़ता था, कि बहुत समय से उनका व्यवहार किया न गया था। उस कोठरी और उस सीढ़ी की दीवारो

तथा छत पर काई की मोटी तह जम गई थी और मकड़े-मकड़ियों के जाले तने हुए थे। फिर; यह भी जान पड़ता था, कि उस सीढ़ी से आगे कोई प्रशस्त स्थान था; कारण, उस सीढ़ी से अविराम वायु-प्रवाह आ रहा था। उस कोठरी तथा उस सीढ़ी के सिलसिले पर कोई मनुष्य तो मनुष्य; उसका कोई चिन्ह भी दिखाई न देता था।

लक्ष्मण—देखा, आप ने ? यहाँ न तो मनुष्य है; न उसका कोई चिन्ह ?

नाहर—फिर भी; जो शब्द हमने समय-समय पर सुने हैं, उनसे प्रकट है, कि जिस प्रशस्त स्थान से यह वायु आती है, उस स्थान में मनुष्य अवश्य हैं। उनकी गति-विधि का शब्द इस प्रवाह ने हमारे कानों तक पहुचाया है। अब अधिक बातें कर समय नष्ट करने का प्रयोजन नहीं; आओ हम लोग इस सीढ़ी से नीचे चलें।

इसके उपरान्त नाहर और लक्ष्मण दोनो यथाक्रम आगे-पीछे उस सीढ़ी से नीचे उतरने लगे। उस सीढ़ी के हरेक दण्ड पर गर्द की मोटी तह थी। उसमे इन दोनो के पैर धँस जाते थे। दोनो को मकड़ी के जालों को हटा, धूलि में पैर जमा आगे बढ़ना पड़ता था। दोनो किसी तरह का भी शब्द उत्पन्न होने देते न थे। लक्ष्मण अपनी असावधानी से यदि किसी प्रकार का शब्द करता था, तो इसके लिये लक्ष्मण को नाहर तुरन्त टोकता था।

उस सीढ़ी मे कोई पचीस दण्ड थे। उन्हें समाप्त कर दोनो उसके नीचे पहुँचे। नाहर ने अपने हाथ की उस जलती मोमबत्ती के सम्मुख अपने बायें हाथ की हथेली इस तरह लगा दी थी, जिससे उस मोमबत्ती का प्रकाश नाहर के

पीछे पड़ता; आगे पड़ता न था। इस व्यवस्था से उस मोमबत्ती को वायु का झोंका भी लगता न था और सीढ़ी के निम्न भाग में प्रकाश भी पहुंचता न था। जैसे ही नाहर उस सीढ़ी के नीचे पहुँचा, वैसे ही उसने अपने हाथ की वह मोमबत्ती बुझा दी। एक बार फिर उस स्थान मे घोर अन्धकार छा गया।

वह सीढ़ी एक द्वार के समीप समाप्त हुई थी। द्वार के भीतर कोई साठ गज लम्बा और कोई चालीस गज चौड़ा एक विशाल कमरा था। वह कमरा प्राचीन ढग का था। प्राचीन ढङ्ग के बने खम्भों की कई श्रेणियाँ अपने माथे पर उस कमरे की विशाल छत संभाले हुई थी। उस कमरे की गच पर मट्टी की मोटी तह जमी थी। उस पर जगह-जगह जीर्ण छत से गिरे ईंट-पत्थर आदि स्तूपाकार पड़े थे। उस कमरे की चारो ओर की दीवार के ऊपरी भाग में छत से कुछ ही नीचे थोड़े-थोड़े अन्तर पर समान आकार-प्रकार की बहुसख्यक खिड़कियां बनी थीं; उन्ही से मुक्त वायु आ उस कमरे में प्रवेश कर उस सीढ़ी की ओर जाती थी। उस कमरे में ध्यान देने योग्य बात यह थी, कि उसके वाम पार्श्व की दीवार के एक उन्मुक्त द्वार के बाहर एक बड़े पाषाण-खण्ड पर पीतल का बहुत बड़ा एक प्रदीप जल रहा था। उस कमरे के द्वार पर तो यह प्रदीप था ही; भीतर भी कोई प्रदीप जल रहा था; उसका प्रकाश द्वार के बाहर निकल रहा था।

नाहर और लक्ष्मण उस विशाल कमरे के उस सीढ़ी वाले द्वार में खड़े हो यह सब बातें देख रहे थे; ऐसे समय प्रदीप से प्रकाशित उस द्वार के भीतर से किसी मनुष्य के

हँसने की ध्वनि सुनाई दी । उसे सुन लक्ष्मण भीत हुआ; नाहर ने कहा,—"सुनो लक्ष्मण ! अपने भूत की हास्य-ध्वनि सुनो ।"

लक्ष्मण-मेरी समझ में यह बात अभी तक नहीं आई है, कि आप इस भूत के पीछे पड़ किस लाभ से लाभान्वित हुआ चाहते हैं ।

नाहर-लाभ-हानि की इच्छा से नहीं; अपना कौतुक मिटाने की कामना से ही मैं यहाँ आया हूं । अच्छा, लक्ष्मण ! अब हमें और भी सावधानी के साथ अपनी गति-विधि करना चाहिये। किसी तरह का भी शब्द करने से हम लोग किसी विपद् में फँस जा सकते है ।

लक्ष्मण-जिस स्थान में विपद् पग-पग पर छिपी बैठी है, उस स्थान में गति-विधि करने का हमें प्रयोजन ही क्या है ?

नाहर—इस समय तुम्हारी इन बातो का प्रयोजन नहीं । सुनो, लक्ष्मण ! मैं इस स्तम्भ-श्रेणी का आश्रय ले उस प्रकाशित उन्मुक्त द्वार के सामने पहुच उसके भीतर का दृश्य एक स्तम्भ के पीछे ठहर देखना चाहता हू । तुम मेरे पीछे—पीछे आओ । देखना अपनी असावधानी की वजह किसी तरह का शब्द न करना ।

यह कह नाहर द्वार से निकल उस प्रकाशित द्वार के सब से समीप की स्तम्भ-श्रेणी के आरम्भिक एक स्तम्भ के पीछे जा खड़ा हुआ। लक्ष्मण ने भी ऐसा ही किया । इसके उपरान्त वह दोनो उस स्तम्भ-श्रेणी के एक स्तम्भ के पीछे से निकल उससे आगे दूसरे स्तम्भ के पीछे; दूसरे स्तम्भ के पीछे से निकल तीसरे स्तम्भ के पीछे खड़े होते हुए क्रमश आगे बढ उस प्रकाशित द्वार के सामने के स्तम्भ

के पीछे पहुंचे। इस क्रम से आगे बढ़ने का उद्देश्य यह था, कि उस विशाल कमरे या उस प्रकाशित द्वार के भीतर का कोई मनुष्य उन्हें देख न सके।

अन्त मे यह दोनो जिस स्तम्भ के पीछे जा खड़े हुए, वह स्तम्भ उस प्रकाशित द्वार के ठीक सामने था। उस स्तम्भ और उस द्वार के बीच कोई बारह हाथ का अन्तर था। उस द्वार के बाहर के उस बड़े प्रदीप का प्रकाश उस स्तम्भ के जिस भाग में पड़ता था, उसके ठीक विपरीत पार्श्व मे उस स्तम्भ की प्रतिछाया का प्रश्रय ले यह दोनों खडे हुए। वह स्तम्भ कई गज के घेरे का था; उसका निम्न भाग अपने ऊपर के भाग की अपेक्षा अधिक प्रशस्त था; इसीलिये यह दोनो उस स्तम्भ के पीछे अच्छी तरह छिप कर खड़े हो सके।

उस स्तम्भ के पीछे पहुंचते ही इन दोनो ने उस प्रकाशित द्वार के भीतर दृष्टि की। वहाँ का जो दृश्य दिखाई दिया, उसे देख उन्हे आश्चर्य्य भी हुआ; कौतूहल भी हुआ। वह द्वार अत्यन्त सुसज्जित एक कमरे का था। उसमें एक नही; अनेक प्रदीपो का प्रकाश हो रहा था। वह प्रकाश भिन्न-भिन्न रङ्ग का था; जान पड़ता, कि विविध वर्ण के फानूसों से प्रकट हो रहा था। वह कोठरी शून्य न थी; उसके किसी अंश में बैठ बात चीत करते हुए कितने ही मनुष्यो का कण्ठस्वर सुनाई देता था।

नाहर—यही सब तुम्हारे भूत हैं।

लक्ष्मण—भूत हो या न हो; किन्तु इसमे संशय नहीं, कि इस कोठरी में बहुतेरे मनुष्य है और वह हमें यदि देख पायेंगे, तो किसी विपद् में फँसा देंगे।

नाहर—लक्ष्मण ! जो मनुष्य इस कोठरी में बातें कर रहे हैं, वह सब पुरुष नहीं; स्त्रियाँ हैं। उनके कण्ठस्वर से क्या तुम उनकी जाति पहचान नहीं सकते ?

लक्ष्मण—इस कोठरी में यदि स्त्रियां हैं, तो इस कोठरी में या इसके समीप ही पुरुषों का होना भी नितान्त सम्भव है।

नाहर—दुःख है, कि इस स्थान से भी इस कोठरी के भीतर के सम्पूर्ण दृश्य दिखाई नहीं देते। इस कोठरी के इस द्वार के समीप ही एक दूसरी कोठरी का द्वार है। यह द्वार टूटा हुआ है और इसके भीतर घोर अन्धकार है। मेरी समझ में यह अन्धकारमयी कोठरी और इस प्रकाशित कोठरी के बीच केवल एक दीवार है। इस दीवार में कोई छिद्र होने से उसके द्वारा हम लोग इस अन्धकारमयी कोठरी से इस प्रकाशित कोठरी के दृश्य अच्छी तरह देख सकते हैं।

लक्ष्मण—ठीक है। किन्तु इस स्थान से उस कोठरी तक पहुंचने में हम पर विपद् आ सकती है।

नाहर—आ भी सकती है, नहीं भी आ सकती। हमें अपनी सारी सावधानी और सतर्कता इस स्तम्भ और इस अन्धकारमयी कोठरी के द्वार के बीच की इस चौदह या सोलह हाथ भूमि के तय करने में अवलम्बन करना चाहिये। मैं आगे चलता हूं, तुम मेरे पीछे आओ, देखना! किसी तरह का भी शब्द उत्पन्न होने न देना।

यह कह नाहर दबे पैर बड़ी ही फुरती से उस स्तम्भ के पीछे से निकल उस अन्धकारमयी कोठरी के द्वार के समीप पहुंच उसमें प्रविष्ट हुआ। लक्ष्मण ने भी ऐसा ही किया। बड़े ही दुस्साहसिकता का यह कार्य्य निर्विघ्न समाप्त हुआ। उस प्रकाशमयी कोठरी के बाहर जलते हुए

उस बड़े प्रदीप के प्रकाश का प्रतिबिम्ब उस अन्धकारमयी कोठरी के द्वार में प्रविष्ट हो उस कोठरी के एक अंश में बड़ा ही धुंधला प्रकाश फैला रहा था। इस प्रकाश में नाहर और लक्ष्मण ने देखा, कि वह कोठरी साफ थी और उसमें तेल, बत्ती आदि कितनी ही चीजें रखी थी। नाहर के अनुमानानुसार सत्य ही उस कोठरी और उस प्रकाशित कोठरी के बीच केवल एक दीवार थी। इन दोनों को यह देख और भी प्रसन्नता हुई, कि उस दीवार के मध्यभाग में एक ताक था और उसमें जालदार एक पत्थर लगा था। उस पत्थर के जाल से उस कोठरी का मनुष्य उस प्रकाशमयी कोठरी को सिर्फ देख ही नहीं सकता; उसमें बैठे मनुष्यों की बातें भी अच्छी तरह सुन सकता था। बड़ी सतर्कता से नाहर और लक्ष्मण दोनों ने आगे बढ़ उस जाल से अपनी आँखें लगा दीं।

उस प्रकाशमयी कोठरी में जो दृश्य दिखाई दिये, उन्हें देख यह दोनों कौतूहलाक्रान्त हुए; नाहर आश्चर्यान्वित भी हुआ। वह प्रकाशमयी कोठरी कोई तीस हाथ लम्बी और पन्द्रह हाथ चौड़ी थी। उसकी गच से उसके फर्श की ऊँचाई कोई बारह हाथ थी। उसकी छत और दीवारें दुरुस्त और लाल रङ्ग से रंगी हुई थीं। उसका फर्श अत्यन्त बहुमूल्य और समूची कोठरी की लम्बाई–चौड़ाई के एक बड़े सूती कालीन से छिपा हुआ था। उसकी छत से बहुसंख्यक रङ्गीन झाड़–फानूस लटक रहे थे, जिनमें कितने ही उस समय प्रकाशित थे। उसकी दीवारों पर भाँति–भाँति के चित्र और तरह–तरह की मूर्त्तियाँ लगी थीं। उसकी फर्श पर जो कालीन बिछा था, उसके मध्य-

भाग में रत्नजटित सुवर्ण निर्म्मित एक चौकी रखी थी। उस पर कारचोबी के काम का मखमली गद्दा बिछा था, जिस पर कितने ही मसनद और तकिये रखे थे। उस चौकी पर मसनद से लगा एक युवा मनुष्य बैठा था। इसका वस्त्र साधारण था सही; किन्तु इसके आकार-प्रकार से बड़ी ज्योति प्रस्फुटित होती थी। जिस चौकी पर यह युवक बैठा था, उसके समीप एक ओर रत्नजटित कितनी ही कुरसियाँ रखी थीं। उनमें चार कुरसियों पर अतीव रूप लावण्यशालिनी विविध वस्त्राभूषण से सुसज्जित चार रमणियाँ बैठी थीं; अवशेष कुरसियां खाली थीं। उस युवक और उन रमणियों के बीच वार्त्तालाप हो रहा था।

उस युवक को लक्ष्मण ने यह पहले-पहल देखा था; इसलिये उसे उतना आश्चर्य्य न हुआ। किन्तु नाहर उस युवक को अब से पहले देख चुका था; इसी लिये उसे इस स्थान में एकाएक देख नाहर के आश्चर्य्य की सीमा न रही। वह इस आविष्कार से आश्चर्य्य-चकित हो क्षणमात्र के लिये उस स्थान और अपनी अवस्था को भूल गया। पाठक! उस चौकी पर बैठा वह युवक और कोई नहीं;—जुलफिकार की कैद से उर्वशी को छुड़ानेवाला हमारा पूर्व्वपरिचित वही अज्ञातनामा रहस्यमय युवक था।

जिस समय इन दोनों ने उस युवक को देखा, उस समय वह अपने सामने बैठी उन रमणियों से कह रहा था,—"शीत गई, वसन्त उपस्थित है। इसके उपरान्त ही ग्रीष्म का आगमन होगा।"

एक रम०-ग्रीष्मकाल में आप से हमारा वियोग होगा।

युवक—वियोग होगा सही; किन्तु अधिक समय के

लिये नहीं; अल्पकाल के लिये ।

द्वितीय रम०--गत वर्ष आप ग्रीष्म के आरम्भ में यहा से गये और वर्षा के मध्यभाग में लौट आये थे ।

युवक-इस वर्ष वर्षा के आरम्भ ही में लौट आऊँगा।

तृतीय रम०-इस वर्ष अपने जाने से पहले हम लोगों के सम्बन्ध मे आप क्या व्यवस्था किया चाहते है ?

युवक—वही व्यवस्था की जायेगी, जो अन्यान्य वर्ष की गई थी । तुम सब जयपुर अपने मकान पहुंचा दी जाओगी । तुम्हारे अभिभावक आ तुम्हें ले जायेंगे और वर्षाकाल के आरम्भ में मेरे आने से पहले तुम्हें यहाँ पहुंचा जायँगे । अच्छा; तुम सब जब अपने मकान वापस जाती हो, तब वहा क्या किया करती हो ?

चतुर्थ रम०—प्रभो ! आप जानते हैं, कि हम चारो जयपुर की रहनेवाली दरिद्रो की क्वारी लड़कियाँ थीं । हमारे अभिभावक धन ले हमें वेश्याओं के हाथ बेचा चाहते थे । यह कहने का प्रयोजन नहीं, कि वेश्याये हमे खरीद हम से नीच वृत्ति करा हमारे द्वारा धनोपार्ज्जन करती । अब से चार वर्ष पूर्व्व हमारे अभिभावक हमें वेश्याओ के हाथ बेचा चाहते थे; ऐसे समय आप का प्रादुर्भाव हुआ । आपने हमारे अभिभावको को धन दे उनसे हमे ले लिया । उनके साथ हमें आप यहा ले आये। इस खण्डहर के इस सुसज्जित अंश में आप ने हमें स्थान दे हमारे अभिभावकों को विदा किया। हमारी सेवा के लिये आप ने हमें दो-दो परिचारिकायें दीं । तब से अब तक यह हमारे साथ हैं । इस स्थान में ला (नीची दृष्टि कर) हम सब को आप ने परम सन्तुष्ट किया । ग्रीष्मकाल आ-

रम्भ होने पर आप हमारे अभिभावको को बुला उनके साथ हमे हमारे मकान भेज दिया; शीतकाल आरम्भ होने से पहले उनके साथ हमें यहा फिर बुलवा लिया करते है। गत तीन वर्ष ऐसा ही हुआ है। इस वर्ष भी सम्भवतः ऐसा ही होगा। आप ने पूछा है, कि हम जब अपने मकान वापस जाती हैं, तब क्या किया करती हैं। इसका उत्तर यह है, कि आपने हमें और हमारे अभिभावको को जो प्रचुर धन दे दिया है, उससे अपने मकान लौट हमें धन की चिन्ता से चिन्तित होना नहीं पड़ता। हम बड़े सुख-स्वच्छन्द से अपने सम्बन्धियो के साथ रहती और समय-समय पर परस्पर मिल आप का गुण-कीर्त्तन किया करती हैं। मकान में हमें सब सुख रहने पर भी आप के वियोग का दुःख रहता है। इस समय आप ही हमारे पति हैं-हमारे स्वामी हैं-हमारे जीवन सर्वस्व है। सासारिक सुख आप की स्मृति को हमारे मन से निकाल नहीं सकते। हम सदा आप से फिर मिलने की प्रतीक्षा किया करती हैं। अन्त मे दैव हमारे प्रति दया प्रकाश करते और हमें आप से फिर भेंट करने का सुअवसर प्रदान करते है।

युवक—मकान वापस जाने पर तुम सब किसी से क्या मेरी भी चर्चा किया करती हो ?

प्रथम रम०—नहीं। हम सब किसी से कभी आप की चर्चा नहीं करतीं। हमें और हमारे अभिभावकों को आपने ऐसा करने से निषेध किया है; ऐसी दशा मे किसी से हम आप की चर्चा कैसे कर सकती हैं ?

युवक-मुझे यह जानकर परम सन्तोष हुआ, कि यहा और अपने मकान दोनो स्थानो मे तुम सब सुखी रहती



सुरतान की निर्भीकता देख औरंगजेब
मनही मन बड़ा ही असंतुष्ट हुआ।
(पराक्रम काण्ड पृष्ठ १८९)

देती है, वह आप को कैसे प्राप्त हुई ?

युवक—(चतुर्थ रमणी से) रम्भे ! अपनी तीनो सखियों में तू जैसी सुन्दरी है, वैसी ही बुद्धिमती भी है। फिर भी, इस समय तूने जो प्रश्न किया है, उसका उत्तर तू समझ न सकेगी।

रम्भा—हे प्रिय ! अपने इस प्रश्न का उत्तर पा उसे समझने मे असमर्थ होने पर भी उसके श्रवण मात्र से मैं और मेरी सखियां परम सन्तोष लाभ कर सकेंगी।

युवक—(उच्च हास्य कर) तुम्हारी इस बात से तुम्हारे मन का कौतुक पूर्ण रूप से प्रकाशित होता है। भला, जिस बात को तुम सब समझ न सकोगी, उसे सुन सन्तोष कैसे प्राप्त कर सकोगी ?

रम्भा–हमें यह सोच सन्तोष होगा, कि आपने हमारी बात का उत्तर दे दिया।

युवक—यदि यह बात है, तो सुनो, सुन्दरि ! इस सुधा-भारत में हिन्दुओ ने अपनी जब बड़ी उन्नति की, तब दो प्रकार के बल प्राप्त किये,–आध्यात्मिक और दैहिक। इन दोनो बलो में हिन्दुओ जैसा दैहिक बल पृथ्वी की बहुतेरी जातियो ने प्राप्त किया भी है और करेंगी भी; किन्तु हिन्दुओं जैसा आध्यात्मिक बल पृथ्वी की किसी जाति ने न तो अभी तक प्राप्त किया है; न भविष्यत् में प्राप्त कर सकेंगी। आध्यात्मिक बल सञ्चय करने के लिये हिन्दू-धर्म्म और भारत की जल-वायु जैसी उपयुक्त है; जगत् का और कोई धर्म्म तथा जगत् की और कोई जल-वायु वैसी उपयुक्त नहीं। हिन्दुओं ने यह बल धारण कर बहुसंख्यक महत्वपूर्ण बड़े-बड़े काम किये हैं। कालचक्र के परिवर्तन

से इस समय हिन्दू-जाति अपने इस अप्रतिम बल को बहुत कुछ नष्ट कर चुकी है। फिर भी; इस जाति का यह बल सम्पूर्ण नष्ट नहीं हुआ है। आज भी भारत में इसके अधिकारी विद्यमान हैं और वह अपनी इस महाशक्ति के प्रभाव से जगत् की समस्त शक्तियों का शासन कर सकते हैं।

रम्भा—यदि यह बात सत्य है, तो जिन महात्माओं में यह शक्ति है, वह इसके प्रभाव से विधर्म्मी यवनों के हाथ से अपने देश का उद्धार क्यों नहीं करते?

युवक—रम्भे! ऐसे महात्मा महाशक्ति सम्पन्न होने पर भी उन परब्रह्म के प्रकोप से अत्यन्त भीत हुआ करते हैं; जगदीश्वर के किये कार्य्यों में व्याघात उपस्थित कर अपने को उसका कोप-भाजन बनाया नहीं चाहते। हे रम्भे! पुण्यफल से भारत असीम काल पर्य्यन्त स्वाधीन था; पापफल से अब पराधीन हुआ है। जब तक भारत का यह पाप विनष्ट और एकवार फिर पुण्योदय न होगा, तब तक भारत स्वाधीनता-सुख भोग न सकेगा। भारत ने पाप किया था; इस समय वह उसका प्रायश्चित्त भोग रहा है। यह प्रायश्चित्त विधान तुम्हारा हमारा किया नहीं; स्वयं परमात्मा का किया हुआ है। इस में बाधा दे भारत को स्वाधीन बनाना; परमेश्वर के नियम का खण्डन करना है और यह खण्डन महाशक्ति के अधिकारी होने पर भी महात्मागण कर नहीं सकते।

रम्भा—अच्छा, प्रभो! आपने जिस प्रसङ्ग से ऐसे महात्माओं का उल्लेख किया, उस से क्या यह समझ में नहीं आता, कि आप भी आध्यात्मिक-बल सम्पन्न एक महात्मा हैं?

युवक—नहीं, रम्भे! मैं महात्मा नहीं; महात्माओं

का दासानुदास हूं। (एक दीर्घ निश्वास परित्याग कर) मैं महात्मा होता; किन्तु हो न सका। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इन्हीं आठो विषयों को आयत्त कर मनुष्य महात्मा हो सकता है। मैं इन आठो को आयत्त कर न सका; इनमें कितने ही विषयों ने मुझी को आयत्त कर लिया और इसी के फल से आज तुम मुझे यहां अपने बीच देख रही हो। क्यों रम्भे! क्या तुम मेरी बातें समझ गईं?

रम्भा—समझ गई, नाथ! आप चाहे जो हों; किन्तु हमारी दृष्टि में इस समय भी महात्मा ही हैं।

युवक—(कुछ चिन्ता कर) सुन्दरि! तुम समझ सकती हो, कि यह प्रसङ्ग मेरे लिये क्लेशजनक है; ऐसी दशा मे तुम से मेरा अनुरोध है, कि इसे फिर कभी छेड़ मुझे व्यथित न करना।

रम्भा—(हाथ जोड़ कर) प्रभो! अबला के इस कौतूहल को क्षमा कीजियेगा। भविष्यत् में कभी अकारण यह प्रसङ्ग आप के सामने मैं न छेड़ूगी।

प्रथम रम०-भगवन्! मेरी सखी रम्भा के प्रश्न का समुचित उत्तर प्रदान कर उसे आपने सन्तुष्ट किया। यदि इस दासी को अनुमति हो, तो वह भी अपने सन्तोष-विधानार्थ आप के सम्मुख एक प्रश्न उपस्थित करे।

युवक-रम्भा को इस समय मैंने जो उत्तर दिया है; मेरी समझ में वह उत्तर तुम सब के बहुतेरे प्रश्नो का उत्तर है। आशा है, विद्ये! कि इसके सम्बन्ध में तुम मुझे और अधिक व्यथित न करोगी।

विद्या-आप का कहना सत्य है, नाथ! आप का यह

उत्तर सचमुच ही हमारे बहुतेरे प्रश्नों का उत्तर है। फिर भी; इस विषय में मैं कोई प्रश्न किया नहीं चाहती; मेरे प्रश्न का विषय स्वतन्त्र है।

युवक–जब तक तुम अपना प्रश्न कर न लोगी, तब तक तुम्हारे कौतूहल का वेग प्रशमित न होगा; ऐसी दशा में तुम शीघ्र अपना प्रश्न उपस्थित कर अपना सन्तोष विधान करो।

विद्या—मेरा प्रश्न यह है, नाथ! कि इस कमरे के समीप के एक कमरे की शय्या पर पड़ी चिरनिद्रा भिभूता वह महारूप लावण्यशालिनी रमणी कौन है? आपने उसका नाम उर्व्वशी बताया है; हम सब यह जानना चाहती है, कि यह उर्व्वशी कौन है?

यह प्रश्न होते ही एक ओर वह युवक; दूसरी ओर नाहर और लक्ष्मण चौंक पड़ा। यह नाम हमारे पाठक और पाठिकाओं से भी अपरिचित नहीं।

नवम परिच्छेद।

उर्व्वशी।

विद्या के प्रश्न से जो उद्वेग उत्पन्न हुआ, उसे लक्ष्मण और नाहर ने एक दूसरे का कर मर्द्दन कर और उस युवक ने अल्पकालीन विषम यन्त्रणा उपभोग करने के उपरान्त दमन किया। इसके उपरान्त उस युवक का आकार एकाएक कठोर हो गया। उसे देख उसके समीप बैठी वह चारो रमणियाँ भीत हुईं।

युवक–(चारो रमणियों से) रम्भे! विद्ये! बाले! राधे!—तुम चारो अपने–अपने कमरे की ओर जाओ। इस समय तुम्हारा मुझे प्रयोजन नहीं।

उस युवक ने अपनी यह बात अभी समाप्त की न थी; ऐसे समय उसकी कोठरी के समीप के किसी स्थान से किसी रमणी-कण्ठ से निकली विषम चीत्कारध्वनि सुनाई दी।

इस ध्वनि को सुन नाहर अत्यन्त अस्थिर हुआ। अब से कुछ समय पहले एक दिन दिल्ली नगर के बाहर जुल-फिकार के बाग के सामने नाहर उर्व्वशी की चीत्कारध्वनि सुन चुका था। इस ध्वनि और उस ध्वनि में कोई प्रभेद न होने के कारण इसे सुन नाहर को इस बात का विश्वास हो गया, कि यह और किसी की नहीं; उर्व्वशी ही के कण्ठ से निकली चीत्कारध्वनि थी। लक्ष्मण ने भी यह चीत्कार-ध्वनि सुनी सही; किन्तु इसे वह समझ न सका। उधर वह युवक यह ध्वनि सुनते ही अपने आसन से उठ खड़ा हुआ।

विद्या—प्रभो! यदि मैं भ्रम नहीं करती, तो यह चीत्कारध्वनि और किसी की नहीं; उसी उर्व्वशी की है।

युवक-(अत्यन्त व्याकुल हो) यह कैसी घटना है? उर्व्वशी ने स्वेच्छा पूर्व्वक यह चीत्कार कैसे की?

रम्भा—चलिये, नाथ! वहीं चल कर देखिये, कि यह क्या घटना है?

युवक—(एक बार फिर अपनी जगह बैठ कर) नहीं; वहाँ जाने का प्रयोजन नहीं। उर्व्वशी स्वयं यहाँ आयेगी। (उच्च स्वर से) उर्व्वशि! सुन्दरि! तुम्हें मैं बुलाता हूं; यहाँ आओ।

इस बात के समाप्त होने के कुछ ही क्षण के उपरान्त उस कमरे के एक द्वार के सामने का एक परदा हटा और उसकी बगल से एक रमणी-मूर्त्ति निकल उस युवक के समीप आ खड़ी हुई।

यह रमणी-मूर्त्ति और कोई नहीं; वही हमारी पूर्व्व

परिचिता कन्दर्पसिंह की पुत्री लक्ष्मणसिंह की भावी भार्य्या उर्वशी थी। जिस अवस्था में उसे उस युवक ने जुलफिकार के बाग से निकाला था; इस समय भी उर्वशी की वही अवस्था थी। उसकी आँखे बन्द थी; उसके मुख की दीप्ति अत्यन्त मलिन थी; अपने आकार-प्रकार से वह पाषाण की बनी एक मूर्त्ति जैसी जान पड़ती थी। उसने उस युवक के समीप आ अपना दाहना हाथ अपनी छाती पर रख फिर एक चीत्कार की। यह चीत्कार जैसी सुदूरव्यापिनी वैसी ही भयङ्करा भी थी। इसे सुन उस कमरे में बैठी चारो रमणियाँ कांप उठीं।

युवक-शान्त हो, उर्वशि! शान्त हो। आज तुम्हारी यह क्या दशा है? आओ! तुम मेरे समीप की इस कुरसी पर बैठो।

यह बात सुन उर्वशी उस युवक के समीप की एक कुरसी पर बैठ गई। उसके मुख पर प्रदीप का पूर्ण प्रकाश पड़ने से प्रकट हुआ कि, यद्यपि उसकी आखे बन्द थी; उसका वर्ण विवर्ण था; तथापि वह सोती नहीं; जागती जान पड़ती थी। उस के मुख का यह भाव देख वह युवक और भी चिन्तित हुआ। उसने उस कमरे में बैठी उन चारो रमणियों को एक बार फिर वहाँ से जाने का आदेश किया। इस बार यह आदेश पाते ही वह चारो स्त्रियाँ अपनी जगह से उठ उस युवक को प्रणाम कर उस कमरे के एक द्वार से बाहर चली गईं। उनके जाने के कुछ क्षण के उपरान्त उस युवक ने अपने स्थान से उठ उस द्वार को अपनी ओर से बन्द कर दिया, जिस से वह चारो स्त्रियाँ गई थीं।

जब से उर्वशी इस कमरे में आई और उसे लक्ष्मण ने

देखा था, तब से उसकी अवस्था अत्यन्त चिन्तनीय हो गई थी। जिस उर्व्वशी के प्रेम में लक्ष्मण संसार और उसके असंख्य प्रलोभनो पर लात मार वैरागी और वनवासी बन गया था; जिस उर्व्वशी के लिये लक्ष्मण ने अपने प्रियतम प्राण की भी परवा की न थी; उसी उर्व्वशी को वहाँ एकाएक अपने सामने पा लक्ष्मण पहले क्षुब्ध; पीछे अत्यन्त अधीर हो गया था। उसे नाहर अपनी वज्रमुष्टि से वारवार दबा कर भी निश्चल बना न सकता था। उसकी वह दशा देख नाहर के मन मे भावी विपद् के ध्यान से अत्यन्त चिन्ता उत्पन्न हुई।

उधर वह युवक उस द्वार को बन्द कर उर्व्वशी के समीप के अपने उस आसन पर एक बार फिर आ बैठा। इस बार अपने आसन पर बैठ उसने उर्व्वशी के मुख को ध्यान पूर्व्वक देखा। उस युवक द्वारा इस तरह देखी जाने पर उर्व्वशी वारवार काँप उठी। कुछ देर तक उर्व्वशी को इस तरह देख अन्त मे उस युवक ने कहा,—" उर्व्वशि!"

उर्व्वशी—हाँ।

युवक—तुम कहा हो?

उर्व्वशी—यहाँ आप के पास।

युवक—तुमने यह दो बार चीत्कार क्यो की?

उर्व्वशी—मैं नही जानती।

युवक-यह कैसी बात है? तुम अपनी चीत्कार का कारण अवश्य जानती हो। मुझे इसका कारण बताओ।

उर्व्वशी-मेरा मन मेरे वश नही।

युवक—तुम्हारा मन तुम्हारे वश नहीं; मेरे वश रहना चाहिये।

उर्वशी—ठीक है। जब से तुमने मुझे देखा है, तब से अब से कुछ समय पहले तक मेरा मन तुम्हारे ही वश था। कुछ समय से यह तुम्हारे भी वश नहीं; मेरे भी वश नहीं; किसी और के वश है।

युवक—जिस के वश तुम्हारा मन है, वह कौन है?

उर्वशी—वह मेरा सर्वस्व है; जीवनाधार है; उसके प्रति मेरा प्रगाढ़ अनुराग है।

युवक—क्यो उर्वशि! क्या तुम्हारा यह अनुराग मैं सञ्चित करने में समर्थ हो नही सकता?

उर्वशी—(नासिका सङ्कुचित कर) अब से पहले कई बार तुमने मुझ से यह प्रश्न किया; अब से पहले कई बार इसका उत्तर तुम्हें मैंने दिया है। तुम से मैं प्रेम कर नहीं सकती; मै एक रङ्ग में रगी जा चुकी हूं; अब तुम्हारा रङ्ग; किसी का भी रङ्ग मुझ पर चढ़ नही सकता। तुमने देखा ही है, कि भारत-सम्राट् औरङ्गजेब का सम्पूर्ण विभव भ मेरा प्रेम सञ्चित करने में असमर्थ हुआ।

युवक—मेरे प्रति तुम्हे अपना प्रेम प्रकट करना ही होगा।

उर्वशी—(क्रोध से) कभी नही;—यह असम्भव है;—यह त्रिकाल में हो न सकेगा। योगिराज! तुमने मुझे वश कर लिया है सही; किन्तु तुम मेरी वृत्तियों को वश कर नहीं सकते। औरङ्गजेब की उस कैद से निकाल तुमने मुझे अपनी इस कैद में डाल दिया है। तब से अब तक मैं तुम्हारी इस क़ैद में पड़ी हूं। प्रति दिवस तुम मुझे अन्न-जल ग्रहण करने की आज्ञा देते हो; मैं अन्न-जल ग्रहण कर लिया करती हूं; प्रति दिवस तुम मुझ से बातें करते हो; मैं तुम से बातें कर लिया करती हूं; मेरी समझ में

मुझ पर तुम जो इतना शासन करते हो, उसी से तुम्हें सन्तुष्ट होना चाहिये । मेरा प्रेम संग्रह करने की तुमने वारवार चेष्टा की है ; इसका कोई फल नहीं हुआ है । जब तक मैं इस मर्त्य में हूं, तब तक तुम मेरा प्रेम संग्रह कर न सकोगे ।

युवक—(गम्भीर आकार धारण कर) क्यों, उर्वशि ! क्या तुम यह जानती हो, कि तुम्हारी इस हठ का परिणाम क्या होगा ?

उर्वशी—जानती हूं ।

युवक—क्या परिणाम होगा ?

उर्वशी—यही परिणाम होगा, कि तुम से मेरा चिरवियोग हो जायेगा । जिस स्वेच्छाचारी गगनविहारी पक्षी को तुमने अपनी आध्यात्मिक शक्ति के लोह-पिञ्जर में बन्द कर रखा है, वह पक्षी एक बार फिर मुक्त हो परम सन्तोष लाभ कर सकेगा ।

युवक—उर्वशी ! आज मेरे सामने तुम यह कैसी बातें कर रही हो ! तुम्हें मेरा क्या कुछ भी भय नहीं ?

उर्वशी—मै तुम्हारे वश रहना नहीं चाहती; इस से मुझे भीषण यन्त्रणा होती है ।

यह कह उर्वशी एकाएक उठ खड़ी हुई और उसने एक बार फिर वही भयङ्कर और सुतीक्ष्ण चीत्कार-ध्वनि की । यह देख उस युवक ने उर्वशी के मुदे नेत्रों पर अपनी तीक्ष्ण दृष्टि स्थापित कर अत्यन्त कर्कश स्वर में कहा,—"उर्व्वशि ! बैठ जाओ ।"

उर्व्वशी बैठ गई । उसके आकार से भय के चिन्ह परिलक्षित हुए । इन्हें देख उस युवक ने फिर कहा,—"उर्व्वशी !

मैं आज्ञा देता हूं; तुम अपनी मोह-निद्रा परित्याग कर जागो।"

उस युवक के मुंह से इस बात के निकलते ही उर्व्वशी अपनी कुरसी की पीठ से लग कर बैठ गई। उसका शिर उसकी छाती पर झुक गया। मानो एकाएक वह हतचेतन हुई। अल्पकाल तक वह इसी अवस्था में रही। अन्त में उसने धीरे धीरे अपना शिर उठाया। उस समय रक्त की लालिमा उसके मुख पर फैल गई थी। उसकी देह के स्पन्दन से जान पड़ता था, कि उस समय वह पाषाण-मूर्त्ति से मनुष्य-देह मे परिणत हुई थी। उसके वह आकर्ण-विस्तृत नयन खुल गये थे; उनकी पलकें झपक रही थीं।

इस तरह चैतन्य लाभ कर उर्व्वशी ने अपने सामने के उस युवक और उस कोठरी को ध्यान पूर्व्वक देखा। यह दृश्य देख उसे मानो बड़ा ही आश्चर्य्य हुआ। घोर निद्रा से जाग किसी अज्ञात स्थान के देखने से मनुष्य को जैसा आश्चर्य्य होता है, उर्व्वशी को उस समय वैसा ही आश्चर्य्य हुआ। उसने कई वार आखे मली; कई वार अपने सामने के उस दृश्य को देखा। अन्त में उसने उस युवक की ओर देख कहा,—"आप कौन है?—आप को मैने कई बार देखा है।"

युवक—तुम्हारा यह अनुमान सत्य है।

उर्व्वशी—मैं दिल्ली के उस बाग मे अत्याचारी जुल-फिकार के सामने ज्ञान शून्य हो भूमि पर गिरी थी। इसके उपरान्त जब मैने चैतन्य लाभ किया, तब एक कमरे की शय्या पर अपने को पाया। आप मेरे सामने थे। आपने मुझ से मेरी प्रेम भिक्षा मांगी; आप को मैं दे न सकी। इसके उपरान्त उसी कोठरी मे चैतन्य लाभ कर कई वार मैंने ऐसे दृश्य देखे। प्रत्येक वार मेरा उत्तर सुन मुझ पर

आप क्रुद्ध हो मुझे सोने की आज्ञा देते और मैं सो जाती थी।

युवक-तुम्हारी बात सत्य है। जिस कोठरी मे तुम चैतन्य लाभ किया करती थी, वह यहा से दूर नही, वही से तुम यहा आई हो।

उर्व्वशी-(हाथ जोड़ कर) हे पुरुष प्रवर ! मुझ पर दया कर मुझे आप यह बताइये, कि यह सब कैसी बातें हैं ? दिल्ली के उस बाग से यहा मैं कैसे आई ? यह क्या स्थान है ? आप कौन हैं ? बारबार मुझ से आप प्रेम-भिक्षा क्यो माँगा करते है ? मेरे पिता कहाँ है ? वह नरपिशाच जुलफिकार कहा गया ? मेरे—मेरे—"

युवक— तुम और किसे पूछती हो ?

उर्व्वशी—(अपनी आखे नीची कर) किसी को नही ; मैंने जो प्रश्न किये हैं, उनके उत्तर क्या हैं ?

युवक-तुम्हारे एक प्रश्न का उत्तर यह है, उर्व्वशि ! कि तुम्हारा असाधारण रूप-माधुर्य्य देख तुम पर मैं मोहित हुआ हू। मेरी प्रार्थना है, कि तुम मुझे स्वीकार कर मेरी हृदयेश्वरी बनो।

उर्व्वशी—(नेत्रो में जल भर कर) फिर वही प्रश्न है; इसका उत्तर देते ही सम्भवतः फिर मुझे चिरनिद्राभिभूता होने का दण्ड दिया जायेगा। हे पुरुष प्रधान ! आप मुझ अबला पर दया करें; मुझ दुःखिनी को और दुःख न दें। आपने मुझ से बारबार यह बात कही है; इसलिये आज आप से मै एक गुप्त विषय प्रकाश कर दिया चाहती हू। वह गुप्त विषय यह है, कि मेरा मन मेरे हाथ नही ; मै एक क्षत्रिय युवक को अपना भावी स्वामी मान चुकी हूँ, मेरा मन उन्ही के हाथ है। उन्हें छोड़ मैं और किसी को

अपना पति बनाया नहीं चाहती।

युवक-(अतीव चिन्तित हो) क्या कहा? तुम किसी क्षत्रिय युवक को अपना पति मान चुकी हो? यह बात मुझ से तुमने अब से पहले क्यों न कही?

उर्व्वशी-लज्जा और सङ्कोच से आप से मैं यह बात कह न सकी थी।

युवक-अच्छा, उर्व्वशि! तुम्हें मैं यदि मुक्त कर दूं, तो तुम क्या करोगी?

उर्व्वशी-(घोर चिन्ता कर) मैं नहीं जानती, कि क्या करूंगी?

युवक-क्या तुम अपने पिता के पास वापस जाओगी?

उर्व्वशी-(कांप कर) नहीं। मेरे पिता मेरे लिये पूज्य है सही; किन्तु विश्वास योग्य नहीं। थोड़े से धन और प्रभुता के लोभ से उन्हों ने मुझे एक यवन के हाथ बेचने का यत्न किया था।

युवक-तब तुम कहाँ जाओगी और कौन तुम्हारी रक्षा करेगा? तुम केवल युवती ही नहीं; असीम रूप-लावण्य-शालिनी भी हो; यवनों के इस राजत्व में तुम जहाँ जाओगी, वहीं विपद् में पड़ जाओगी। क्या तुम्हारी इच्छा यह है, कि तुम इस स्थान से निकल दुष्टों के हाथ पड़ो और भ्रष्टा हो जाओ?

उर्व्वशी-नहीं,-नहीं; मैं भ्रष्टा हुआ नहीं चाहती। मैं क्षत्रिया हूं; भ्रष्टा होने के बदले मृत्यु ही मेरे लिये उत्तम है।

युवक-किन्तु कितने ही स्थलों में क्षत्रिया अपना यह कर्त्तव्य पालन करने नहीं पाती; उनको मृत्यु से पहले उनका धर्म्म नष्ट कर दिया जाता है।

इस ध्रुव सत्य को अपने सामने रख, उर्व्वशि! तुम यह बताओ, कि यहा से मुक्ति लाभ कर तुम कहा और किसके आश्रय में रह सकती हो ?

उर्व्वशी—जगत् में ऐसे एक मनुष्य है, जिनके आश्रय मे मैं नि सङ्कोच रह सकती हू। इन्ही मनुष्य के प्रति मेरा अनुराग है और इन्ही को मै अपना स्वामी बनाया चाहती हू। इन मनुष्य के आश्रय में मेरी रक्षा हो सकती है सही; किन्तु मै नही जानती, कि इस समय यह कहा है।

युवक—यह मनुष्य कौन है; कहा का अधिवासी है ?

उर्व्वशी—मेरे ग्राम के समीप का एक ग्राम इनका निवास-स्थान है। मेरे पिता की तरह इनके भी पिता जमीन्दार है। इनके साथ मेरी मगनी हो चुकी थी।

युवक—इसका नाम क्या है ?

उर्व्वशी—भगवान् रामचन्द्र के वनवास में उनके जिन भाई ने उनका साथ दिया था, उनका नाम और मेरे इन भावी पति का नाम एक है।

युवक—लक्ष्मण ?

उर्व्वशी—हा।

युवक—कौन बता सकता है, कि लक्ष्मण इस समय कहा है। सिवा इसके और एक बात है। तुम्हारे अपने पिता के साथ दिल्ली जाने का समाचार पा तुम्हारी ओर से लक्ष्मण निराश हो अपना दूसरा विवाह कर सकता है।

उर्व्वशी—और भी एक चिन्ता है। कौन बता सकता है, कि मेरी इस दिल्ली-यात्रा के बाद अब वह मुझे ग्रहण करेंगे या नहीं।

युवक—ऐसी दशा में तुम्हारा यह आश्रय स्पष्ट भी

उतना सुरक्षित समझा जा नहीं सकता। सुन्दरि! अब तुम एक बार अपनी स्थिति की ओर ध्यान दो। तुम युवती हो—रूपवती हो; संसार के छल-कपट और व्यावहारिक दोषों से अनभिज्ञ हो। अपनी इस स्थिति में अनाथा हो गृहविहीना होने पर तुम सहज ही किसी दुरात्मा के दौरात्म्य का लक्ष्य बन सकती हो। तुम कहती हो, कि तुम क्षत्रिया हो; बड़ी ही शीघ्रता से इहलोक परित्याग कर सकती हो। तुम्हारी यह बात सङ्गत भी है और सम्भव भी। किन्तु प्रश्न यह है, कि एक मिले हुए आश्रय स्थल को परित्याग कर भीषण मृत्यु मुख में पतित होना कौन सी बुद्धिमानी है? ऐसी दशा मे तुम से मेरा अनुरोध है, कि तुम एक बार फिर मेरी प्रणय-भिक्षा के स्वीकार करने या न करने के प्रश्न पर विचार करो।

उस युवक की यह बात सुन उर्व्वशी ने अपना शिर झुका लिया। उर्व्वशी को निरुत्तर पा उस युवक ने फिर कहना आरम्भ किया,—"उर्व्वशि! तुम मेरी यह प्रार्थना यदि स्वीकार कर लोगी, तो ऐसे सुख उपभोग करोगी, जैसे सुख स्वयं भारत सम्राट् की बेगमें भी उपभोग कर नहीं सकती हैं। धन-बल से जितना ऐश्वर्य्य और विभव प्राप्त किया जा सकता है, उतना ऐश्वर्य्य और विभव तुम प्राप्त कर सकोगी। गृह, यान, दास, दासी, आभूषण, वस्त्र; किसी भी वस्तु का तुम्हें अभाव न होगा। सिवा इसके शीत और वर्षा काल हम दोनो सुसज्जित विशाल भवनो में व्यतीत करेंगे; ग्रीष्म काल उपस्थित होते ही हम गिरिराज हिमालय की उन स्वाभाविक शोभा सम्पन्न स्वर्गोपम उपत्यकाओं में जा विहार करेंगे, जिनमें आज

तक साधारण मनुष्यो के पैर भी नही पड़े हैं। वहाँ के दृश्य नयनाभिराम हैं; वहा की जल वायु प्राणद और अत्यन्त सुखमूलक है। मेरी अनुरोध-रक्षा करने पर तुम ऐसे ही विविध और असख्य आनन्द उपभोग कर सकोगी। मेरा आश्रय परित्याग करने से तुम्हें वह दुःख मिलेगा और मेरी बात स्वीकार कर मेरी रक्षा मे रहने से यह सुख यह दोनो ही तुम्हारे सामने हैं। अब तुम्हीं बताओ, कि इन दोनो में किसे तुम स्वीकार किया चाहती हो?

उर्व्वशी— (चौंक कर) आप मुझे क्षमा कीजियेगा; मैं कुलकलकिनी होने के बदले मृत्यु ही श्रेय समझती हू। यम-सदन ही मुझ दु खिनी का आश्रय—निकेतन है। मै चाहती हू, कि अपने कुल को कलकित करने से पहले ही मैं इहलोक परित्याग करू।

युवक—(कुछ क्रोध से) तुम मृत्यु की यन्त्रणा नहीं जानती; इसीलिये वारम्वार मृत्यु का आह्वान करती हो। मृत्यु सामने पा, सुन्दरि! तुम अत्यन्त दुरवस्था को प्राप्त होगी। तुम्हें मैं एक बार फिर सुअवसर देता हू। तुम एक बार फिर विचार कर कहो, कि तुम क्या चाहती हो?

उर्व्वशी-(गम्भीरतर पूर्वक) हे पुरुष श्रेष्ठ! तुम रमणी के हृदय का हाल नहीं जानते; इसीलिये वारम्वार ऐसी बातें कहते हो। एक बार नही, सहस्र बार भी; लक्ष बार भी; तुम्हारे यह प्रश्न करने पर मेरा यही उत्तर होगा, कि मैं मर जाऊगी; किन्तु अपना धर्म्म भ्रष्ट होने न दूंगी। एक अनाथा स्त्री को एकान्त में अपने सामने बैठा उस से इस तरह की भय और प्रलोभन की बातें कहना घोर पाप करना है। तुम मुझे भय और प्रलोभन से वशीभूत किया

चाहते हो; किन्तु तुम्हारी यह कामना कभी सफल हो न सकेगी। हे अज्ञातकुलशील पुरुष! अपनी काम-कामना चरितार्थ करने के लिये तुम किसी और स्त्री को ढूंढो; मेरे द्वारा तुम्हारा यह अभीष्ट साधन हो न सकेगा।

युवक-(मुख फेर कर) उर्व्वशि! मुझ पर वृथा दोष आरोपित न करो। अपनी बातो द्वारा तुम्हें मैं भय और प्रलोभन दिखा सकता हूं; किन्तु याद रखो, कि जो कुछ मैंने कहा है, वह तुम्हारी वर्त्तमान अवस्था के अनुसार ही कहा है। मेरे मन पर काम वासना ने अधिकार किया है सही; किन्तु इस काम-वासना पर पाप-वासना ने अधिकार नही किया है। तुम मेरे वश हो; मैं चाहूं, तो इसी समय तुम्हारी इच्छा से हो या अनिच्छा से; तुम्हारा धर्म्म भ्रष्ट कर डालू। मेरा ऐसा न करना मेरी इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है, कि मेरे मन मे पाप-वासना अभी तक बलवती नही हुई है। फिर; जिस समय तुम सो रही थीं, उस समय सर्व्वथा मेरे वश थीं। उस समय और भी सरलता से मै तुम्हारा धर्म्म भ्रष्ट कर सकता था। उस समय भी तुम्हारे धर्म्मभ्रष्ट न होने का कारण यही है, कि मैं पाप कर्म्म को प्रश्रय दिया नही चाहता। यदि मुझे पाप-पङ्क से लिप्त होने का भय न होता, तो मैं इस तरह तुम से वारम्वार प्रणय भिक्षा न करता।

उर्व्वशी-यदि यही बात है, तो आप मेरा उद्धार कीजिये; मुझे इस स्थान से जाने की आज्ञा प्रदान कीजिये।

युवक-(उर्व्वशी की ओर कुछ देर तक निस्तब्धता पूर्व्वक देख कर) नही; यह आज्ञा देना; जान बूझ कर तुम्हें विपद् में पतित करना है। तुम अब भी अपनी शोचनीय अवस्था

को समझ नहीं सकी हो। मैं चाहता हूं, कि तुम एक बार फिर सो जाओ।

उर्वशी—(चिल्लाकर) नहीं,-नहीं,-अब मैं न सोऊंगी। उस मृत्यु जैसी निद्रा के स्मरण मात्र से मेरे मन मे भय का सञ्चार होता है। हे पुरुष श्रेष्ठ! तुम में यदि तनिक भी दया है; तुम यदि धर्म्म का तनिक भी ध्यान करते हो, तो मुझे फिर उस तरह सोने की आज्ञा न दो।

युवक-(अपनी जगह से उठ कर) अबोध स्त्री! अपनी इस हठ से क्यों अपनी मृत्यु का आह्वान करती है। तेरी हत्या के लिये नही; तेरी रक्षा के लिये मै तुझे एक बार फिर सुलाया चाहता हूं।

उर्वशी—(अपनी कुरसी से उठ कर) निर्दय मनुष्य! इस बार तुम मुझे आसानी से सुला न सकोगे।

युवक-उर्वशि! मैं तुझे आज्ञा देता हू, तू शीघ्र ही फिर-"

यह बात समाप्त होने से पहले ही उर्वशी ने एक बार फिर वही सुतीक्ष्ण चीत्कार कर उच्च स्वर से कहा,- "भगवन्! या तो मुझे साहाय्य दे इस घोर यन्त्रणा से मेरा उद्धार करो ; या मुझे इस पाप-जगत् से निकाल अपने चरणो में स्थान दो।"

युवक—(अत्यन्त क्रुद्ध हो) उर्वशि! तू बड़ी विपद् में पड़ा चाहती है। तुझे मैं कठोर दण्ड देने पर—"

ऐसे समय इस कमरे के द्वार पर किसी के पद-शब्द हुए। आगे-आगे लक्ष्मण और पीछे-पीछे नाहर ने इस कोठरी में प्रवेश किया। नाहर ने अन्त तक लक्ष्मण को शान्त करने का यत्न किया था। नाहर के किसी भी यत्न से लक्ष्मण शान्त न हुआ। विशेषत उर्वशी की वह सा-

क्षाम्य-प्रार्थना और कातरोक्ति सुन वह बिलकुल ही अधीर हो गया। उन्मत्त की तरह नाहर की मुट्ठी से अपना हाथ छुड़ा उस अन्धकारपूर्ण कमरे से निकल उस कमरे में पहुंचा, जिसमें उर्व्वशी और उस युवक का अवस्थान था। नाहर को लक्ष्मण का साथ देना युक्तिसगत जान पड़ा; इसलिये उसने भी लक्ष्मण के पीछे उस कमरे में प्रवेश किया।

इन दोनो को एकाएक अपने सामने देख वह युवक और उर्व्वशी दोनो चकित-स्तम्भित हुए। उस युवक ने मृदु स्वर मे कोई बात कही; उर्व्वशी ने अपना आन्तरिक आनन्द दमन करने में अक्षम हो लक्ष्मण की ओर देख कहा,-" तुम,-तुम यहाँ ? "

नाहर ने उस युवक को ससम्भ्रम प्रणाम किया। लक्ष्मण ने उस युवक को प्रणाम कर कहा,—" आप मुझ दीन पर दया कर उर्व्वशी को मुझे प्रदान कीजिये। उर्व्वशी मेरी है; उर्व्वशी के लिये मै गृहत्यागी हुआ हूं। उर्व्वशी को मुझे प्रदान कर आप अनन्त पुण्य संचय कीजिये।-लक्ष्मण मेरा ही नाम है।"

वह युवक पहले नाहर; पीछे लक्ष्मण को देख आपही आप मृदुस्वर में कोई बात कह एक बार फिर अपने आसन पर बैठ गया। लक्ष्मण की बात के प्रत्युत्तर मे उसने कोई बात न कही।

उस युवक की यह स्थिति देख नाहर हाथ जोड़ उसके समीप गया और अत्यन्त विनम्र भाव से उस से उसने कहा,—"प्रभो! आप के पास इस तरह आने का मेरा पाप ज्ञानकृत नहीं; अज्ञान कृत है। आप इसके लिये

मुझे क्षमा करें । ”

नाहर की इस बात का उस युवक ने कोई उत्तर न दिया । इस पर नाहर ने फिर कहा,–“ भगवन् ! मैं आप के शक्ति-सामर्थ्य का थोड़ा सा परिचय पा चुका हूं । मुझे विश्वास है, कि आप क्षण मात्र में हम सबको नष्ट कर सकते हैं । हम मर्त्य के जीवों की अपेक्षा आप की क्षमता बहुत अधिक है । हम यत्न करके भी आप की क्षमता की सीमा निर्द्धारित कर नहीं सकते । आप सूर्य्य हैं, हम जुगनू,–आप महाबल सम्पन्न केसरी हैं; हम साधारण कृमि-कीट ; आप नन्दन कानन के पारिजात हैं; हम सामान्य क्षण स्थायी सौन्दर्य्य विशिष्ट पुष्प ,–हमारी आप की कोई तुलना नहीं । ऐसी स्थिति में आप का हम पर क्रोध करना किसी तरह युक्तिसङ्गत नहीं । हम से अज्ञानकृत यह जो अपराध हो गया है, उसके लिये आप हमें क्षमा कीजिये ।”

युवक—नाहर ! तुम से मैंने ऐसी आशा की न थी ।

नाहर–प्रभो ! मैंने भी इस स्थान में आप से भेंट होने की आशा की न थी । आप अन्तर्यामी हैं; थोड़ा श्रम करतेही यथार्थ घटना से अवगत हो सकते हैं । मैं आप से फिर कहता हूं, कि आप से भेंट होने या आप के किसी कार्य्य में व्याघात उपस्थित करने के उद्देश्य से मैं यहाँ नहीं आया हूं ।

युवक-शीघ्र और सत्य कहो, कि तुम यहां कैसे आये ?

यह सुन नाहर ने उन रहस्यमय शब्दों को सुन अपने वहां पहुंचने और अन्त में उस कोठरी में प्रवेश करने की सब बातें यथायथ कह सुनाईं । इन्हें सुन वह युवक

पड़ी है। यह प्रथा हिन्दू-समाज का घोर अनिष्ट कर रही है।

नाहर–किन्तु उपाय क्या है? इस प्रथा के अवलम्बन करने से इस समय प्रत्यक्ष सुफल उत्पन्न हो रहा है; इसी-लिये अवलम्बन की जा रही है। काल पाकर यह देशाचार मे परिणत हो जायेगी। इसका दुर्गुण समझने वाले यत्न कर के भी इसे दूर कर न सकेंगे।

युवक–जगत् के प्रायः सभी लोकाचार किसी सर्व्वव्यापी कारण विशेष से ही सृष्ट हुआ करते है।

नाहर–फलतः लक्ष्मण के साथ उर्व्वशी का विवाह हो जाना ही उसकी रक्षा का सर्व्वोत्कृष्ट उपाय है।

युवक—ठीक है। (कुछ चिन्ताकर) नाहर! अब से पहले तुम दोनो के एकाएक यहाँ आने पर तुम पर मैं अत्यन्त क्रुद्ध हुआ था। इच्छा हुई थी, कि तुम दोनो को मै कठोर दण्ड से दण्डित करूँ। किन्तु अब मुझे जान पड़ता है, कि मेरे पक्ष में तुम दोनो का आना अत्यन्त मङ्गल-जनक हुआ है। तुम दोनो यदि न आते, तो सम्भव था, कि मैं घोर पाप का भागी हो जाता। (लक्ष्मण से) लक्ष्मण! तुम अपनी प्रियतमा इस सुन्दरी उर्व्वशी को अपने साथ ले जाओ। मै इसे मुक्त कर तुम्हारे हाथ समर्पण करता हू। इसे ग्रहण करने में तुम्हारी ओर से कोई सङ्कोच होना न चाहिये। यह निष्पाप है; पूर्व्ववत पवित्र और तुम्हारे ग्रहण करने योग्य है। तुम्हारी उर्व्वशी सती है; साध्वी है; धर्म्म-परायणा है। हिन्दू-ललनाओ को जिस तरह होना चाहिये, यह वैसी ही है। (उर्व्वशी से) हे उर्व्वशि! तुम अपने भावी पति लक्ष्मण के साथ जाओ। मेरे द्वारा तुम्हें जो कष्ट मिला हो, तुम उसे भूल जाना।

उस युवक की यह बात सुन उसे उर्व्वशी, लक्ष्मण और नाहर तीनों ने झुककर प्रणाम किया।

उर्व्वशी—(हाथ जोड़ सजल नयन से) इस समय आपने मुझ पर जो कृपा प्रकाशित की है, उसके लिये आजन्म मैं आप का गुण-कीर्त्तन करूँगी।

लक्ष्मण—आप ने यह कृपा प्रकाशित कर मुझे प्राण-दान दिया है।

नाहर—उर्व्वशी को मुक्त कर आप ने हिन्दू—समाज को और पाप भार से आक्रान्त होने से बचाया है।

युवक—नाहर! हिन्दू-समाज की दशा इस समय बड़ी ही शोचनीय है। मेरे इस कार्य्य से उसका उतना मङ्गल हो न सकेगा।

नाहर—यदि यह सत्य है, कि व्यक्ति से समष्टि बनती है, तो यह भी सत्य है, कि व्यक्ति का गुण—दोष समष्टि पर प्रभाव उत्पन्न करता है। हे योगिराज! हिन्दू-समाज का प्रत्येक मनुष्य यदि अपना कर्त्तव्य-कर्म्म जान उसके अनुसार कार्य्य करे, तो हिन्दू—समाज के पतन के तिमिराच्छन्न गह्वर से निकल एकबार फिर उन्नत होने में कितना समय लग सकता है?

युवक—किन्तु ऐसा हो नहीं सकता; कारण, गत कई सहस्त्र वर्ष तक हिन्दू—समाज ने जो पाप किये हैं, उनका फल उसे भोगना ही होगा। पाप का प्रायश्चित्त अवश्यम्भावी है। जिस कर्म्म का प्रायश्चित्त नहीं, वह पाप नहीं। अच्छा; नाहर! अब इन सब बातों का प्रयोजन नहीं। लक्ष्मण और उर्व्वशी को ले तुम जिस राह से आये हो, उस राह से वापस जाओ और भविष्यत् में इस स्थान में कभी

न आना। इस स्थान में हम लोग एक दूसरी राह से आते हैं। मुझे तुम्हारी इस गुप्त राह की खबर न थी। जाने से पहले तुम तीनो को एक प्रतिज्ञा कर जाना चाहिये।

नाहर–कैसी प्रतिज्ञा, प्रभो?

युवक–यह प्रतिज्ञा कर जाना चाहिये, कि तुम तीनो मेरे यहा के अवस्थान का समाचार अपने किसी साथी को न दोगे।

तीनो के इस बात की प्रतिज्ञा करने पर उस युवक ने कहा,—"तुम लोगों द्वारा मेरे यहाँ के अवस्थान का समाचार प्रकाशित होने पर मुझे यदि किसी प्रकार का भी कष्ट होगा, तो इसके लिये मै तुम लोगो को कठोर दण्ड से दण्डित करूगा।"

लक्ष्मण—उर्व्वशी को देख उसके सम्बन्ध में नाहर के साथी जब कोई प्रश्न करेंगे, तब मै क्या उत्तर दूंगा।

युवक–कोई भी उत्तर देना; किन्तु—सावधान! मेरे यहाँ के अवस्थान का समाचार प्रकाशित न करना। अब तुम लोग जाओ; नाहर! इन दोनो को अपने साथ ले जाओ।

नाहर–(हाथ जोड और उस युवक के चरणो के समीप बैठ) प्रभो! मुझे आप जाने की आज्ञा देते है, तो मै जाता हूं; किन्तु जाने से पहले आप से एक प्रार्थना करता हू।

युवक–(नाहर के प्रति करुण दृष्टि निक्षेप कर) तुम्हें जो कहना हो; स्पष्ट कहो।

नाहर–आप ऐसी व्यवस्था करें, जिस से मै महाराज यशवन्तसिंह और हिन्दुओं के मङ्गलार्थ समय-समय पर आपका दर्शन पा सकू।

युवक—यह असम्भव है। मै सदा एक जगह नहीं

रहता। गत चार वर्ष से इस जगह मेरा अवस्थान है सही, किन्तु सम्भव है, कि कल ही मैं यह स्थान परिवर्तन कर दूं। फिर; ग्रीष्मकाल में मै भारत-भूमि में नही, गिरिराज हिमालय के तुषारराशि-समाच्छन्न दुरारोह शिखरो पर अवस्थान करता हू। ऐसी दशा में, नाहर! मैं तुम से भेंट करने का कोई समय या स्थान कैसे निर्द्धारित कर सकता हू?

नाहर—शीत और वर्षा में जब आप भारत मे रहें, तब वर्ष में अन्ततः एक बार अपने से भेट करने का सुअवसर मुझे प्रदान करें।

युवक—(उच्च हास्य कर) नाहर! तुम्हारा उद्देश्य साधु है; प्रशंसनीय है; किन्तु मैं इसके अनुसार कोई व्यवस्था करने में असमर्थ हूं। नाहर! कलि के प्रभाव से मेरी सिद्धि में विघ्न उपस्थित हो गया है सही; फिर भी, मैं बहुत कुछ मुक्त हू;—

"कायाकाशयो सम्बन्धसयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम्"

मेरी सिद्धि के अन्तर्गत है। ऐसी दशा में मुक्त वायु के रोकने की वृथा चेष्टा क्यो करते हो?

नाहर—प्रभो! कुछ समय के लिये जब आप परमानन्द मोक्ष को भुला सकते है, तब अल्पकाल के लिये परोपकारार्थ सामान्य बन्धन की यन्त्रणा भी सह सकते है।

युवक—(चकता कर) अच्छा, नाहर! जब तुम इतनी हठ करते हो, तब तुम्हे मै वचन देता हू, कि एक बार फिर तुम से मै भेंट करूंगा।

नाहर—यह भेट कहा और कब होगी?

युवक—इसके सम्बन्ध में निश्चित रूप से मै कोई बात कह नही सकता। फिर भी; तुम से और एक बार मै भेंट

अवश्य करूंगा । अच्छा, नाहर ! तुम्हारी यह बात समाप्त हुई । इन दोनो को अपने साथ ले तुम अब यहां से जाओ ।

उर्वशी–हे पुरुष श्रेष्ठ ! मेरी भी आप से एक प्रार्थना है । आप के और इस स्थान के सम्बन्ध में मेरे मन में विविध प्रश्न हो रहे हैं ; कृपया इनका समाधान कर आप अपनी इस दासी का उपकार करें ।

युवक—मैं तुम्हारे प्रश्नों का आशय समझता हूं । नाहर और लक्ष्मण से तुम उसके उत्तर पा सकोगी ।

लक्ष्मण–प्रभो ! अपनी इस कृपा के लिये आप मेरा विशुद्धान्तःकरण से एक बार फिर दिया हुआ धन्यवाद स्वीकार कीजिये । मुझ पर आपने यह उपकार कर मुझे अपना चिरदास बना लिया है । बिना उर्वशी के मेरा जीना कठिन था ; इसे मुझे दे आपने मेरी जीवन-रक्षा की है । यह जीवन आपका है; इसका प्रयोजन होने से इसे आप जब चाहेंगे ; ग्रहण कर सकेंगे ।

युवक—(मुस्कुराकर) लक्ष्मण ! तुम्हारे मन की यह उदारता देख मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूं । प्रकृत प्रेम मनुष्य को बहुत उन्नत करता है । उर्वशी के प्रति का तुम्हारा यह प्रेम तुम्हें उन्नत और सुखी करेगा । अच्छा, लक्ष्मण ! अब तुम जाओ । नाहर ! इन सब को ले जाओ ।

नाहर—जाता हूं, प्रभो !—जब आपकी आज्ञा ही ऐसी है, तो उसे हम पालन करने पर बाध्य हैं । आप के आज्ञानुसार जाता हूं ; किन्तु इतनी प्रार्थना किये जाता हूं, कि आप महाराज यशवन्तसिंह के प्रति सदय हों ; लाञ्छित पद दलित अपमानित हिन्दुओं के प्रति सदय हों । आप की थोड़ी सी भी दया से उनका महाकल्याण

साधित हो सकता है ।

इसके उपरान्त नाहर, लक्ष्मण और उर्वशी यह तीनो उस युवक के चरणो पर प्रणत हो और उस युवक को सादर प्रणाम कर उस कमरे से बाहर निकले । बहुसख्यक खम्भों वाले उस विशाल कमरे को पार कर उस सीढी से चढ उस आलमारी जैसे गुप्त द्वार के समीप पहुचने मे उन्हें अधिक समय न लगा । वहाँ पहुच नाहर ने उन दोनो को उस युवक के सम्बन्ध की सभी बातो के गोपनीय रखने की सूचना दे उनके साथ उस गुप्त द्वार से उस विशाल कमरे में प्रवेश किया ।

वहा पूर्ववत् घोर अन्धकार छाया था । उस अन्धकार में नाहर के निद्राग्रस्त साथियो के श्वास—प्रश्वास की ध्वनि हो रही थी । उस समय पिछली रात उपस्थित थी । निकटवर्ती वन के खिले और खिलते हुए सुगन्धित पुष्पों से सुवासित वासन्ती मुक्त समीर उस कमरे में फैल नाहर के निद्रित साथियो को घोर निद्राग्रस्त बना रहा था।

उस कमरे के एक पार्श्व में उर्वशी के विश्राम की व्यवस्था की गई; उसके समीप लक्ष्मण ने विश्राम किया । नाहर अपने बिस्तर पर लेटा । इन तीनो में किसी को नींद न आई । प्रात काल होने पर नाहर ने उठ अपने साथियो से कहा,-"यह स्त्री रात्रि को इस कमरे में आई है । इसका नाम उर्वशी है। यह हमारे मित्र लक्ष्मण की भावी धर्म्म-पत्नी है ।"

कुछ समय के उपरान्त उस कमरे के एक कोने में पादा हाल उर्वशी के विश्राम का उस समय के लिये उपयुक्त एक स्थान बना दिया गया ।

दशम परिच्छेद।

नाहर का कार्य्य।

जिस दिन प्रातःकाल उर्वशी नाहर के दल में सम्मिलित हुई, उसके दूसरे दिन सन्ध्या समय उस खण्डर के उस विशाल सङ्कीन आगन में लक्ष्मण के हाथ में हाथ दे नाहर टहल और लक्ष्मण से बाते कर रहा था।

उस युवक के सम्बन्ध में बहुतेरी बातें जानने के लिये लक्ष्मण सविशेष उत्सुक था। वह युवक कौन है? उसमें इतनी शक्ति कैसे आई? उसके साथ की वह चारो स्त्रिया कौन हैं? इत्यादि विविध प्रश्न लक्ष्मण के मन मे उत्पन्न हुए थे। नाहर को वहा एकान्त मे पाते ही उससे उसने ऐसे विविध प्रश्न किये।

नाहर यद्यपि साधक न था; तथापि साधना का मर्म्म समझता था। विद्वानो से परिपूर्ण विद्याप्रेमी महाराज यशवन्तसिंह के दरबार में रहने की वजह बहुतेरे साधको का सान्निध्य लाभ कर चुका था। इसी लिये जुलफिकार के बाग के सामने उसने उस युवक का कार्य्य जब देखा था, तब आश्चर्य्यान्वित होने पर भी वह जान गया था, कि वह युवक और कुछ नही; योगबल सम्पन्न एक महापुरुष है। इसके उपरान्त वह युवक उर्वशी को ले हठात् जब अन्तर्हित हुआ, तब नाहर के मन में आया, कि वह योगी सिद्धि प्राप्त करके भी मोक्ष प्राप्त करने के बदले भोग का अभिलाषी हुआ है। इसके भी उपरान्त कल रात्रि को उस योगी के उस गुप्त भवन में जा उसने जो बातें सुनीं और देखीं, उससे उसके अनुमान की पुष्टि हो गई। उसे विदित हो गया, कि वह योगी कितनी ही कुमारी बारा-

ङ्गनाओं को एकत्र कर और उस खण्डहर के उस सुसज्जित गुप्त अंश मे उन्हें रख उनके साथ विलास कर रहा था। उर्वशी उन वाराङ्गनाओं की अपेक्षा अधिक सुन्दरी थी। वह योगी उसे भी अपने विलास की सामग्री बनाया चाहता था। किन्तु उर्वशी पतिव्रता थी, उस योगी के पाप प्रस्ताव को उसने स्वीकार न किया। वह योगी यदि चाहता, तो उर्वशी के प्रति बल प्रकाश कर सकता था। किन्तु पाप-भय से भीत हो उसने ऐसा न किया; इसीलिये अन्त तक उर्वशी की रक्षा हुई। उस योगी के सम्बन्ध में नाहर के मन में ऐसी ही धारणा उत्पन्न हुई थी और उस समय लक्ष्मण के उन प्रश्नों के उत्तर में उसने लक्ष्मण के सामने अपनी यह धारणा प्रकट कर दी।

लक्ष्मण—उस युवक की आँखों में इतनी शक्ति क्यों आई? इच्छा करते ही वह उर्वशी को बुला और उसकी निद्रितावस्था में उससे उसने विविध कार्य्य कैसे लिये?

नाहर—सुनो, लक्ष्मण! योगसाधना का विषय अत्यन्त गूढ है; उसे मैं स्वय ही नही समझता, तुम्हें क्या समझाऊँगा? फिर भी; इसके सम्बन्ध में विविध साधकों के मुह से मै ने विविध बातें सुनी हैं। योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः योग की विशाल-विराट् सीढी का पहला दण्ड है; यमनियमासनप्राणायाम प्रत्याहार धारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानी; इससे आगे का दण्ड है। ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च; सब से ऊपर के दण्डो में अन्यतम दण्ड है। इनमें प्रथम दण्ड का अर्थ है,—चित्त की वृत्तियों के निरोध का नाम योग है; द्वितीय दण्ड का अर्थ है,—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा,

ध्यान और समाधि यह आठो योग के अङ्ग हैं और तृतीय दण्ड का अर्थ है,—पञ्चभूत की विजय से सिद्धि आप ही प्रकट प्राप्त होती है; अणिमादिक आठो सिद्धि और स्वरूप की अधिकता प्राप्त होती है। क्यों, लक्ष्मण ! मेरी इन बातो को समझते हो ?

लक्ष्मण—कुछ-कुछ समझता हूं।

नाहर—फलतः पञ्चभूत की विजय से योगी बड़ी शक्ति लाभ करते हैं। वह केवल अपनी आज्ञा से मनुष्यो को सुला ही नहीं सकते, साथ—साथ आकाश में विचरण कर सकते हैं; एक जगह बैठ सहस्त्र-सहस्त्र कोस का हाल क्षण मात्र मे जान सकते हैं और जगत् की सम्पत्ति इच्छा करते ही प्राप्त कर सकते हैं।

लक्ष्मण—ऐसी दशा मे मैं भी योग-साधन कर इन शक्तियो का अधिकारी क्यो न बनूं ?

नाहर-(हँसकर) किन्तु योग-साधना इन शक्तियों के प्राप्त करने के लिये नहीं, सुदुर्लभ मोक्ष के लिये की जाती है।

लक्ष्मण—यदि यह बात है, तो इन युवक ने इन शक्तियो से अन्यान्य काम क्यो लिये ?

नाहर-इसलिये, कि वह इन शक्तियो के उपभोग में फस मोक्ष को भूल गये। इसी लिये अब से पहले तुम से मैं कह चुका हू, कि इन्हो ने सिद्धि पाई है, किन्तु कालप्रभाव से मोक्ष की ओर ध्यान न दे भोग की ओर झुक गये हैं।

लक्ष्मण—इन युवक की अवस्था कितनी है ?

नाहर—इनकी अवस्था दो सौ वर्ष की भी हो सकती है; पाच सौ वर्ष की भी हो सकती है; अन्ततः यह तीस या बत्तीस वर्ष के युवक नहीं; कारण इनमें जो शक्तियाँ

दिखाई देती है, वह साधारणतः इतनी अल्प आयु में प्राप्त की जा नहीं सकती।

लक्ष्मण—(अत्यन्त आश्चर्य्यान्वित हो) आप मुझ से हंसी तो नहीं करते?

नाहर—नहीं, लक्ष्मण! तुमसे हंसी करने का यह कौन स्थल है? किन्तु जैसा समय उपस्थित है, उससे एक तुम्हीं नहीं, अधिकांश हिन्दू-सन्तान मेरी इस बात को हंसी समझेंगे। फिर भी; मेरी बात और कुछ नहीं; ध्रुव सत्य है। योगी जराग्रस्त नहीं होते। बहुतेरे योगी एक देह के जीर्ण होने पर किसी नवयुवक की शव देह या उसमे अपनी आत्मा को प्रविष्ट करते हैं।

लक्ष्मण—बड़ी विचित्र बातें हैं।

नाहर—किन्तु जो लोग हिन्दू धर्म्म का मर्म्म समझतें है, उनके लिये इन बातो में कोई विचित्रता नहीं। प्राचीन काल में इस भारत मे योगियो की कमी न थी, इन दिनों इस भारत में जो योगी हैं, उनमें अधिकांश नकली योगी हैं; जो सच्चे योगी है, वह गुप्त रहते हैं, प्रकट नहीं होते। फिर भी, लक्ष्मण! तुम्हें योग-साधना के प्रपञ्च मे क्या;—तुम अपनी उर्वशी को पा गये हो। तुम्हें उचित है, कि सुअवसर पाते ही उसके साथ तुम अपना विवाह कर सुख-सन्तोष से अपनी जीवन-यात्रा निर्वाह करो।

लक्ष्मण—यही बात मैं भी चाहता हू। भगवत् कृपा से आप द्वारा जब यह कल्पनातीत बात प्रत्यक्ष हुई है, तब इससे मैं लाभान्वित हुआ चाहता हू। हम दोनों के सम्बन्ध में आपने क्या कोई बात स्थिर की है?

नाहर—स्थिर की है।

लक्ष्मण—क्या बात स्थिर की है ?

नाहर—यही, कि तुम मारवाड़ जाओ, वहाँ मेरे मकान में ठहर उर्व्वशी के साथ अपना विवाह करो। मैं अपनी जागीर के कर्म्मचारियों के नाम एक पत्र लिख दूंगा, वह तुम्हारे लिये एक स्वतन्त्र मकान और तुम्हारे व्यय के लिये तुम्हें उपयुक्त भूमि प्रदान करेंगे। उस समय तुम्हारा व्यय निर्व्वाह करने के लिये मेरे कोष से तुम्हें प्रचुर धन दिया जायेगा।

लक्ष्मण-मुझे स्थान का प्रयोजन है; धन का प्रयोजन नहीं। कारण, उर्व्वशी ने अपने गले में रत्न की एक माला पाई है। यह माला 'सम्भवत' उन योगी ने उर्व्वशी को अज्ञानावस्था में उसके गले में डाल दी है। इस माला के रत्नो के बेचने से हमें इतना धन प्राप्त होगा, जिसे हम जन्म भर में व्यय कर न सकेंगे। फिर भी; मुझे स्थान का बड़ा प्रयोजन है। आप की जागीर में हम दोनो निश्चिन्त और निर्व्विघ्न रह सकेंगे और जन्म भर आप का यश कीर्त्तन करेंगे।

नाहर—ऐसा ही हो। मेरी जागीर में तुम्हें भूमि मिलेगी और उस पर मेरी ओर से तुम दोनों के रहने योग्य एक महल बनवा दिया जायेगा। मेरी ओर से यह भेंट स्वीकार करो; इससे मुझे अत्यन्त सन्तोष होगा।

लक्ष्मण-आप मेरे प्राणदाता और रक्षक हैं; आप जो आज्ञा देंगे, वह मेरे शिरोधार्य्य होगी। अब आप यह बतायें, कि यहां आपका कब तक अवस्थान होगा? उर्व्वशी का सिपाहियों से परिपूर्ण उस कमरे में अधिक दिनो तक रखना असङ्गत जान पड़ता है।

नाहर-लक्ष्मण! तुम्हें याद रह सकता है, कि कल रात्रि को कुछ घण्टों के लिये मै तुम लोगों के पास से चला गया था?

लक्ष्मण—याद है। इसके सम्बन्ध में आप से मैं प्रश्न करने को था। कल रात्रि को आप कहा गये थे?

नाहर—जिस उद्देश्य से मैं यहा आया हू। उसी की सिद्धि के लिये कल मैं बाहर निकला था। लक्ष्मण! आज अमावस्या की घोर अन्धकारमयी रजनी में मैं अपना कार्य्य समाप्त किया चाहता हूं। आज अर्द्ध निशा में तुम सबको अपनी यात्रा आरम्भ करने के लिये तय्यार रहना होगा। अपनी उद्देश्य-सिद्धि का यत्न करने में यदि मै मारा जाऊंगा तो तुम लोग मेरी मृत्यु की सूचना पाते ही इस खण्डर से निकल मारवाड़ की ओर भागना। फिर; यदि मेरा उद्देश्य सिद्ध हुआ, तो तुम लोग मेरे साथ यात्रा करना।

लक्ष्मण—आप सब सवार हैं, मेरे और उर्व्वशी के घोड़े का क्या प्रबन्ध होगा?

नाहर—एक घोड़े पर दो सवार बैठ जायेंगे, जिस सवार का घोड़ा खाली होगा, उस पर तुम और उर्व्वशी सवार होना। लक्ष्मण! तुमसे यही प्रयोजनीय गुप्त बात कहने के लिये तुम्हें अपने साथ मैं यहा लाया था। इस बात से पहले प्रसङ्ग वश और कितनी ही बातें हो गई। अच्छा, अब सान्ध्य अन्धकार फैल गया है; हम लोगों के भोजन ग्रहण करने का समय उपस्थित है, आओ हम लोग उस बड़े कमरे की ओर चलें।

लक्ष्मण के साथ उस बड़े कमरे में पहुंच भोजनादि से निवृत्त हो नाहर के साथी जिस समय सोने का सामान करने लगे, उस समय उनसे नाहर ने कहा,—"बिस्तर

बिछाने का प्रयोजन नही। इस खण्डर मे यह रात सम्भवत हम लोगों की अन्तिम रात है। आज अर्द्ध निशा के समीप तुम लोग यात्रा के लिये तैयार हो अपने घोड़ों के साथ नीचे के उस आगन मे एकत्र होना। सम्भवत. आज अर्द्ध निशा के उपरान्त हम लोगो की यात्रा आरम्भ होगी।

एक सिपाही–क्या हम लोग यात्रा की तय्यारी शुरू करें?

नाहर–अवश्य; नही तो समय उपस्थित होने पर यात्रा कैसे कर सकोगे? यहा अन्धकार बहुत फैल गया है। यह अन्धकार मिटा प्रकाश फैला अपनी यात्रा की तय्यारी आरम्भ करने के लिये एक मशाल जला लो। किन्तु देखना! इस मशाल का प्रकाश आंगन में प्रकट होने न पाये और जैसे ही अपनी तय्यारी समाप्त करना, वैसे ही इस मशाल को बुझा देना।

उस कमरे की चीजें सग्रह की जाने लगीं, बिस्तर लपेटे जाने लगे; खूटियों से लटकते अस्त्र शस्त्र सिपाहियों के शरीर पर यथास्थान लगने लगे। इस यात्रा के लिये लक्ष्मण और उर्वशी बड़ी ही आसानी से तय्यार हुए। उनके पास जो चीज़ें थीं, वह उनकी अपनी नहीं; नाहर तथा उसके साथियो की थीं। उन चीजों को लौटाते ही वह दोनो भावी यात्रा के लिये तय्यार हो गये।

जिस समय नाहर के साथी यात्रा की तय्यारी कर रहे थे, उस समय नाहर अपने समस्त अस्त्र शस्त्र धारण कर उस खण्डर से बाहर निकलने के लिये प्रस्तुत हो गया। उसके शिर पर पगड़ी मे छिपी लोहे की टोपी थी, उसकी देह पर अङ्गे से छिपा लोहे के जाल का बना कोट था, उसके पैर में पायजामे में छिपा लोहे का पायजामा

था। उसकी कमर मे बहुत बडी एक रेशमी चादर बधी थी, जिसमे कटार, छुरे, पिस्तौल आदि खुसे थे। उसके कमरबन्द से लगी दोनो ओर दो तलवारैं लटकती थी। उसकी पीठ पर तीरो का कोष; कन्धे पर लोहे का धनु था। उसकी दाढी उसके कानों पर चढी हुई थी; उसकी सघन मूछो की नोकें ऊपर उठी हुई थी। उसके बडे-बडे नेत्र रक्त वर्ण थे; उसके आकार से दृढता और गाम्भीर्य्य प्रकट होता था।

इस तरह तय्यार हो कोई एक प्रहर रात बीतने पर नाहर ने अपने साथियो से कहा,—"अर्जुनसिंह मेरे साथ जायेगा; तुम लोग यात्रा के लिये तय्यार हो यहां अव-स्थान करो। अर्द्धनिशा के उपरान्त तुम्हारे पास आ अर्जुनसिंह जो बात कहे, तुम लोग उसके अनुसार कार्य्य करना।" लक्ष्मण के समीप जा अत्यन्त मृदुस्वर से कहा,—"मेरी मृत्यु का समाचार पाते ही इन सिपाहियो के साथ तुम और उर्वशी दोनो यथासम्भव शीघ्र सिरोही राज्य से निकल जाना।"

यह कह नाहर अपने सिपाहियों के दल से अर्जुनसिंह नामक एक बलिष्ट सिपाही को अपने साथ ले उस कमरे से उतर वह आँगन पार कर उस झाडी के समीप पहुचा, जिसके पीछे एक सिपाही का पहरा था। उससे नाहर ने कहा,—"खूब सावधानी से पहरा देना। अर्द्धनिशा के समीप अर्जुन लौटकर आयेगा, उसे पहचान उसके आने में किसी तरह की बाधा उपस्थित न करना।"

उस खण्डहर से निकल अर्जुन के साथ नाहर ने अपने सामने के एक वन में प्रवेश किया। वसन्त-ऋतु की उप

स्थिति के कारण उस वन के वृक्षो के पुराने पत्ते गिर गये थे; नये पत्ते निकल रहे थे। उन पुराने पत्तो के गिर जाने से उस वन की सघनता बहुत कुछ नष्ट हो गई थी। फिर भी; उस अमावस्या की रात्रि के घनान्धकार का साहाय्य पा उन नये पत्तो ही ने उस वन की भूमि को घोर अन्धकारमयी बना रखा था। इसमे सन्देह नही, कि कोई और ऋतु होने पर उस समय वह सब भूमि इतनी अन्धकारमयी हो जाती कि उस पर मनुष्य का चलना कठिन हो जाता।

कोई एक कोस पथ इस वन में चल अर्ज्जुन के साथ नाहर इस वन के बीच बहती हुई एक क्षुद्र नदी के किनारे पहुचा। उस समय इस नदी की जल-धारा बहुत ही क्षीण हो गई थी। इसके अधिकांश स्थल मे घुटने या कमर से अधिक जल न था। सिर्फ कही-कही आश्रय पा अधिक जल एकत्र था। यह नदी क्षुद्र थी; किन्तु इसका गर्भ प्रशस्त और इसके दोनो किनारे बहुत ऊचे थे। इस नदी के समीप पहुच अर्ज्जुन और नाहर दोनो ने वन-भूमि परित्याग कर इस नदी के गर्भ मे प्रवेश किया।

नाहर—अर्ज्जुन! आगे का पथ बड़ा ही विपज्जनक है। इसमे अग्रसर होते समय हमें किसी प्रकार का भी शब्द करना न चाहिये।

अर्ज्जुन— ऐसा ही होगा।

नाहर—इससे आगे नदी-तट पर वन-भूमि मे जगह-जगह सिपाहियो का पहरा है। किसी भी प्रकार का शब्द होते ही इन पहरो के सिपाही हमें देख गोलियो या तीरो से पशु की तरह मार डालेंगे।

अर्जुन—अन्नदाताजी! आप मेरी ओर से किसी तरह की भी चिन्ता न कर आगे बढ़ें। मैं बहुत ही सम्भल कर आगे बढ़ूँगा।

इसके उपरान्त यह दोनो उस नदी-गर्भ मे कोई आध कोस तक अग्रसर हुए। जिस जगह इनकी ओर का नदी-तट ऊंचा था, उस जगह यह तट से सटकर आगे बढ़ते थे। जिस जगह यह नदी तट कम ऊंचा था, उस जगह यह झुककर; कभी-कभी बैठ या लेटकर अग्रसर होते थे। कोई आध कोस पथ इस तरह अतिक्रम कर अन्त में नाहर ठहर गया। उसने अर्जुन से अत्यन्त मृदु स्वर में कहा;—"अर्जुन! अब तुम मेरे साथ न आ इस दीवार जैसे नदी-किनारे के नीचे ठहर जाओ। इस स्थान से आगे मैं अकेला जाऊँगा। अब से कुछ समय के उपरान्त इस किनारे के ऊपर वन भूमि मे मनुष्यों का घोर कोलाहल होगा। उसे सुन तुम तनिक भी विचलित न होना। उस घोर कोलाहल को भेद तुम्हें सीटी की ध्वनि सुनाई देगी। यह सीटी मैं दूंगा। मेरी सीटी सुनते ही तुम इस स्थान से लौट उस खड्डर में अपने साथियों के पास जाना। यदि मै एक सीटी दू, तो उनसे कहना, कि वह सब यथासम्भव शीघ्र सिरोही-राज्य से निकल जायें। यदि मै दो सीटी दू, तो उनमें छः सवारों को ले तुम यथासम्भव शीघ्र इस स्थान में आना।

अर्जुन—क्यो अन्नदाताजी! आपकी इन दोनो सीटियो का अर्थ क्या है; विशेषत पहली सीटी का क्या अर्थ है?

नाहर—पहली सीटी का अर्थ यह है, कि मै विपद् में पड़ गया, तुम लोग अपनी प्राण रक्षा करो। दूसरी सीटी का अर्थ यह है, कि मैं सफल मनोरथ हुआ, तुम-

लोग आ मुझे साहाय्य दो।

अर्ज्जुन—आप मुझे अपने साथ क्यों नहीं ले चलते?

नाहर—इसलिये, कि उस दशा में मेरे साथियों को मेरा दिया समाचार पहुंचाने वाला कोई न रहेगा।

अर्ज्जुन—आप की यदि ऐसी ही आज्ञा है, तो मैं यहां ठहरता हूं।

अर्ज्जुन को उस स्थान में छोड़ नाहर उस नदी-गर्भ में और आगे बढ़ा। कुछ दूर पर उसे एक कच्चा घाट मिला। बड़ी ही सावधानी से नाहर उस घाट द्वारा नदी-गर्भ से नदी-तट के ऊपर वन-भूमि में पहुंचा। उसने देखा, कि वहां दूर तक वन-भूमि में वृक्षों के नीचे खीमे गड़े थे। नाहर के समीप ही नदी-तट पर बहुत बड़ा एक खीमा खड़ा था। उसकी एक ऊँची चोटी पर बहुत बड़ी एक ध्वजा चढ़ी थी। उस समय वहां नाहर के सामने व्रजवासी वीर महाराज सुरतानसिंह देवड़ा या देवराज की छावनी थी। नाहर के समीप ध्वजा से सुशोभित जो सर्व्वोच्च खीमा था, वह और किसी का नहीं;—स्वयं महाराज सुरतानसिंह का था। उस समय अर्द्धनिशा समीप थी। उस छावनी में घोर निस्तब्धता छाई थी। कहीं कोई प्रदीप जलता दिखाई देता न था। वासन्ती वायु मन्द-मन्द बह रही थी।

नाहर भूमि पर लेट बड़ी ही सतर्कता से धीरे-धीरे सुरतानसिंह के उस खीमे की ओर अग्रसर हुआ। जिस ओर खीमे का द्वार था, नाहर उस ओर न गया। वह घूमकर खीमे के वाम-पार्श्व में पहुंचा। इस पार्श्व में दो सिपाही पहरे पर खड़े थे। इन दोनों के बीच कोई दश हाथ का अन्तर था। वृक्षों की आड़ में भूमि पर लेटता

नाहर उन दोनो सिपाहियो के बीच की उस भूमि के एक वृक्ष के समीप पहुचा। उस वृक्ष से उस खीमे का वह पार्श्व कोई पाँच हाथ दूर था। उस खीमे और उस वृक्ष की प्रतिच्छाया की वजह उस स्थान में घोर अन्धकार छाया था।

उस वृक्ष की जड़ के समीप कुछ समय तक ठहर नाहर धीरे-धीरे आगे बढ उस खीमे के समीप पहुचा। उस समय उसका मन अत्यन्त सशङ्क था। प्रत्येक क्षण उन सिपाहियो द्वारा वह अपने देखे जाने की आशङ्का करता था। उस खीमे के समीप पहुच नाहर ने अपनी कमर से छुरा निकाला और उस खीमे के नीचे का अश धीरे-धीरे काट डाला। उस कटे हुए अश से एक बार उस खीमे के भीतर का दृश्य देख नाहर ने उस कटे हुए स्थान से उस खीमे के भीतर प्रवेश किया।

उस खीमे के भीतर पहुच नाहर ने देखा, कि वह जिस स्थान में पहुचा था, वह स्थान एक छोटे शयनागार के रूप का बना था। उस स्थान के बीच में चादी के पायो का एक पलङ्ग बिछा था। जिस पर बिछे मोटे फर्श पर एक मनुष्य सो रहा था। इस पलङ्ग के समीप एक द्वार था, जिस पर चिक पड़ा था। चिक के दूसरे पार्श्व में प्रकाश हो रहा था। उस प्रकाश का प्रतिबिम्ब उस चिक से होकर उस स्थान में पड़ रहा था। नाहर को यह देख बड़ी प्रसन्नता हुई, कि उस पलङ्ग पर सोया मनुष्य और कोई नहीं; स्वय सिरोहीपति वीरवर सुरतानसिह थे।

सुरतानसिह के उस शयनागार में कुछ या सजावट की उल्लेख योग्य कोई सामग्री न थी। नीचे दरी बिछी थी, जिस पर व्याघ्र चर्म बिछा था। उसकी एक दीवार पर

चीते का चमड़ा लगा था, जिस पर एक ढाल लगी थी; उसके ऊपर दो नङ्गी तलवारें कैंची के रूप में लगा दी गई थीं।

सुरतानसिंह विवस्त्र हो नहीं; वस्त्र पहन सोये थे। उनकी कमर कसी हुई थी; उनके शिर पर पगड़ी बंधी हुई थी। उनकी तलवार तथा अन्यान्य अस्त्र-शस्त्र उनकी बगल मे उस पलङ्ग पर रखे हुए थे। उनके पैर में जूता न था। उनके खुले हुए बायें पैर मे सुवर्ण का एक तोड़ा पड़ा था। औरङ्गजेब से विरोधकर वनवासी होने के उपरान्त से प्रति रात्रि को सुरतानसिंह इसी तरह सोया करते थे। उद्देश्य यह था, कि तनिक भी सूचना पाते ही पलङ्ग छोड़ वह शत्रु से सम्मुखीन होने के लिये प्रस्तुत हो सकें। सुरतानसिंह के शिर और दाढ़ी-मूछ के बाल बढ़े हुए थे। उस निद्रितावस्था मे भी उनके सुन्दर मुख से दृढ़ता के चिह्न परिलक्षित थे। यद्यपि घोर चिन्ता ने उनकी आखों के गिर्द काले गड्ढे डाल दिये थे; तथापि उनके हृदय की दृढ़ता ने उनकी मुखश्री को तनिक भी नष्ट होने न दिया था।

निद्रित सुरतानसिंह को अच्छी तरह देख उस चिक के समीप पहुच उस से नाहर ने उस शयनागार के बाहर दृष्टि की। उसे दिखाई दिया, कि उस शयनागारके बाहर बहुत बड़ा स्थान था। उसमें फर्श बिछा हुआ था। उस फर्श पर पन्द्रह या सोलह सशस्त्र राजपूत पड़े सो रहे थे। वहां एक कोने में बहुत ही मोटी एक मोमबत्ती जल रही थी।

यह सब बाते देख नाहर ने निद्रित सुरतानसिंह के समीप पहुंच पहले सुरतानसिंह के अस्त्र-शस्त्र उनकी बगल मे उठा उस पलङ्ग के नीचे रख दिये। इसके उपरान्त अपने दाहने हाथ में अपना छुरा लिया और बायें हाथ से सुर-

तानसिंह का कन्धा पकड़ हिला दिया । सुरतानसिंह की निद्रा एकाएक भङ्ग हुई । वह आँखें खोल उठने पर उद्यत हुए । यह देख नाहर ने अपने बाये हाथ के दबाव से उन्हें उठने न दिया और अत्यन्त मृदु स्वर में कहा,—"राजन्! मैं आप का शत्रु नहीं; मित्र हूं।"

सुरतानसिंह नाहर की आकृति देख क्षुब्ध हुए। उन्हों-ने उच्च स्वर से कहा,—"यह कौन है ?–यहा कैसे आया ?"

सुरतानसिंह के कण्ठ से इस बात के निकलते ही उस शयनागार के बाहर हलचल मच गई । वहा सोये सभी राजपूत निद्रा परित्याग कर अपने अस्त्र-शस्त्र सँभाल 'कौन–कौन' कहते उस कमरे में घुसने पर उद्यत हुए। इस पर नाहर ने उच्च स्वर से कहा,—"वीरगण! भीतर न आना; यदि आओगे, तो तुम्हारे स्वामी महाराज सुरता-नसिंह को मैं मार डालूगा।"

नाहर की यह बात सुन सुरतानसिंह के वह कर्म्मचारी उस शयनागार के द्वार पर ठहर गये। अब नाहर ने महा-राज सुरतानसिंह से कहा,—"आप अपने जूते पहन मेरे साथ इस शयनागार मे बाहर चलें।"

इस एकाएक की घटना के कारण सुरतानसिंह चकित–स्तम्भित हुए थे। नाहर के कथनानुसार जूते पहन उसके साथ वह उस शयनागार से बाहर निकले। इस अवसर मे इस घटना का रञ्जित तथा अतिरञ्जित समाचार सुर-तानसिंह की समूची छावनी में फैल गया और महाराज के खीमे के बाहर तथा भीतर बहुतेरे सिपाहियो तथा अफसरों की भीड़ लग गई। सुरतानसिंह की समूची छावनी में बड़ा कोलाहल मच गया।

सुरतानसिंह को साथ ले और उस शयनागार के उस द्वार से भीड़ हटा नाहर ने उस बड़े कमरे में प्रवेश किया, जिसमें वह मोमबत्ती जल रही थी। यहा पहुचते ही नाहर के मुह से सीटी की दो सुतीक्ष्ण ध्वनि हुई। वहाँ के उपस्थित मनुष्य इस ध्वनि का अर्थ समझ न सके। नाहर के यह दो सीटियाँ दे चुकने पर उनके सामने खड़े बहुसंख्यक मनुष्यो में एक वयोवृद्ध मनुष्य नाहर के सामने आ खड़ा हुआ। उसने नाहर को आपाद मस्तक देख कहा,-"तुम्हे मैं पहचानता हू। तुम मारवाड़पति महाराज यशवन्तसिंह के रक्षक और परम मित्र कम्पावत-वीर मुकुन्दसिंह उर्फ नाहरसिंह हो।"

नाहर—तुम्हारा अनुमान सत्य है; मैं नाहरसिंह ही हू। तुम कौन हो?

मनुष्य—मैं इस सैन्य का सेनापति और महाराज सुरतानसिंह का सेवक हू।

नाहर—तुम्हे देख मैं अत्यन्त आनन्दित हुआ। सब से पहले तुम अपने अधीनस्थ अफसरों और सिपाहियों से यह कह दो, कि वह मुझपर आक्रमण करने का कोई यत्न न करें। कारण, तुम लोगो द्वारा जैसे ही मैं आक्रान्त हुआ, वैसे ही अपने हाथ का यह छुरा तुम्हारे इन महाराज की छाती में घुसेड़ इन्हें मैं मार डालूगा।

मनुष्य—शिव! शिव! नाहर तुम यह कैसी बात कहते और यह क्या अकाण्ड काण्ड किया चाहते हो।

नाहर—सुनो, महाशय! मैं यहा सुरतानसिंह और सिरोही-राज्य इन दोनो के हित के लिये आया हूं। मैं जगदीश को साक्षी कर कहता हू, कि मैं तुम लोगों का

शत्रु नहीं; परम हितैषी हूं; तुम्हारे हितसाधन के लिये यहां आया हूं। किन्तु तुम लोग मेरी इस बात पर विश्वास न कर मुझ पर यदि आक्रमण करोगे, तो मेरी बात सत्य मानो; मैं तुम सब का शत्रु बन जाऊंगा और सब से पहले अपने पञ्जे में फंसे तुम्हारे इन महाराज को मार डालूंगा।

मनुष्य—किन्तु जब तुम ऐसा करोगे, तब स्वयं क्या जीवित रह सकोगे?

नाहर—मैंने यह कब कहा, कि मैं जीवित रह सकूंगा? इसमें सन्देह नहीं, कि मैं भी मारा जाऊंगा। किन्तु प्रश्न यह है, कि मुझे मार कर भी क्या तुम अपने इन सुयोग्य और वीर महाराज को जीवित कर सकोगे? मेरी समझ में मेरे जैसे सहस्र-सहस्र मनुष्यों को मार कर भी तुम एक मृत सुरतान देवरा को जीवित कर न सकोगे। फलतः तुम यदि अपने इन प्रिय महाराज की कुशल चाहते हो; सिरोही का मङ्गल चाहते हो, अपना कल्याण चाहते हो, तो मुझ पर आक्रमण न कर मैं जो कहता हूं, उसे सुनो।

इस पर उस वयोवृद्ध मनुष्य के पीछे खड़े बहुसंख्यक योद्धाओं में घोर कलकल ध्वनि हुई और उनमें बहुतेरे योद्धा तलवारें खींच नाहर की ओर 'मार-मार' कहते झपटे। यह देख पलक झपकते नाहर ने अपनी वाम भुजा फैला उससे सुरतानसिंह की छाती को दोनों भुजाओं सहित वेष्टन कर अपने दाहने हाथ के सुतीक्ष्ण छुरे की नोक उनकी छाती से लगा दी और अत्यन्त कर्कश स्वर में कहा,—"सावधान! तुम लोग अब यदि एक पग भी अग्रसर होगे, तो सुरतानसिंह की इहलीला समाप्त हो जायेगी।

यह देख वह सब योद्धा ठहर गये और लोह—विद्रुर

मे आबद्ध क्रुद्ध केसरी जिस तरह अपना क्रोध प्रकाश करता है, उसी तरह अपना क्रोध प्रकाश करने लगे। उस समय उस खीमे मे खड़े और उसके बाहर एकत्र मनुष्यो में बड़ा कोलाहल हुआ। यह देख इस कोलाहल से ऊंची अपनी सुतीक्ष्ण कण्ठ-ध्वनि से नाहर ने उस वयोवृद्ध मनुष्य से कहा,-" वयोवृद्ध होकर अनुभव विहीन युवकों जैसा दु:खद कार्य्य न करो। इस खीमे में खड़े इन सब मनुष्यो को आज्ञा दो, कि वह इस स्थान से निकल इस के द्वार के बाहर जा खड़े हो। जगदीश साक्षी है; यदि तुम यह आज्ञा न दोगे, तो मेरे हाथ का यह छुरा तुम्हारे महाराज के शरीर के जिस स्थान में लगा है, उस में घुस जायेगा।

नाहर ने जिस आकार और स्वर से यह बात कही, उसे देख और सुन वहां के सभी मनुष्यो के मन में भय का सचार हुआ। उन्हें विश्वास हो गया, कि नाहर ने जो कुछ कहा है, उसके अनुसार कार्य्य करने में उसे अधिक समय न लगेगा। नाहर की यह बात सुन उस वयोवृद्ध मनुष्य ने खीमे में खड़े कुछ सरदारो को छोड़ और सब को उस खीमे के द्वार पर भेज दिया। उस समय उस द्वार पर अगणित मनुष्य एकत्र थे। खीमे के भीतर के मनुष्य बाहर निकल इन्हीं मनुष्यो में मिल गये। इन्हें उस खीमे से बाहर निकाल उस वयोवृद्ध मनुष्य ने नाहर से कहा,- " जो मनुष्य खीमे में रह गये हैं, उनसे चिन्ता न करो; यह विश्वस्त मनुष्य हैं; किसी उत्तेजना के वशीभूत हो कोई अकार्य्य न करेंगे। अब तुम अपना छुरा हमारे महाराज की छाती से हटा लो और तुम्हें जो कुछ कहना हो, कहो।"

नाहर—(अपना छुरा सुरतानसिंह की छाती से

छुटा और उन्हें अपनी भुजा के वेष्टन से मुक्त कर) मैं तुम्हारे महाराज को औरङ्गजेब के सम्मुख ले जाने के लिये आया हूं और ले जाऊंगा।

मनुष्य—क्या,—औरङ्गजेब के सम्मुख ? सिरोही-पति के घोर शत्रु के सम्मुख ? नहीं,—नहीं,—यह असम्भव सम्भव हो नहीं सकता। औरङ्गजेब के सम्मुख पहुंच असहायावस्था में मरने के बदले हमारे महाराज का यहीं मर जाना अच्छा है।

नाहर—किन्तु औरङ्गजेब इन महाराज को अपने सम्मुख पा असहाय भी न पायेगा, इनका अनङ्गल भी कर न सकेगा।

मनुष्य—यह कैसे सम्भव है ?

नाहर—यह ऐसे सम्भव है, कि जिस समय तुम्हारे महाराज औरङ्गजेब के सम्मुख पहुंचेंगे, उस समय मैं और मेरे साथी कम्पावन उनकी रक्षा करेंगे। सुरतानसिंह के मारने से पहले औरङ्गजेब को मुझे और मेरे साथियों को मारना पड़ेगा। पहले हम लोग मरेंगे; पीछे तुम्हारे महाराज मरेंगे।

मनुष्य—अब से पहले तुमने कहा है, कि तुम हमारे महाराज के मित्र हो। तुम्हारी यह बात यदि सत्य है, तो उन्हें इसी समय छोड़ क्यों नहीं देते; औरङ्गजेब के सामने ले जा उनका और अपना प्राण सङ्कट में क्यों डालते हो ?

नाहर—तुम्हारे महाराज को औरङ्गजेब के सामने मैं इसलिये ले जाया चाहता हूं, कि औरङ्गजेब और तुम्हारे महाराज में सन्धि हो जाये, सिरोही-राज्य में एक बार फिर शान्ति प्रतिष्ठित हो और तुम्हारे महाराज इन दिनों वनवास की जो यन्त्रणा भोग कर रहे हैं, वह दूर हो जाये।

तुम्हारे महाराज और तुम सब की शुभ कामना से ही मैं यह कार्य्य करने पर उद्यत हुआ हूं।

नाहर के हाथ पड़े हुए सिरोहीपति अभी तक निस्तब्ध थे; निद्रा से उठकर भी मानो वह जागते हुए सो रहे थे। नाहर की यह बात सुन उस मनुष्य के कोई प्रत्युत्तर देने से पहले नाहर से उन्हों ने कहा,— "किन्तु इस बात का प्रमाण क्या है, कि तुम जो बातें कहते हो, वह मिथ्या नहीं; सत्य हैं?"

नाहर—इसका प्रमाण, महाराज! मेरा वचन और मेरे पिछले कार्य्य हैं। (उस वयोवृद्ध मनुष्य से) तुम कहते हो, कि तुम मुझे पहचानते हो। सम्भवतः मेरे नाम ही से नहीं; मेरे कार्य्य से भी तुम्हारा परिचय होगा। तुम्हीं बताओ, कि तुमने क्या कभी महाराज यशवन्तसिंह या मेरे द्वारा किसी हिन्दू के प्रतारित या व्यथित होने का समाचार सुना है?

मनुष्य—इसके बदले मैंने यह सुना है, कि तुम दोनो ही हिन्दुओं के रक्षक और आश्रय—निकेतन हो। फिर भी, आज इस समय तुमने जो व्यवहार किया है, उसे देख तुम्हारे सम्बन्ध में मै क्या समझूं?

नाहर—मेरे इस व्यवहार को नहीं; इसके फल को देख तुम्हें मेरे सम्बन्ध में जो कुछ समझना हो; समझना। (सुरतानसिंह) से इस तरह, महाराज! मेरा वचन और मेरे पिछले कार्य्य मेरी अब से पहले की कही बातों की सत्यता के प्रमाण हैं।

सुरतान—मान लो, कि मुझ में और औरङ्गजेब में सन्धि न हुई और उसने मेरे वध या मेरी कैद की आज्ञा

दी, उस समय तुम क्या करोगे ?

नाहर—मैं और मेरे साथी अपने प्राण दे आप को औरङ्गजेब के सामने से निकल जाने का सुअवसर प्रदान करेंगे। किन्तु महाराणा! बात यहां तक न बढ़ेगी। मुझे विश्वास है, कि आप में और औरङ्गजेब में सन्धि अवश्य हो जायेगी। इस बात का मुझे यदि विश्वास न होता, तो आप को मैं इतना कष्ट कभी न देता।

सुरतान—(अपना दाहना हाथ फैला) मुझे वचन दो, कि औरङ्गजेब के सामने पहुचने पर मेरे प्रति तुम ऐसा ही व्यवहार करोगे।

नाहर—(सुरतान के हाथ पर हाथ मार) आपको मैं वचन देता हू; कि औरङ्गजेब के सामने आपके प्रति मैं ऐसा हों; प्रयोजन होने पर इसने भी अधिक मैत्री का व्यवहार करूगा।

सुरतान—औरङ्गजेब के सामने जाने के लिये मुझे क्या आयोजन करना उचित है ?

नाहर—कोई आयोजन नहीं, महाराज! आपको केवल इतना करना होगा, कि कुछ मास के लिये अपने इन सेवकों को छोड़ हमें अपना सेवक बनाना होगा।

सुरतान— किस समय हमे अपनी यह यात्रा आरम्भ करना उचित है ?

नाहर—अभी; इसी समय।

सुरतान—यात्रा आरम्भ करने का यह कौन सा समय है?

नाहर—मेरी समझ में इस समय से अधिक उपयुक्त और कोई समय नहीं। आप को मेरी प्रार्थना यदि स्वीकार है, तो आप इसी समय मेरे साथ यह यात्रा कीजिये।

सुरतान—(कुछ सोचकर) यही सही। मेरा घोड़ा लाओ।

सुरतानसिंह की यह बात सुन उस खीमे में खड़े उन सरदारो ने सजलनयन हो हाथ जोड़ सुरतान से कहा,–" राजन्! हम सब को क्या आज्ञा होती है?" इनके यह प्रश्न करते ही उस खीमे के द्वार पर खड़ी जनता में कल-कल रव उत्थित हुआ। कई मनुष्यों ने उच्च स्वर से कहा, " हम अपने महाराज को जाने न देंगे।"

सुरतान–(उच्च स्वर से) व्याकुल न हो; धैर्य्य धारण करो;–विपद् के समय जो धैर्य्य धारण करता है, वही विपदोद्धार की यथाथ चिन्ता कर सकता है। मेरे वियोग से जिस तरह तुम्हें कष्ट हो रहा है; तुमसे पृथक् होते हुए उसी तरह मेरा भी हृदय विदीर्ण होता है। दु ख दोनो ओर है, किन्तु इस समय इससे हमें अधीर न हो धैर्य्य धारण कर अपनी सुबुद्धि का परिचय देना चाहिये। सुनो मित्रो! औरङ्गजेब से शत्रुता होने की वजह गत कई वर्ष से मैं यह जो वनवास कर रहा हू, उससे अब अतीव व्यथित हो गया हू। विशेष व्यथा मुझे अपने वनवास से नही; तुम्हारे वनवास से हो रही है। जब मैं यह देखता हू, कि मेरे कारण मेरे इतने अनुरक्त-भक्त सिपाही और सरदार वनवास की यन्त्रणा भोग रहे हैं, तब मेरा हृदय विदीर्ण होता है। इस व्यथा से व्यथित हो अब से पहले कई बार मैं मृत्यु की आकाक्षा कर औरङ्गजेब की सैन्य के मध्य भाग में घुस गया हूं, किन्तु इससे मृत्यु के बदले मुझे दु खद विजय प्राप्त हुई है। फलत इस वनवास से मैं इतना व्यथित हूं, कि मुझे अपना जीवन भी प्रिय जान नही पड़ता है। बहुत दिनो से मै अपने इस दुःखद वनवास की समाप्ति का कोई उपाय ढूढ रहा हू।

कलकल रव करता उस खीमे के द्वार के एक पार्श्व में खड़ा हो गया। नाहर और सुरतानसिंह दोनो उस खीमे से बाहर निकले। वहा महाराज सुरतानसिंह का एक घोड़ा खड़ा था। नाहर ने उसकी लगाम पकड़ ली और सुरतानसिंह से कहा,-"अब आप अपने साथियों को यही ठहरने की आज्ञा दे मेरे साथ इस नदी-गर्भ की ओर चलिये।"

सुरतान—(मुस्कुरा कर) नाहर! इस समय मैं तुम्हारा बन्दी हूं; तुम मुझे जो आज्ञा दोगे, उसे मैं शिरोधार्य्य करूँगा। फिर भी; एक बात याद रखना, कि मैं भय से नहीं, तुम पर विश्वास कर तुम्हारे साथ दिल्ली जाने के लिये प्रस्तुत हुआ हू।

नाहर—राजन्! मुझ पर विश्वास कर आपको कभी पश्चात्ताप करना न होगा।

सुरतान—(अपने सिपाहियो से) मित्रो! इस समय जब मेरे और तुम्हारे बीच विच्छेद होना ही है, तो इसी समय हो जाये। तुम लोग अब यहीं ठहरो; मेरे पीछे न आओ। भगवत्कृपा हुई, तो चार मास के उपरान्त तुम से मैं फिर भेंट करूँगा। इस अवसर में भगवान् तुम्हें सकुशल और रक्षित रखें।

सुरतानसिंह की यह बात सुन उनके सम्मुख उपस्थित ... सिपाहियो के मुख से दुःखद क्षुब्ध कोलाहल ...। इसके उपरान्त जैसे ही सुरतानसिंह नाहर ... नदी के उस कच्चे घाट की ओर बढ़े, वैसे ... ने अपने महाराज को शिर झुका

... तुम्हारी रक्षा करें; तुम्हारा महा-

अपने सामने पा यदि कष्ट देने का यत्न करेगा, तो अपनी और अपने साथियों की बलि दे तुम्हारे महाराज को मैं दिल्ली से निकल जाने का सुअवसर दूंगा।

सुरतान—नाहर! तुम्हारी बातो पर मैं विश्वास करता हूं; इसीलिये तुम्हारे साथ दिल्ली जाने के लिये प्रस्तुत हुआ हूं। मित्रो! अभी तुम ने मुझ से पूछा था, कि तुम्हारे सम्बन्ध में मैं क्या व्यवस्था किये जाता हूं। इसका उत्तर यह है, कि तुमने जिस तरह अब तक वनवास किया है, उसी तरह और चार मास वनवास करो। इस चार मास में मेरे प्रधान सेनापति मेरा पद कार्य्य निर्वाह करेंगे। इस समय के अन्त में या तो मैं तुम्हारे पास वापस आऊंगा या मेरा समाचार तुम्हें प्राप्त होगा। यदि मैं वापस आऊंगा, तो उस समय तुम मेरे कथनानुसार काम करना। यदि मेरा मृत्यु समाचार तुम्हें प्राप्त हो, तो मेरी यह आज्ञा है, कि तुम लोग वनवास परित्याग कर औरङ्गजेब की वश्यता स्वीकार कर एक बार फिर सुख-सन्तोषपूर्व्वक नगर में रहना। बस; इस यात्रा से पहले तुमसे यही मेरा कहना है। क्या मेरा घोड़ा आ गया?

एक मनुष्य—आपका घोड़ा आ गया है। फिर भी; महाराज! हम लोग आपको छोड़ना नहीं चाहते; अपने साथ आप हम लोगो को भी दिल्ली ले चलिये।

सुरतान—नहीं; तुम्हें अपने साथ मैं दिल्ली ले जा नहीं सकता। तुम लोग यदि मेरे भक्त हो, तो मेरी यह आज्ञा मानो। अब तुम लोग खीमे का द्वार छोड़ एक ओर खड़े हो जाओ; नाहर के साथ मैं इस खीमे से बाहर निकलूंगा।

उस खीमे के बाहर खड़ा सिपाहियो का वह दल

भागने का यत्न करूँगा। नाहर! मुझ से तुमने यह प्रतिज्ञा व्यर्थ कराई। कारण, सिरोही-राज्य में शान्ति प्रतिष्ठित कराने की इच्छा से मैं स्वतःप्रवृत्त हो तुम्हारे साथ दिल्ली जाया चाहता हूं। मेरी यह इच्छा यदि न होती, तो तुम मुझे दिल्ली कभी ले जा न सकते। (उग्र भाव से) सिर्फ तुम्हीं नहीं; नाहर! ससैन्य औरङ्गजेब भी मेरी इच्छा के विरुद्ध मुझे दिल्ली ले जा नहीं सकता।

नाहर—यह प्रतिज्ञा कराने के लिये मुझे आप क्षमा करें, महाराज। आप से यह प्रतिज्ञा करा मैंने अवस्थानुसार व्यवस्था मात्र की है। रह गया आप का वीरत्व। उसे केवल मैं ही नहीं; भारत के असंख्य लोग जानते हैं। जबतक सिरोही-राज्य और उसका इतिहास रहेगा, तब तक आपका वीरत्व कीर्त्तित होता रहेगा।

सुरतान—अब तुम क्या किया चाहते हो?

नाहर—आप अपने इस घोड़े पर सवार हो जायें। इसकी लगाम पकड़ इसे मैं आगे बढ़ाता हूं। यहां से कुछ ही दूर पर मेरे साथी मिलेंगे।

सुरतान—(अपने घोड़े पर बैठ) तुम्हारे साथी कहां हैं? तुम अपने साथियों के साथ इस दुर्भेद्य और सुरक्षित स्थान में कैसे घुस आये?

नाहर सुरतानसिंह के घोड़े की लगाम पकड़ नदी-गर्भ के उस पथ से अपने साथियों की ओर लौटने और सुरतानसिंह को अपने सिरोही आने का सम्पूर्ण विवरण संक्षेप में सुनाने लगा। प्रसङ्ग वश उसने सुरतान से लक्ष्मण और उर्वशी की भी बात कही।

नाहर की बातें अभी अच्छी तरह समाप्त होने न पाईं

राज तुम्हे कभी न भूलेगा; तुम भी अपने महाराज को न भूलना।

सुरतान की यह बात सुन उनके सम्मुख उपस्थित उन असख्य सिपाहियो मे कितने ही सजल नयन हुए; कितने ही उच्च स्वर से रो उठे। थोड़े से सिपाही हिंस्र पशु की तरह चीत्कार करने लगे।

नाहर—राजन्! अब हमें शीघ्र ही यहा से प्रस्थान करना चाहिये।

सुरतान—चलो, मै तुम्हारे साथ हूं। (अपने सिपाहियो से) वीरगण! शान्त हो,—शीघ्र ही तुम से मै फिर मिलूगा।

इसके उपरान्त नाहर के साथ सुरतानसिंह उस कच्चे घाट से उतर नदी-गर्भ में पहुचे। घोर तिमिराच्छन्न उस नदी-गर्भ में ठहर सुरतानसिंह से नाहर ने कहा,—"महाराज! आप एक प्रतिज्ञा कीजिये।"

सुरतान—कैसी प्रतिज्ञा?

नाहर—यह प्रतिज्ञा कीजिये, कि अपनी इस दिल्ली यात्रा मे आप हमे असावधान पा या सुविधा देख न तो हम पर आक्रमण करेंगे न हमारी आंखो में धूलि झोंक भागने का यत्न करेंगे।

सुरतान—मैं यदि यह प्रतिज्ञा न करूँ, तो तुम क्या करोगे?

नाहर—ऐसी दशा में आपको मैं नितान्त अनिच्छा पूर्वक पहरे में रखूगा। और आप यदि यह प्रतिज्ञा करेंगे, तो आप पर किसी तरह का पहरा न रहेगा; आप स्वामी, हम सब आप के सेवक बनकर रहेंगे।

सुरतान—यदि यह बात है, तो मै प्रतिज्ञा करता हू, कि मैं तुम पर न तो आक्रमण करूँगा; न सुअवसर पा

का मेरा समय चला गया। अब मुझे शिक्षा देना ... तो है ही; भयङ्कर भी है।

नाहर—(उठकर) अब हमें समय नष्ट न कर शाह- के पास चलना चाहिये।

सरदार—ठीक है; किन्तु सिरोहीपति को खूब साव- होकर शाहशाह से भेंट करना चाहिये।

सुरतान—(उठकर) मुझे उन मनुष्यों पर बड़ी दया है, जो जबरदस्ती किसी को परामर्श देते हैं।

सिरोहीपति के उठते ही उस बारहदरी में बैठे सब उठे। मारवाड़पति के उस महल के बाहर निकल सुरतानसिंह आदि अपनी-अपनी सवारियों में हुए। जुलूस के साथ महाराज की सवारी दिल्ली के किले की ओर चली। जुलूस के आगे डङ्के का घोड़ा था। पीछे कितने ही शाही सवार थे। उनके पीछे एक ... हाथी पर महाराज सुरतानसिंह थे। उनके हाथी की बगल में अपने घोड़े की पीठ पर नाहरसिंह था। चालीस कछवावत सवार इस हाथी के इर्द गिर्द थे। महा- राज के हाथी के पीछे और तीन हाथी थे, जिन पर औ- रङ्गजेब के वह सरदार बैठे थे। अन्तिम हाथी के पीछे जुलूस के अन्त में और कई शाही सवार थे। महाराज ... के माथे पर एक छाता लगा था, उनके पीछे ... एक खवास उन्हें चँवर झल रहा था।

दर्शकों से परिपूर्ण दिल्ली के बाजारों से निकल यह ... मसजिद के नीचे से होती हुई दिल्ली के किले में ... आम के समीप आ ...

... आदि अपनी सवारियों ...

पृथ्वीसिंह—शाहशाह को सलाम कर मैं शीघ्र ही मारवाड़ लौटा चाहता हूं। देखूं,-शाहशाह से भेंट होने का सौभाग्य मुझे कब तक प्राप्त होता है।

सरदार—सिरोहीपति महाराज सुरतानसिंह किनका नाम है?

नाहर-(सुरतानसिंह की ओर सङ्केत कर) आप का।

इसपर औरङ्गजेब के सरदारों ने सुरतानसिंह की ओर देखा। इन सब के इस बारहदरी में आने पर इनकी इस बारहदरी में बैठे और सब लोगो ने ताजीम की थी; केवल सिरोहीपति अपनी जगह बैठे रह गये थे। सिरोहीपति का यह व्यवहार इन सरदारो को भला जान न पड़ा था। नाहर से इनका परिचय पाते ही इन से एक सरदार ने पूछा,—"क्यों महाराज! क्या आप शाहशाह से भेंट करने के नियम जानते हैं?"

सुरतान—कैसे नियम?

सरदार—शाहशाह के सामने पा अदब से झुककर सात सलामें करना होती हैं; इसके बाद उन्हें नज़र दी जाती है।

सुरतान—ठीक है; किन्तु इस जन्म में मैने किसी शाहशाह को सलामें भी नही की; नज़र भी नही दी।

सरदार—आपको उचित है, कि यह दोनो बातें सीख लें; दरबार में शाहशाह को सलाम न करना बहुत बड़ी गुस्ताखी करना है।

सुरतान-(गम्भीर स्वर से) मुझे तुम शाहशाह के पास सम्मान से चलने के लिये आये हो या शिक्षा देने के लिये? यदि मैं सलाम करना नही जानता, तो तुम से इसकी शिक्षा भी ग्रहण किया नही चाहता। शिक्षा प्राप्त

करने का मेरा समय चला गया। अब मुझे शिक्षा देना कठिन तो है ही; भयङ्कर भी है।

नाहर—(उठकर) अब हमें समय नष्ट न कर शाह-शाह के पास चलना चाहिये।

सरदार—ठीक है; किन्तु सिरोहीपति को खूब साव-धान होकर शाहशाह से भेंट करना चाहिये।

सुरतान—(उठकर) मुझे उन मनुष्यों पर बड़ी दया आती है, जो जबरदस्ती किसी को परामर्श देते हैं।

सिरोहीपति के उठते ही उस बारहदरी में बैठे सब मनुष्य उठे। मारवाड़पति के उस महल के बाहर निकल महाराज सुरतानसिंह आदि अपनी-अपनी सवारियों में सवार हुए। जुलूस के साथ महाराज की सवारी दिल्ली के किले की ओर चली। जुलूस के आगे डङ्के का घोड़ा था। उसके पीछे कितने ही शाही सवार थे। उनके पीछे एक सुसज्जित हाथी पर महाराज सुरतानसिंह थे। उनके हाथी की बगल में अपने घोड़े की पीठ पर नाहरसिंह था। चालीस कम्पावत सवार इस हाथी के इर्द गिर्द थे। महा-राज के हाथी के पीछे और तीन हाथी थे, जिन पर औ-रङ्गजेब के वह सरदार बैठे थे। अन्तिम हाथी के पीछे जुलूस के अन्त में और कई शाही सवार थे। महाराज सुरतानसिंह के माथे पर एक छाता लगा था, उनके पीछे बैठा एक खवास उन्हें चँवर झल रहा था।

दर्शकों से परिपूर्ण दिल्ली के बाजारों से निकल यह सवारी जामा मसजिद के नीचे से होती हुई दिल्ली के किले में पहुँच दरबारे आम के समीप जा खड़ी हुई। महाराज सुर-तानसिंह आदि अपनी सवारियों से उतरे। औरङ्गजेब

के उन सरदारो मे एक ने महाराज सुरतानसिंह से कहा-"आप थोडी देर के लिये यहा ठहरें। आपके आगमन की सूचना मैं शाहशाह को देता हूं।"

यह कह वह सरदार चला गया और अल्प काल के उपरान्त वापस आ उसने कहा,—"शाहशाह आप से भेंट करने के लिये प्रस्तुत है। आप मेरे साथ आइये।"

इस सरदार के पीछे महाराज सुरतानसिंह चले। उनके पीछे सदलबल नाहर चला। औरङ्गजेब के पिता शाहेजहाँ के समय दरबारे आम मे उतनी रौनक न रहती थी; क्योंकि वह दिल्ली मे कम; आगरे मे अधिक रहा करता था। औरङ्गजेब दिल्ली मे रहने लगा; इसलिये नित्य-ही दरबारे आम मे बडी रौनक दिखाई देती थी। यह विशाल चौखूटी इमारत अपने शिल्प और सौन्दर्य्य में आज भी अप्रतिम है। यह तीन ओर से खुली; चौथी ओर से एक दीवार से बन्द है। इस दीवार के मध्यभाग में कोई बारह हाथ की उँचाई पर एक द्वार है। इस द्वार के बराबर औरङ्गजेब का सिंहासन रहता था। इस दीवार के पीछे से आ इस द्वार से निकल औरङ्गजेब अपने इस सिंहासन पर बैठा करता था। इस सिंहासन के सामने बहुत बडा एक दालान है। इस दालान के छोर पर दरबारे आम का प्रधान फाटक है। इस फाटक पर नक्कारे के ऊपर शहनाई बजा करती थी। इस दालान के दोनो पार्श्व में महराबे और खम्भे हैं, खम्भो के बाद दालाने और फिर खम्भे और फिर दालाने हैं। इसका मतलब यह है, कि दरबारे आम की विशाल छत खम्भों पर रखी हुई है और यह खम्भे इस क्रम से बनाये गये हैं, जिससे बहुतेरे दालान

बन गये हैं। अन्यान्य दालानो की अपेक्षा सिंहासन के सामने का दालान बड़ा है। सिंहासन के सामने के दालान में प्रवेश करने के लिये इस दरबार का वह प्रधान फाटक है। अन्यान्य दालानो मे प्रवेश करने के लिये द्वार है। सिंहासन वाली दीवार के दाहने और बायें भाग मे इस दरबार में प्रवेश करने के लिये द्वार नही; सिर्फ खिड़कियां बनाई गई हैं।

जिस समय नाहर आदि इस दरबार के सामने पहुंचे थे, उस समय इस दरबार के सामने का स्थान विविध मनुष्यों, सुसज्जित हाथियों, पले हुए हिंस्र पशुओं और सशस्त्र सवारो से परिपूर्ण था। इस दरबार के प्रधान द्वार पर नौबत बज रही थी। कई शहनाइयाँ मिल भैरवी की कोमल स्वर की तानें लगा रही थीं। औरङ्गजेब का वह सरदार नाहर आदि को ले इस दरबार के सदर द्वार की ओर न जा दाहने पार्श्व को अन्त में उस खिड़की की ओर गया, जो औरङ्गजेब के सिंहासन के ठीक सामने पड़ती थी। उस समय दरबारे आम मनुष्यों से परिपूर्ण था; फिर भी, इस खिड़की और औरङ्गजेब के सिंहासन के बीच के सब मनुष्य हटा दिये गये थे। उद्देश्य यह था, कि जिस समय नाहर आदि इस खिड़की में प्रवेश करें, उस समय औरङ्गजेब उन्हें देख सके। इस खिड़की के समीप पहुंच उस सरदार ने महाराज सुरतानसिंह से कहा,—"महाराज! आप आगे चलिये।"

सुरतानसिंह सब बाते समझ गये। वह समझ गये, कि उन्हो ने औरङ्गजेब को सलाम करना अस्वीकार किया है; इसलिये उनसे स्वाभाविक रूप से सलाम कराने

लिये उनके इस खिड़की द्वारा दरबार में प्रवेश कराने की व्यवस्था की गई है। बात भी ऐसी ही थी। औरङ्गजेब ने सुरतानसिंह का वह मनोभाव जान अपने उस सरदार को आज्ञा दी थी, कि सुरतानसिंह इस खिड़की द्वारा दरबार में लाये जायें; इस सङ्कीर्ण खिड़की से घुसने के लिये सुरतानसिंह अपना शिर झुका प्रकारान्तर से औरङ्गजेब को सलाम करने पर बाध्य होंगे। वीर और अभिमानी सुरतानसिंह कौशली औरङ्गजेब की इस व्यवस्था का मर्म्म समझ अल्प समय के लिये अत्यन्त चिन्तित हुए। अन्त में मन ही मन उन्होंने इस सङ्कट से उद्धार पाने का एक उपाय स्थिर किया और मुस्कुरा कर उस सरदार से कहा,—"क्या इस खिड़की ही से मुझे इस दरबार में प्रवेश करना होगा?"

सरदार—हां।

सुरतान—इस दरबार का एक सदर द्वार है। उससे मेरे इस दरबार में आने की व्यवस्था क्यों न की गई?

सरदार—इसलिये, कि सदर द्वार के सामने मनुष्यों की बड़ी भीड़ है। उसके हटाने में बड़ी असुविधा होगी। इस खिड़की से प्रवेश करने पर आप सरलता पूर्वक शाहंशाह के सिंहासन के समीप पहुंच सकेंगे।

सुरतान—इसमें सन्देह नहीं, कि तुम्हारे शाहंशाह बड़े ही बुद्धिमान् हैं; इसी लिये तुम जैसे बुद्धिमानों को वह अपने पास रख सके हैं। तुम दोनों की बुद्धिमानी देख मैंने परम सन्तोष लाभ किया है, और मेरा सन्तोष देख तुम दोनों को भी आनन्दित होना चाहिये। तुम मुझे यदि इस खिड़की ही से ले आया चाहते हो, तो मैं भी इसी पथ से तुम्हारे शाहंशाह के दरबार में प्रवेश किया चाहता हूं।

यह कह देवरा सुरतान उस खिड़की में घुसने पर उद्यत हुए। उसी समय देवरा के समीप खड़े शाही नकीब ने उच्च स्वर से कहा,—"निगह रूबरू।" नकीब की ध्वनि ने समूचे दरबारे आम को गुञ्जा दिया। दरबारे आम के उस सिंहासन पर बैठे औरङ्गजेब की निगाह उस खिड़की की ओर गई। उसे दिखाई दिया, कि सुरतान के शिर ने नहीं; दाहने पैर ने उस खिडकी मे प्रवेश किया है। कौशली औरङ्गजेब को कुलाभिमानी वीर देवरा ने अपने कौशल से परास्त किया। उस खिड़की में शिर डाल औरङ्गजेब को अनिच्छा पूर्वक प्रणाम करने के बदले देवरा ने अपना दाहना पैर डाला। देवरा का वह पैर देख औरङ्गजेब ने अपना ओंठ अपने दांतो से काटा और उस खिडकी की ओर से अपनी दृष्टि हटा ली। देवरा का यह कौशल देख उसके साथ के औरङ्गजेब के सरदार अप्रतिम हुए, नाहर और उसके साथियो के आकार से आन्तरिक आनन्द की लालिमा झलक गई।

देवरा सुरतानसिंह पहले अपने पैर और अपना सारा शरीर अन्त में शिर डाल उस खिड़की द्वारा दरबारे आम में प्रविष्ट हुए। उनके पीछे नाहर आदि ने उस खिड़की में प्रवेश किया। इसके उपरान्त यह सब औरङ्गजेब के उस सिंहासन की ओर चले। इनके आगे-आगे नकीब नकाबत करता चला। कितने ही खम्भो और मिह्-राबो को पारकर यह सब औरङ्गजेब के उस सिंहासन से कोई पन्द्रह हाथ के अन्तर पर जा खड़े हुए। इससे आगे जाने की जगह न थी। इनके और उस सिंहासन के बीच 'हफ़्त हजारी,' 'हश्त हजारी,' 'वज़ीराने सल्तनत,'

खड़े बहुसंख्यक सुसज्जित हाथी क्रम-क्रम से इस फाटक के सामने आने और अपनी सूंड उठा मस्तक झुका औरङ्गजेब को सलामें कर दूसरी ओर जाने लगे। कोई दो सौ हाथियों ने इस तरह औरङ्गजेब को सलामें कीं। इन हाथियों के बाद बहुतेरे घोड़ों ने क्रम-क्रम से आगे आ औरङ्गजेब को शिर झुका सलामें कीं। इन घोड़ों के उपरान्त बहुसंख्यक पले हुए हिंस्र पशु चीतों आदि ने औरङ्गजेब के सामने आ सलामें कीं। अन्त में कई सहस्र सवारों का एक बड़ा रिसाला आया। इस रिसाले का प्रत्येक सवार बहुसंख्यक अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित और वर्म्म आदि से आपादमस्तक परिवृत था और वह जब औरङ्गजेब के सामने पहुंचता, तब उसकी ओर अपना शिर झुका देता था। इस रिसाले के मध्य भाग में इसका बहुमूल्य निशान था, जिसके साथ तरह-तरह के बाजे थे। कोई एक घण्टे में इस रिसाले की सलामी का कार्य्य संमाप्त हुआ। दरबारे आम के बाहर के मैदान में धूलि उड़ने लगी। यह देख उत्तमोत्तम पोशाकों से सुसज्जित बहुसंख्यक भिश्ती दौड़े और उन्हों ने अपने मश्क का सुगन्धित जल छिड़क यह धूलि बैठा दी।

इसके उपरान्त ही उस सिंहासन के समीप खड़े वह मनुष्य एकाएक फिर 'करामात-करामात' चिल्लाये। दरबारे आम की जनता मे एक बार फिर निस्तब्धता फैली। उन चिल्लानेवालों में एक ने उच्च स्वर से कहा,—"शाहंशाह अपने गुलामों की जाँनिसारी का तमाशा देखा चाहते हैं।" इस वाक्य के समाप्त होते ही कोई बीस मुगल नङ्गी तलवारें हाथों में ले उस सिंहासन के सामने आ खड़े हुए।

ऐसे समय विविध वस्त्राभूषण से सुसज्जित और बहुसंख्यक अस्त्र-शस्त्र से विभूषित कितने ही हबशी गुलाम उन मुगलो के सामने आ खड़े हुए। उन सबने औरङ्गजेब की ओर देख हाथ जोड़ कहा,—"हम जाँनिसारी के लिये तय्यार हैं।" औरङ्गजेब ने अपनी उँगली से एक विशेष सङ्केत किया, इसे देख वह गुलाम घुटने टेक अपनी गरदनें झुका खड़े हो गये। इस पर वह सब मुगल उन गुलामों की बगल में पहुचे। उनमे हरेक गुलाम को बगल में एक मुगल खड़ा हुआ और उसने अपनी नङ्गी तलवार अपने बगल के गुलाम की झुकी हुई गरदन पर रख दी। इसके उपरान्त इनमें हरेक मुगल ने अपनी तलवार से अपने बगल के गुलाम की गरदन पर तलवार मारने का निशान बनाया। इसके फल से प्रत्येक गुलाम की काली गरदन पर लाल रक्त-धारा प्रकट हुई। अन्त में उन मुगलो ने मारने के लिये अपनी तलवारें ज्योंही वायु मे उठाईं, त्योंही एक बार फिर 'करामात' का शोर हुआ। यह शोर करनेवाले मनुष्यो ने कहा,—"गुलामो की जाँनिसारी की परीक्षा हो चुकी; इस समय इनकी गरदनें काटी न जायँ।" इस पर समूचे दरबार में 'सुभानल्लाह–सुभानल्लाह' का शोर हुआ। वह मुगल अपनी तलवारें म्यान में रख पीछे हट गये; वह गुलाम अपनी-अपनी गरदनों पर तलवार के बने निशानों से बहता उत्तप्त रक्त पोछते यथास्थान गये। यह बीभत्स दृश्य देख समूचा दरबार क्षुब्ध हुआ। कभी-कभी यह दृश्य और भी बीभत्स हो जाता था; जाँनिसार गुलामो की जाँनिसारी की पूरी परीक्षा हो जाती थी; उनकी गरदनें उनके धड़ से अलग कर दी जाती थीं। कभी-कभी ऐसा भी

होता था, कि एक दल गुलामों के कट जाने पर उनका दूसरा दल; इसके बाद तीसरा दल अपनी जाँनिसारी की यह भीषण परीक्षा देने के लिये वधस्थान में आता था।

इस तरह अपने प्रबल प्रभाव से सुरतान के पराभूत होने का आयोजन कर अन्त में औरङ्गजेब ने उनकी ओर ध्यान दिया। औरङ्गजेब ने देखा, कि वीरवर अटल-अचल हैं; उनके आकार-प्रकार से हर्ष या विषाद; भय या प्रमाद किसी भी भाव के चिह्न दिखाई नहीं देते। उस अथाह सागर की थाह लेने का कुछ समय तक वृथा प्रयास कर अन्त में औरङ्गजेब ने उन 'करामात' रक्षकारियों को निवारित कर सुरतानसिंह से स्वयं बातचीत आरम्भ की।

औरङ्गजेब—क्या तुम्हारा ही नाम देवरा सुरतानसिंह है?

सुरतान—हां; और क्या तुम्हारा ही नाम सम्राट् औरङ्गजेब है?

औरङ्गजेब—हां। सुरतान! क्या तुमने अवनत होना सीखा ही नहीं?

सुरतान—औरङ्गजेब! मैं केवल जगदीश और गुरुजन के सम्मुख ही अवनत होता हूं। इस मर्त्य के कृमिकीट क्षणभङ्गुर देह धारियों के सामने न तो कभी अवनत हुआ हूं; न भविष्यत् में अवनत हूंगा। हे भारत-सम्राट्! मनुष्य के सामने मनुष्य का शिर झुकाना मेरी समझ में घोर पाप है।

औरङ्गजेब—तुम इस समय मेरे समीप किस लिये आये हो?

नाहर—(हाथ जोड़) जहाँपनाह! आप से विरोध आरम्भ करने के उपरान्त से यह वनवासी हुए हैं। इनका महल का निवास छूट गया है; यह वन के वृक्षों के नीचे

निवास करते हैं; इनका रत्नजटित सोने का पलङ्ग खो गया है; कभी-कभी यह तृण शय्या पर शयन किया करते हैं। वन-पर्व्वत इनका निवास स्थान बन गया है, वन के हिंस्र पशु इनके साथी बन गये है। आप के आज्ञानुसार इन्हें आप की सेवा में मैं इस लिये लाया हू, कि आप इनके पिछले अपराध क्षमा कर इनसे सन्धि कर लें।

औरङ्गजेब-(हसकर) देखता हू, कि वन-पर्व्वत और हिंस्र पशुओं में रहने की वजह इनका स्वभाव बहुत कुछ परिवर्त्तित हो गया है।

सुरतान-नही, औरङ्गजेब! तुम जानते हो, कि मेरा स्वभाव पहले भी ऐसा ही था। वह स्वभाव ही नही, जो जीवनसङ्गी न हो। अपने इस स्वभाव के कारण ही मै वनवासी हुआ हू।

औरङ्गजेब-किन्तु तुम्हारे जैसे स्वभाव के मनुष्यो को इस ससार में पद-पद पर विपद् मे फसना होता है।

सुरतान-(हस कर) भारत-सम्राट्! विपद् की सूचना देने का प्रयोजन नही। नाना विपद् मे पड इसका मर्म्म मै अच्छी तरह समझता हू।

औरङ्गजेब-फिर, अब तुम्हारा क्या विचार है?

नाहर-(हाथ जोड) एक ही विचार है, हुजूर! वह यह, कि अब इनकी विपद् का अन्त हो; इनके पिछले अपराध क्षमा किये जायें और इनके और आप के बीच एक बार फिर सन्धि हो जाये।

औरङ्गजेब-इन्हों ने मुझ से बड़ा कुव्यवहार किया है; मेरे हजारो सिपाहियों को मारा और लाखों रुपये नकद व्यय कराया है। इनका अपराध क्या क्षमा किया जाने के योग्य है?

होता था, कि एक दल गुलामों के कट जाने पर उनका दूसरा दल; इसके बाद तीसरा दल अपनी जाँनिसारी की यह भीषण परीक्षा देने के लिये वधस्थान में आता था।

इस तरह अपने प्रबल प्रभाव से सुरतान के पराभूत होने का आयोजन कर अन्त में औरङ्गजेब ने उनकी ओर ध्यान दिया। औरङ्गजेब ने देखा, कि वीरवर अटल-अचल हैं; उनके आकार-प्रकार से हर्ष या विषाद; भय या प्रमाद किसी भी भाव के चिह्न दिखाई नहीं देते। उस अथाह सागर की थाह लेने का कुछ समय तक वृथा प्रयास कर अन्त में औरङ्गजेब ने उन 'करामात' रवकारियों को निवारित कर सुरतानसिंह से स्वयं बातचीत आरम्भ की।

औरङ्गजेब—क्या तुम्हारा ही नाम देवरा सुरतानसिंह है?

सुरतान—हां; और क्या तुम्हारा ही नाम सम्राट् औरङ्गजेब है?

औरङ्गजेब—हां। सुरतान! क्या तुमने अवनत होना सीखा ही नहीं?

सुरतान—औरङ्गजेब! मैं केवल जगदीश और गुरुजन के सम्मुख ही अवनत होता हूं। इस मर्त्य के कृमिकीट क्षणभङ्गुर देह धारियों के सामने न तो कभी अवनत हुआ हूं; न भविष्यत् में अवनत हूंगा। हे भारत-सम्राट्! मनुष्य के सामने मनुष्य का शिर झुकाना मेरी समझ में घोर पाप है।

औरङ्गजेब—तुम इस समय मेरे समीप किस लिये आये हो?

नाहर—(हाथ जोड़) जहाँपनाह! आप से विरोध आरम्भ करने के उपरान्त से यह वनवासी हुए हैं। इनका महल का निवास छूट गया है; यह वन के वृक्षों के नीचे

औरङ्गजेब-खुदा जिसको सत्य समझता है, उसे स्थिर रखता; जिसे मिथ्या समझता, उसे नष्ट कर देता है।

सुरतान-तुम्हारी यह बात बहुत ठीक है। ऐसा न होता, तो जगदीश जगत् की असंख्य जातियों को मिटा कर भी अनन्त काल मे अब तक हिन्दू-जाति को स्थिर न रखते। भगवत्कृपा से आज भी कोटि-कोटि हिन्दू मौजूद हैं और वह जड़प्राय होने पर भी निर्ज्जीव हो नही गये है।

औरङ्गजेब-खुदा जिसको बड़ा बनाता है, उसके सामने मनुष्य को अवनत होना होता है; जो मनुष्य अपनी मूर्खता से ऐसा नही करता, उसको कठोर दण्ड मिलता है।

सुरतान-जो मनुष्य कालचक्र के आवर्त्तन से प्रभुता पा मदान्ध हो बड़े को छोटा समझता है, वह काल ही की ताड़ना से पतित होता और अपने पाप का घोर प्रायश्चित्त भोग करता है।

औरङ्गजेब-सुरतान! क्या तुम्हे मेरे शासन-दण्ड का भय नही?

सुरतान-औरङ्गजेब! मुझे शासन दण्ड का भय अवश्य है; किन्तु तुम्हारे शासन-दण्ड का नही; जगदीश के शासन-दण्ड का। इसी दण्ड से मै सदा भय किया करता हू। रह गया तुम्हारा शासन दण्ड। इसके सम्बन्ध मे मेरा यह कहना है, कि इसके परिचालन का तुम्हे अधिकार नही। राजा वही है, जो राजोचित गुणो मे विभूषित है, जो राजा कहला कर भी राजोचित गुणो से अलकृत नहीं; वह अत्याचारी है, लुटेरा है, धूर्त्त है, सब कुछ है; किन्तु राजा नही। फिर, मनुष्य को मनुष्य के दण्डित करने का अधिकार नही। जो स्वयं विविध अपराधो का

सुरतान-(हँस कर) औरङ्गजेव! तुम से मैं प्राण भिक्षा या और कोई भिक्षा मागने के लिये नही कहता; केवल तुम्हारा भ्रम निवारण करने के लिये कहता हूं, कि तुम मेरे जिन कामो को मेरा अपराध समझते हो, वह यथार्थ में मेरा अपराध नही; राजोचित गुण मात्र है। मैं भी एक भारत-सम्राट् का वशधर हूं। आज तुम दिल्ली में जिस तरह अपना दरबार जमाये बैठे हो, अब से कुछ ही समय पहले इसी दिल्ली में मेरे पूर्व्वज इससे भी अधिक शोभा सम्पन्न अपना दरबार लगा बैठा करते थे। वही दिल्ली है; वही भारत वर्ष है;–तुम विदेशी विधर्मी मुगल आज यहा बैठ मेरे अपराध के गुरुत्व का विचार कर रहे हो और मै तुम्हारे दासानुदासो के बीच अवस्थान कर अपनी निरपराधिता प्रमाणित करने के लिये तुम से बातें कर रहा हू। मेरी दिल्ली गई; मेरा भारतवर्ष गया; मेरी धन-सम्पत्ति सभी का नाश हुआ, वन और पर्व्वतो से परिपूर्ण देश के एक अतीव जनशून्य और अनुर्व्वर अञ्चल सिरोही में थोड़ी सी भूमि ले मै अपनी जीवन-यात्रा निर्व्वाह कर रहा हूं। तुम्हें मेरी यह भी दशा पसन्द न आई; तुम ने मुझे इस दशा से भी पतित कर और भी दुर्द्दशा मे ग्रस्त करने के लिये मेरे देश मे अपनी फौजें भेजी। तुम्हीं सोचो कि अपनी इस गिरी हुई दशा को स्थिर रखने के लिये तुम्हारी फौजो से यदि मैं ने युद्ध किया, तो क्या बुरा किया? यह भी सोचो, कि मैं ने जो कुछ किया, वह स्वत-प्रवृत्त होकर किया या आत्म-रक्षा के लिये बाध्य होकर किया? मैं ने जो कुछ किया या तुम्हारी जो क्षति हुई, उसका प्रधान कारण मैं हू या तुम?

औरङ्गज़ेब-खुदा जिसको सत्य समझता है, उसे स्थिर रखता; जिसे मिथ्या समझता, उसे नष्ट कर देता है।

सुरतान-तुम्हारी यह बात बहुत ठीक है। ऐसा न होता, तो जगदीश जगत् की असंख्य जातियों को मिटा कर भी अनन्त काल से अब तक हिन्दू-जाति को स्थिर न रखते। भगवत्कृपा से आज भी कोटि-कोटि हिन्दू मौजूद हैं और वह जड़प्राय होने पर भी निर्ज्जीव हो नहीं गये हैं।

औरङ्गज़ेब-खुदा जिसको बड़ा बनाता है, उसके सामने मनुष्य को अवनत होना होता है; जो मनुष्य अपनी मूर्खता से ऐसा नहीं करता, उसको कठोर दण्ड मिलता है।

सुरतान-जो मनुष्य कालचक्र के आवर्त्तन से प्रभुता पा मदान्ध हो बड़े को छोटा समझता है, वह काल ही की ताड़ना से पतित होता और अपने पाप का घोर प्रायश्चित्त भोग करता है।

औरङ्गज़ेब-सुरतान! क्या तुम्हें मेरे शासन-दण्ड का भय नहीं?

सुरतान-औरङ्गज़ेब! मुझे शासन-दण्ड का भय अवश्य है; किन्तु तुम्हारे शासन-दण्ड का नहीं; जगदीश के शासन-दण्ड का। इसी दण्ड से मैं सदा भय किया करता हूं। रह गया तुम्हारा शासन दण्ड। इसके सम्बन्ध में मेरा यह कहना है, कि इसके परिचालन का तुम्हें अधिकार नहीं। राजा वही है, जो राजोचित गुणों से विभूषित है, जो राजा कहला कर भी राजोचित गुणों से अलङ्कृत नहीं; वह अत्याचारी है, लुटेरा है, धूर्त्त है, सब कुछ है; किन्तु राजा नहीं। फिर, मनुष्य को मनुष्य का दण्डित करने का अधिकार नहीं। जो स्वयं विविध अपराधों का

अपराधी है, वह दूसरे को अपराधी बता दण्ड कैसे दे सकता है? और यदि दण्ड दे भी, तो उसका यह कार्य्य न्यायशील लोगो की दृष्टि में सङ्गत कैसे समझा जा सकता है? अच्छा; औरङ्गजेब! तुम से मै एक प्रश्न करता हू, तुम सोचकर मेरे इस प्रश्न का उत्तर दो।

औरङ्गजेब-कैसा प्रश्न?

सुरतान-क्या अपनी मृत्यु के भय से तुम्हारे मन मे कभी सुकर्म्म सम्पादन करने की भी धारणा उत्पन्न होती है?

औरङ्गजेब-यह प्रश्न तुम किस उद्देश्य से करते हो?

सुरतान-इस उद्देश्य से, कि सुकर्म्म करने का रस बड़ा ही मीठा होता है। इसका आस्वाद ग्रहण कर मनुष्य की अन्तरात्मा आनन्द-विभोर होती है। भगवान् ने तुम्हे इस योग्य बनाया है, कि तुम यदि चाहो, तो नित्य बहु-सख्यक बार इसका रसास्वाद ग्रहण कर सकते हो। मेरा अनुरोध है, औरङ्गजेब! तुम सदा मानवीय अनधिकार चर्चा दण्डादि देने का कुकर्म्म न कर कभी-कभी सुकर्म्म सम्पादन कर इसका मधुर रस चखा करो।

औरङ्गजेब-कसम रब्बे जलालतमाब की, सुरतान! तू बड़ा ही निर्भय; बड़ा ही वीर है। अपने इस दरबारे आम मे मै ने किसी मनुष्य द्वारा ऐसी बातें बहुत कम सुनी है।

नाहर-(हाथ जोड़कर) हे दिल्लीपते! सुरतान यदि वीर है, तो आप वीरो के राजा हैं; आप द्वारा वीर सुरतान का समुचित सम्मान होना चाहिये। आप द्वारा एक वीर का सम्मानित होना देख आप के निकटवर्त्ती वीरो के आनन्द की सीमा न रहेगी।

औरङ्गजेब-इसके बदले सुरतान को यदि दण्ड दिया

जाये, तो मेरे निकटवर्त्ती वीरो के मन में कैसा भाव उत्पन्न होगा ?

नाहर-आशा है, कि आप ऐसा कभी न करेंगे। कारण, जिस समय आप ने मुझे सुरतान को दिल्ली लाने की आज्ञा दी थी, उसी समय यह वचन भी दिया था, कि आप द्वारा सुरतान का किसी प्रकार का भी अपमान न होगा। इस समय आप यदि अपने इस वचन को भुला सुरतान के प्रति कुव्यवहार करेंगे, तो अपना वचन भी भङ्ग करेंगे और अपने निकटवर्त्ती वीरों के मन को व्यथा भी देंगे।

औरङ्गजेब-(मसनद से लगकर और नाहर के पीछे खड़े उन चालीसो कम्पावत वीरो को देखकर) क्यो सुरतान! इस बात का प्रमाण क्या है, कि तुम यहा से स्वराज्य लौटते ही एक बार फिर मेरे विरुद्ध विद्रोह-वह्नि प्रज्वलित न करोगे ?

सुरतान-औरङ्गजेब! इस बात का प्रमाण मेरा वचन; मेरी प्रतिज्ञा है। तुम मुझे यदि अवनत करने का यत्न न करोगे; मेरे राज्य पर अधिकार करने का प्रयास छोड़ दोगे; मुझ पर किसी प्रकार का कर न लगाओगे, तो मैं आजन्म तुम्हारा मित्र रहूगा, कभी तुम्हारे विरुद्ध किसी तरह का आचरण न करूगा। औरङ्गजेब! तुम मुझे अपना मित्र समझो; मैं जन्म भर तुम्हारा मित्र बना रहूगा।

औरङ्गजेब-(हसकर) इसमें सन्देह नही, कि इस मैत्री के तुम्हारे नियम बड़े ही सहज और सुस्पष्ट हैं।

सुरतान-नियम वियम नहीं जानता, कूट राजनीति भी नहीं जानता; जो बात मन मे आती है, वह निःसङ्कोच

मुंह से निकालता हूं । तुम यदि अकपट चित्त क्षुद्र राज्य के अधिकारी एक योद्धा से मैत्री किया चाहते हो, तो मुझ से मैत्री करो ।

औरङ्गजेब-(मसनद का सहारा छोड़ कर) ऐसा ही हो, वीर सुरतान!—ऐसाही हो। मैं एक निष्कपट पार्वत्य वीर से मैत्री किया चाहता हूं ।

सुरतान-(औरङ्गजेब के सिंहासन के समीप जा) यदि यह बात सत्य है, औरङ्गजेब ! तो इसकी पुष्टि में तुम मेरे हाथ पर अपना हाथ मारो । मेरे और तुम्हारे बीच की सन्धि इसी तरह सम्पन्न होगी ।

इस पर औरङ्गजेब ने उस सिंहासन के किनारे जा और नीचे झुक सुरतान के हाथ पर हाथ मार दिया। उसी समय वहा खड़े असंख्य मनुष्यों ने समस्वर से ध्वनि की,—" कमाल–कमाल ! "

औरङ्गजेब–तुम्हारा वीरत्व और निर्भीकता देख तुम से मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं। तुम्हें अपने सुख सन्तोष के लिये मुझ से जो कहना हो, वह निःसङ्कोच कहो।

सुरतान—यदि यह बात है, तो मेरे राज्य के मेरे जिस अचलगढ पर तुम्हारी सैन्य ने अधिकार कर लिया है, उसे मुझे वापस दो और ऐसी व्यवस्था करो, जिससे मैं और मेरा राज्य पूर्ण स्वाधीनता लाभ करे।

सुरतान की यह प्रार्थना सुन औरङ्गजेब क्षण भर के लिये अवाक् हुआ । यह सन्धि हो जाने पर भी वह अचलगढ़ को अपने हाथ रखना चाहता था । कारण, यह सुदृढ दुर्ग सामयिक दृष्टि से बड़ा ही प्रयोजनीय समझा जाता था । किन्तु अब पश्चात्ताप करने से क्या हो सकता

था। सुरतान अचलगढ भाग चुके थे और सारा दरबारे आम औरङ्गजेब का प्रत्युत्तर सुनने के लिये समुत्सुक था। यह देख औरङ्गजेब ने मानो रुधे हुए कण्ठ से कहा,—"मन्जूर है।"

औरङ्गजेब के मुह से यह बात निकालते ही दरबारे आम मे एक बार फिर,–'कमाल–कमाल' का शोर हुआ।

सुरतान—औरङ्गजेब! अपनी इस उदारता के लिये तुम अपने इस सच्चे मित्र का धन्यवाद ग्रहण करो। भविष्यत् में मेरे साहाय्य का प्रयोजन होने से मुझे तुम अवश्य स्मरण करना। तुमने मेरे प्रति जो उदार व्यवहार किया है, दु ख है, कि इस समय मै इस योग्य नहीं, कि तुम्हें उसका प्रतिफल प्रदान करू। जगदीश से प्रार्थना है, कि वह मेरे ऊपर का तुम्हारे उपकार का यह गुरुभार लाघव करने का कोई पथ उन्मुक्त करें।

औरङ्गजेब-वीर, सुरतान! तुम्हारे मुख से इन कृतज्ञता सूचक बातों के निकलने ही मे, यदि मैने कोई उपकार किया है, तो उसका बदला मैं पा गया। मेरे इस साधारण कार्य्य के बदले मेरा प्रत्युपकार करने के लिये तुम अधिक चिन्ता न करो।

सुरतान—इसमे सन्देह नहीं, औरङ्गजेब! कि तुम्हें इस समय जगदीश ने महाशक्ति सम्पन्न भारत-सम्राट् बनाया है; तुम यदि चाहो, तो नित्य मानव जाति का महोपकार साधन कर सकते हो।

औरङ्गजेब—मेरे और सुरतान के बीच के विवाद के मिटने से मुझे जो आनन्द हुआ है, उस आनन्द के प्रधान कारण नाहर की ओर अभी तक मैं ध्यान दे न सका था।

नाहर ! इस द्वितीय परीक्षा मे भी तुम उत्तीर्ण हुए। तुम्हारे इस कार्य्य से अत्यन्त सन्तुष्ट हो तुम्हें मैं खिलअत दिया चाहता हूं।

नाहर को बड़ी ही बहुमूल्य एक खिलअत दी गई। इसके लिये धन्यवाद देने के उपरान्त औरङ्गजेब से नाहर ने कहा,—" जहांपनाह ! कुछ समय के लिये आप से आज मै विदा ग्रहण करता हू।"

औरङ्गजेब—खैर तो है?

नाहर-आप द्वारा एस द्वितीय परीक्षा मे प्रवृत्त किया जाने की वजह मै अभी तक महाराजा यशवन्तसिंह के पास काबुल पहुच नही सका हूं। इस परीक्षा के मेरी अब निवृत्ति हुई है। मैं यथा सम्भव शीघ्र काबुल की यात्रा किया चाहता हूं। यह यात्रा करने पर कुछ समय तक आपके दर्शन का सौभाग्य मै प्राप्त कर न सकूगा।

औरङ्गजेब—यदि तुम काबुल जाया चाहते हो, तो जाओ; इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं। तुम्हें अपने पास पा महाराज यशवन्तसिंह सन्तुष्ट होगे और उनकी तुष्टि से मुझे परम सन्तोष होगा। महाराज यशवन्तसिंह के पुत्र पृथ्वीसिंह दिल्ली आये हुए हैं। उनसे कह देना, कि मै शीघ्र ही उन्हें अपने पास बुला खिलअत दूंगा।

औरङ्गजेब की यह अन्तिम बात सुन नाहर एकाएक चौंक उठा। उसे दिखाई दिया, कि यह अन्तिम बात कहते समय औरङ्गजेब का मुख गम्भीर हो गया और उसके नेत्रो मे आन्तरिक घृणा की अत्यन्त त्रासजनक एक पैशाचिक ज्योति उत्पन्न हुई।

अपनी बात समाप्त कर औरङ्गजेब ने उस समय का

वह आम दरबार बरखास्त किया । वह दरबार से जाने के लिये अपने सिंहासन पर उठ खड़ा हुआ । दरबार परित्याग करने से पहले उसने सुरतान की ओर देखकर कहा,—" सुरतान ! आशा है, कि तुम अभी कुछ दिनों तक दिल्ली में रहोगे ?"

सुरतान–नहीं, औरङ्गजेब! मैं यथा सम्भव शीघ्र दिल्ली परित्याग कर स्वदेश पहुच तुम्हारा गुण कीर्त्तन करूगा। फिर भी; मुझे दिल्ली मे रख मुझ से तुम यदि किसी प्रकार का साहाय्य लिया चाहते हो, तो मै दिल्ली मे रहूगा । मित्र को साहाय्य देना मेरा परम धर्म्म है ।

औरङ्गजेब नहीं; इस समय तुम्हारे साहाय्य का मुझे प्रयोजन नहीं, होने पर इसकी सूचना तुम्हे मैं दूगा। आज सन्ध्या तक तुम्हारी खिलअत और तुम्हारी राज्य-प्राप्ति की सनद तुम्हारे पास पहुच जायेगी । आशा है, कि स्वदेश लौटने पर तुम मेरी मैत्री को भूल न जाओगे ।

यह कह औरङ्गजेब उस सिंहासन के पीछे बने उस द्वार में चला गया । सिवा सुरतान के उस दरबार मे उपस्थित सभी मनुष्यो ने औरङ्गजेब को सलामें की । उस समय का वह दरबार बरखास्त हुआ ।

जिस जुलूस के साथ सुरतान की सवारी औरङ्गजेब के दरबार गई थी, उसी जुलूस के साथ उनकी सवारी मारवाड़ेश्वर के महल में वापस आई । सुरतान ने उस महल की उस बारहदरी मे प्रवेश करते ही नाहर को छाती से लगा कहा,–"नाहर! सचमुच ही तुम हिन्दू भक्त और देश के परमहितैषी हो । तुम्हारे ही कारण मेरे और औरङ्ग जेब के बीच का चलता हुआ इतने दिनों का यह विवाद

आज बड़ी ही खूबसूरती से समाप्त हो गया । इस जीवन में तुम्हारा यह उपकार मै भूल नहीं सकता । तुमसे मेरा अनुरोध है, कि मेरे स्वराज लौटने के बाद सिरोही आ तुम मेरे पास कुछ समय तक रहो ।”

नाहर—इस समय मै काबुल जाता हूं, महाराज! मै नही जानता, कि वहां से कब तक लौटूंगा । जब तक महाराज यशवन्तसिंह काबुल में रहेंगे, तब तक मै भी वहाँ रहूंगा । फिर भी; आप के और औरङ्गजेब के बीच के इस विवाद के इस तरह मिट जाने पर मुझे भी बड़ा सन्तोष हुआ है । इसके सम्बन्ध में मैने कुछ नही किया; जो कुछ किया जगदीश ने किया । यही औरङ्गजेब है, यही दिल्ली है;- एक दिन महाराज शिवाजी के आने पर उन्हें औरङ्गजेब ने कैद की आज्ञा दी थी । हर्ष का विषय है, कि आज उस उरप्रेरक ने औरङ्गजेब के मन मे ऐसा विचार आने न दिया । इसमे सन्देह नहीं, कि आज औरङ्गजेब यदि ऐसी आज्ञा देता तो अपने साथियों के साथ मै आप पर न्योछावर हो आपके दिल्ली से निकल जाने का पथ प्रशस्त कर देता । किन्तु ऐसा होने पर भी मूल विषय ज्यों का त्यों रहता, सिरोही की अशान्ति जैसी पहले थी, वैसी ही आगे भी रहती । आनन्द का विषय है, कि आनन्दमय ने यह निरानन्द उपस्थित होने न दिया । जगदीश से प्रार्थना है, कि वह आपको सकुशल सिरोही पहुंचा आपके प्रजापालन-कर्त्तव्य मे निरत करे । इस समय मैं आपके साथ सिरोही वापस जा न सकूंगा । मेरे बीस कम्पावन आप के साथ सिरोही जा आपको आपकी उस सैन्य में पहुंचा आयेंगे ।

इसी दिन नाहर ने काबुल और सुरतान ने सिरोही

लौटने की तय्यारी की। इस दिन सन्ध्या से पहले ही सुरतान के नाम औरङ्गजेब की भेजी अत्यन्त बहुमूल्य एक खिलअत और सन्धि होने का फरमान आया। जो लोग यह चीजें ले सुरतान के पास आये, उन्हें सुरतान ने प्रचुर पुरस्कार दे विदा किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल नाहर ने अपने बीस कम्पावत वीरों के साथ पालकी की सवारी से महाराज सुरतानसिंह को सिरोही की ओर विदा किया। इसी जगह यह भी लिख देना उचित है, कि यह ऐतिहासिक घटना होने के बाद सुरतान सकुशल स्वराज्य पहुंचे। यथासमय उन्हों ने अचलगढ़ पर पुनराधिकार किया और सुख शान्ति से अपना राज्य कार्य्य सम्पादन करने लगे। सिरोही ने उस समय जो स्वाधीनता लाभ की, वह अब तक ज्यों की त्यों है। बलदर्पित यह छोटा सा राज्य कभी किसी के सामने अवनत न हुआ।

सिरोहीपति ने मुसलमान सम्राट् के सामने अवनत न होने का जो प्रण किया था, उसे जगदीश ने सिर्फ उन्हीं के जीवनकाल में नहीं; उनके उत्तर पुरुषों के भी शासन-काल मे निर्व्वाह कर दिया।

सिरोहीपति को सिरोही की ओर विदा कर नाहर ने काबुल-यात्रा की तय्यारी की और अल्प समय के उपरान्त बीस कम्पावत सवारों, दश घुड़सवार खिदमतगारों और रसद्वाही आठ ऊंटों के साथ यह यात्रा आरम्भ की। पृथ्वीसिंह अपने महल के द्वार तक नाहर को पहुंचाने आये। यह यात्रा आरम्भ करने से पहले पृथ्वीसिंह से नाहर ने कहा,—" वत्स ! यथा सम्भव शीघ्र दिल्ली का

आज बड़ी ही खूबसूरती से समाप्त हो गया। इह जीवन में तुम्हारा यह उपकार मैं भूल नहीं सकता। तुमसे मेरा अनुरोध है, कि मेरे स्वराज लौटने के बाद सिरोही आ तुम मेरे पास कुछ समय तक रहो।"

नाहर—इस समय मैं काबुल जाता हूं, महाराज! मैं नहीं जानता, कि वहां से कब तक लौटूंगा। जब तक महाराज यशवन्तसिंह काबुल में रहेंगे, तब तक मैं भी वहाँ रहूंगा। फिर भी; आप के और औरङ्गजेब के बीच के इस विवाद के इस तरह मिट जाने पर मुझे भी बड़ा सन्तोष हुआ है। इसके सम्बन्ध मे मैंने कुछ नही किया; जो कुछ किया जगदीश ने किया। यही औरङ्गजेब है, यही दिल्ली है;- एक दिन महाराज शिवाजी के आने पर उन्हें औरङ्गजेब ने कैद की आज्ञा दी थी। हर्ष का विषय है, कि आज उन वरप्रदेक ने औरङ्गजेब के मन मे ऐसा विचार आने न दिया। इसमे सन्देह नही, कि आज औरङ्गजेब यदि ऐसी आज्ञा देता तो अपने साथियों के साथ मैं आप पर न्योछावर हो आपके दिल्ली से निकल जाने का पथ प्रशस्त कर देता। किन्तु ऐसा होने पर भी मूल विषय ज्यों का त्यों रहता; सिरोही की अशान्ति जैसी पहले थी, वैसी ही आगे भी रहती। आनन्द का विषय है, कि आनन्दमय ने यह निरानन्द उपस्थित होने न दिया। जगदीश से प्रार्थना है, कि वह आपको सकुशल सिरोही पहुचा आपके प्रजापालन–कर्त्तव्य मे निरत करें। इस समय मैं आपके साथ सिरोही वापस जा न सकूंगा। मेरे बीस कम्पावत आप के साथ सिरोही जा आपको आपकी उस सैन्य मे पहुचा आयेंगे।

इसी दिन नाहर ने काबुल और सुरतान ने सिरोही

लौटने की तय्यारी की। इस दिन सन्ध्या से पहले ही सुरतान के नाम औरङ्गजेब की भेजी अत्यन्त बहुमूल्य एक खिलअत और सन्धि होने का फरमान आया। जो लोग यह चीजें ले सुरतान के पास आये, उन्हे सुरतान ने प्रचुर पुरस्कार दे विदा किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल नाहर ने अपने बीस कम्पावत वीरो के साथ पालकी की सवारी मे महाराज सुरतानसिंह को सिरोही की ओर विदा किया। इसी जगह यह भी लिख देना उचित है, कि यह ऐतिहासिक घटना होने के बाद सुरतान सकुशल स्वराज्य पहुंच। यथासमय उन्हो ने अचलगढ पर पुनराधिकार किया और सुख शान्ति से अपना राज्य कार्य्य सम्पादन करने लगे। सिरोही ने उस समय जो स्वाधीनता लाभ की, वह अब तक ज्यों की त्यों है। बलदर्पित यह छोटा सा राज्य कभी किसी के सामने अवनत न हुआ।

सिरोहीपति ने मुसलमान सम्राट् के सामने अवनत न होने का जो प्रण किया था, उसे जगदीश ने सिर्फ उन्ही के जीवनकाल में नही; उनके उत्तर पुरुषो के भी शासन-काल मे निर्व्वाह कर दिया।

सिरोहीपति को सिरोही की ओर विदा कर नाहर ने काबुल-यात्रा की तय्यारी की और अल्प समय के उपरान्त बीस कम्पावत सवारो, दश घुड़सवार खिदमतगारो और रसदवाही आठ ऊटो के साथ यह यात्रा आरम्भ की। पृथ्वीसिंह अपने महल के द्वार तक नाहर को पहुचाने आये। यह यात्रा आरम्भ करने से पहले पृथ्वीसिंह से नाहर ने कहा,—" वत्स! यथा सम्भव शीघ्र दिल्ली का

कार्य्य समाप्त कर तुम स्वराज्य लौट जाना। औरङ्गजेब पर तनिक भी विश्वास न करना। वह दुरात्मा पिता की शत्रुता का बदला पुत्र से निःसङ्कोच ले सकता है। एक बार स्वराज्य पहुंचने पर औरङ्गजेब द्वारा बारबार बुलाये जाने पर भी स्वराज्य परित्याग करने का यत्न न करना। खूब सावधानी से शासन-कार्य्य चलाना। प्रजा का सन्तोष विधान और ब्राह्मणो का आदर करना। यह बात कभी न भूलना, कि ब्राह्मण आज पतित हो गये है सही; किन्तु उनका आदर करना हमारा प्रधान कर्त्तव्य है। ब्राह्मणो ही की कृपा से हिन्दू-जाति ने यह दीर्घजीवन लाभ किया है। ब्राह्मणो ने अपने वक्षस्थल का जीवन-रक्त बहा हिन्दू धर्म की रक्षा की है। इस म्लेच्छ श्रेष्ठ औरङ्गजेब के घोर कलुषपूर्ण राजत्व मे महाराष्ट्र देश मे मरहठो और उन के उपयुक्त अधिनायक छत्रपति महाराज शिवाजी का जो अभ्युत्थान हुआ है, वह ब्राह्मणो ही की कृपा से हुआ है। यदि हिन्दू—धर्म्म की रक्षा किया चाहते हो, तो ब्राह्मणो की रक्षा करना। औरङ्गजेब से सविशेष सावधान रहने के सम्बन्ध में एक बार फिर मैं तुम्हारा ध्यान आकृष्ट करता हू। कल तुम्हारे सम्बन्ध मे बाते करते समय औरङ्गजेब की आखो से जो पैशाचिक ज्योति प्रकट हुई है, उसकी याद मेरी छाती हिलाये देती है। परमात्मा ही जाने, कि इस पापिष्ट के मन में क्या है और यह क्या किया चाहता है। जगत् का कोई भी कार्य्य इसके लिये अकार्य्य नहीं। अच्छा; अब तुम जाओ; मैं अपनी यात्रा आरम्भ करूंगा। जगदीश तुम्हारा मङ्गल करे।"

नाहर को प्रणाम कर पृथ्वीसिह लौट गये; सदलबल

नाहर ने अपनी यात्रा आरम्भ की। उस समय पृथ्वीसिंह नाहर के सामने न थे; किन्तु उनका वह सुन्दर मुख नाहर के नेत्रो के सामने था। पृथ्वीसिंह को परित्याग करने मे नाहर को उस समय जैसी मर्म्मव्यथा हुई, इस उपलक्ष्य मे वैसी मर्म्मव्यथा और कभी हुई न थी। इससे नाहर अत्यन्त चिन्तित हुआ। उसके मन में आपही आप यह प्रश्न उत्पन्न हुआ, कि क्या इस जीवन मे मैं पृथ्वीसिंह का यह सुन्दर मुख फिर कभी देख न सकूगा?

द्वादश परिच्छेद।

लाहौर में।

जिस समय नाहर ने अपनी यह यात्रा आरम्भ की, उस समय भारत की हिन्दू-जाति घोर सङ्कट मे थी। बाबर ने जिस राज वंश का बीज बोया था; हुमायू के समय उसकी सृष्टि और अकबर के समय पुष्टि हुई। जहांगीर और शाहेजहां ने इस पुष्टि का सदुपयोग किया; औरङ्गजेब इसका दुरुपयोग करने पर उद्यत हुआ। पिता को बन्धन मे डालनेवाले भाइयो के हत्यारे इस पापिष्ठ सम्राट् की पाप-बुद्धि में यह बात समाई, कि मुगल-वंश के इतने दिनो के राजत्व के पेषण में यह हिन्दू-जाति अतीव हीनबल और जड हो गई है; अब उसे या तो नष्ट कर डालना या यवन बना लेना चाहिये।

जिस समय नाहर की यह यात्रा आरम्भ हुई, उस समय औरङ्गजेब का सौभाग्य-रवि मध्य गगन में पहुंच चुका था। उस समय प्रायः समग्र भारत औरङ्गजेब के शासन-पाश मे आबद्ध हो चुका था। औरङ्गजेब के काश्मीर के सूबेदार ने तिब्बत पर चढाई कर उसके कितने ही

अंश को भारत-साम्राज्य में मिला लिया था। बङ्गाल की खाड़ी के पूर्व्वीय किनारे का चट्टग्राम-अञ्चल बङ्गाल के सूबेदार ने औरङ्गजेब के राज्य में सम्मिलित कर दिया था। इस तरह तिब्बत से ले कुमारी तक और काबुल-कन्धार से ले बङ्गाल की खाड़ी तक औरङ्गजेब के राजत्व का दमामा बज रहा था। औरङ्गजेब का वैदेशिक सम्बन्ध भी बड़ा ही सन्तोषप्रद था। अरब के बहुतेरे सरदारो, मक्के के शरीफ और अबीसीनिया के सुलतान ने अपने दूत दिल्ली भेज औरङ्गजेब से सख्य स्थापित किया था। उस समय फारिस एक प्रबलपराक्रान्त शीया-राज्य था। वह भी औरङ्गजेब की गुण गरिमा स्वीकार कर चुका था। फारिस के उस समय के शाह द्वितीय अब्बास औरङ्गजेब के साथ मैत्री बन्धन में बँध चुके थे। इसीलिये कहा, कि उस समय औरङ्गजेब का सौभाग्य-सूर्य्य मध्याकाश में पहुच चुका था; औरङ्गजेब की शक्ति अपने प्रसार की चरम सीमा तक पहुच चुकी थी।

उसी समय औरङ्गजेब के मन में हिन्दू-पीड़न की कामना बलवती हुई और उसने इसके अनुसार कार्य्य आरम्भ किया। इसके सम्बन्ध में भारत के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिको का एक ही मत है। मिल, एलफिन्सटन, ग्राण्टडफ, ओरमी, इलीट, खफीखाँ, बरनियर इत्यादि—इत्यादि की भाषा मे प्रभेद है; किन्तु मत और विषय में कुछ भी प्रभेद नहीं। सब से पहले औरङ्गजेब ने यह आज्ञा दी, कि भारत-सरकार शमसी वर्ष के बदले कमरी वर्ष के अनुसार कार्य्य करे; कारण, शम्सी वर्ष सूर्य्य के पूजनेवाले काफिरो का है और कमरी वर्ष खुदा के बन्दे मुसलमानों का। इस वर्ष-परिवर्त्तन से विविध असुविधा होने पर बहुतेरे राजकर्म्मचारियो ने

औरङ्गजेब से अपनी यह आज्ञा रद करने के लिये कहा; किन्तु उसने उनकी इस प्रार्थना पर तनिक भी ध्यान न दिया। इसके उपरान्त एक प्रधान मुल्ला नियुक्त कर उसे आज्ञा दी, कि वह सैन्य के साहाय्य से उनके साम्राज्य का मद्यपान, जुआ और मूर्त्तिपूजा-सम्बन्धीय उत्सव बन्द करे। इसी के साथ-साथ यह भी आज्ञा दी, कि हिन्दुओ के बड़े बड़े पर्व्वों पर हिन्दुओं के जो मेले लगते है, उनमें सम्मिलित हो व्यवसाय करनेवाले हिन्दुओ से कर वसूल किया न जाये, कारण, यह कर काफिरों के पर्व्व पर काफिरो से वसूल किया जाता है; इस लिये एक मुसलमान सम्राट् के ग्रहण करने योग्य नही। इस ओर से राजस्व का द्वार बन्द हो जाने से औरङ्गजेब ने देश का भू-कर ज्यो का त्यों रख कर भी महसूल और चुङ्गी का परिमाण बहुत बढ़ा दिया; इस से हिन्दू व्यवसायियों को बड़ा कष्ट हुआ। इस अन्तिम आज्ञा के प्रचारित होने के उपरान्त ही औरङ्गजेब की और एक भयङ्कर आज्ञा प्रचारित हुई। इस आज्ञा का मर्म्म यह था, कि समूचे देश के हिन्दुओं के उत्सव आदि बन्द कर दिये जायँ; सिवा इसके न कही नाच-गाना हो; न कहीं स्वांग निकाले जायँ। इतना ही नहीं; इस आज्ञा का प्रचार करने के साथ-साथ औरङ्गजेब ने अपने दरबार के समस्त गवय्यों, भाड़ो और वेश्याओ को बरतरफ कर दिया। इसी के साथ साथ शाही ज्योतिषियो और कवियो को अपने दरबार से निकाल दिया। असंख्य पेनशन पाने वाले ज्योतिषियो और कवियों की पेनशनें बन्द हो गईं। इतना ही नहीं; अल्पकाल के लिये इस दुर्म्मति ने अपने साम्राज्य में काव्य का रचा जाना भी बन्द कर दिया।

स्वय अपने पत्रों में कविता लिखता था; किन्तु कवियो को कविता करने न देता था। इसके उपरान्त औरङ्गजेब की आज्ञा हुई, कि शाही इतिहास-लेखक उसके शासनकाल का इतिहास न लिखें। मुगल-सम्राटों के शासनकाल में शाही इतिहास लिखा जाता था; औरङ्गजेब के शासनकाल में यह प्रथा बिलकुल उठा दी गई। औरङ्गजेब जानता था, कि उसके कर्म्म इतिहास में स्थान पाने योग्य नहीं; इसी लिये उसने यह आज्ञा दे अपने शासनकाल के इतिहास का लिखा जाना रोक दिया। इसके उपरान्त इस घोर हिन्दू द्रोही सम्राट् ने अपनी मुसलमान प्रजा का कर घटा आधा कर दिया और अपनी हिन्दू-प्रजा का कर ज्यों का त्यों रहने दिया। इस घटना के उपरान्त औरङ्गजेब ने अपने दरबार की सलाम की प्रथा बदल दी और झरोके में बैठ अपनी प्रजा को अपना दर्शन देने का रिवाज रद कर दिया; कहा, कि इन दोनो प्रथाओ से मुसलमान-धर्म्म का तिरस्कार होता है; इसी लिये यह दोनो प्रथायें बन्द की जाती हैं। इसके भी उपरान्त औरङ्गजेब की आज्ञा हुई, कि भविष्यत् में छोटे-बडे सभी तरह के राज्य-कार्य्य मुसलमान-धर्म्म के अनुसार हों और सरकारी नौकरियाँ सिर्फ मुसलमानों को ही दी जायें; काफ़िर और बेईमान हिन्दुओ को दी न जायें। अन्त में इस सम्राट् ने हिन्दुओ पर जिजिया नामक टिकस लगाया। कहा, कि जो हिन्दू मुसलमान-धर्म्म ग्रहण करें, वह इस टिकस से रहित किये जायें और जो हिन्दू हिन्दू रहना चाहें, वह यह टिकस दें। औरङ्गजेब की शक्ति जब अपने प्रसार की चरम सीमा को प्राप्त हुई, तब उसकी ओर से हिन्दुओ के सम्बन्ध में ऐसी ही व्यवस्थायें हुईं।

औरङ्गजेब की इन व्यवस्थाओं के फल से समग्र भारत के हिन्दुओं में घोर आतङ्क उपस्थित हुआ। हिन्दुओं के उत्सव बन्द हो गये; मेले बन्द हो गये; स्नान बन्द हो गये; तीर्थ-यात्रा बन्द हो गई; पूजा बन्द हो गई;—हिन्दू विविध टिकस से उत्पीड़ित हुए। भारत में एक ओर मुसलमान प्रजा अपनी ईद मनाती थी, दूसरी ओर हिन्दू अपनी होली आदि मना न सकते थे। एक ओर मुसलमान हिन्दुओं की अपेक्षा अन्यान्य टिकसों की अपेक्षा आधा टिकस देते थे, दूसरी ओर हिन्दू मुसलमानों की अपेक्षा अन्यान्य टिकस द्विगुण परिमाण से देकर, भी अतिरिक्त जिजिया टिकस देने पर बाध्य किये जाते थे। सिवा इसके औरङ्गजेब का सङ्केत पा देश के मुसलमान अपने पड़ोसी हिन्दुओं पर असह्य अत्याचार करते थे। जिस गोवध को एक दिन अकबर ने बन्द किया था, वह गोवध उस समय मुसलमानों के घर घर होता था। अनेक स्थलों में अनेक हिन्दू मुसलमानों द्वारा बल पूर्वक मुसलमान बनाये जाते थे। इस तरह जो हिन्दू मुसलमान बनाये जाते थे, वह हिन्दुओं द्वारा हिन्दू धर्म्म में लिये न जाते थे। इसके फल से मुसलमानों की संख्या शीघ्र शीघ्र बढ़ने लगी थी। बल पूर्वक मुसलमान बनाये जानेवाले हिन्दू हिन्दू धर्म्म में एक बार फिर वापस आने के लिये बड़ा यत्न करते थे; किन्तु उनके उस यत्न का कोई भी फल होता न था। इसमें सन्देह नहीं, कि आज का 'आर्य्य समाज' यदि औरङ्गजेब के शासन-काल में होता तो आज भारत में मुसलमानों की इतनी संख्या दिखाई न देती। ऐसे बहुतेरे हिन्दुओं ने हिन्दू होने के लिये सिख धर्म्म ग्रहण किया; किन्तु यह धर्म्म

उस समय पञ्जाब में ही आबद्ध था। फलत. औरङ्गजेब की हिन्दू-द्रोह-नीति के फल से उस समय हिन्दुओं का सर्व्वनाश उपस्थित था।

यह देख बहुतेरे हिन्दुओं ने स्थिर किया, कि औरङ्गजेब हमारा राजा है; एक बार उसके पास जा उससे हमें अपनी मर्म्म व्यथा कहना और प्रतिकार प्रार्थना करना चाहिये। यह स्थिर कर देश देश के सहस्र-सहस्र हिन्दू दिल्ली पहुंचे। वहा उन्होने औरङ्गजेब से प्रार्थना कराई, कि हमलोग आपकी सेवा में अपनी मर्म्मव्यथा प्रकट करने के लिये दिल्ली आये हैं; आप हमें अपने सम्मुख उपस्थित होने की अनुमति प्रदान करें। प्रत्युत्तर में औरङ्गजेब ने कहलाया, कि मैं काफिरो की मर्म्मव्यथा सुनना नहीं चाहता; वह मेरे सामने आने का प्रयास न कर अपनी-अपनी जगह लौट जायँ। औरङ्गजेब का यह उत्तर पाकर भी वह हिन्दू-दल हतोत्साह न हुआ। प्रति शुक्रवार को जुलूस के साथ औरङ्गजेब अपने किले से निकल दिल्ली की प्रसिद्ध जामा मसजिद में नमाज पढने जाया करता था। उस हिन्दू-दल ने स्थिर किया कि आगामी शुक्रवार को औरङ्गजेब जब नमाज पढ़ने के लिये निकलेगा, उस समय उसके सम्मुखीन हो उससे हम अपनी मर्म्मव्यथा प्रकट करेंगे; उस समय औरङ्गजेब का मन बड़ा ही पवित्र होगा, अपने पवित्र हृदय से वह हमारे अभाव अभियोग सुन उनके प्रतिकार की व्यवस्था करेगा। बड़ी प्रतीक्षा के उपरान्त वह वाञ्छित दिन उपस्थित हुआ। बहुसंख्यक घोड़ों और हाथियों के साथ औरङ्गजेब की सवारी निकली। यह जैसेही जामा मसजिद के सामने पहुंची, वैसेही वह हिन्दू-दल

औरङ्गजेब के हाथी के सामने आ खड़ा हुआ। उसने उच्चस्वर से पुकार कर कहा,—"हे दिल्लीपते! हे भारत-सम्राट्! हम आपकी प्रजा हैं, हमें शासन-पेषण से बचा हमारी रक्षा का उपाय कीजिये; आप का यह प्रजामण्डल आपकी शरण आया है; आप इसकी पुकार सुनिये।" इस पर औरङ्गजेब की आज्ञा से उसके हाथी के सामने के नकीबों ने उच्चस्वर से कहा,—"मुसल्मान-धर्म में काफिरों के प्रति का जो व्यवहार निर्देश किया गया है; तुम्हारे प्रति वही व्यवहार किया जाता है। इस व्यवहार की आज्ञा दे भारत-सम्राट् ने अपनी शास्त्राज्ञा का पालन किया है; तुम पर निष्ठुरता या अत्याचार नहीं किया है। तुम्हारे द्वारा लाख यत्न होने पर भी भारत-सम्राट् अपने धर्म-पथ से विच्युत हो नहीं सकते। तुम्हें उचित है, कि यह निरर्थक यत्न परित्याग कर भारत सम्राट् के हाथी के सामने से हटो और अपने-अपने घर वापस जाओ।" इसपर हिन्दू दल ने उच्चस्वर से 'त्राहि-त्राहि' की और वह औरङ्गजेब के हाथी के सामने हाथ जोड़ भूमि पर दण्डवत् लेट गया। इसपर औरङ्गजेब की आज्ञा से उसके नकीबों ने एकबार फिर उच्चस्वर से कहा,—"तुम सब भारत-सम्राट् की आज्ञा न मान बहुत बड़ी गुस्ताखी कर रहे हो। भारत-सम्राट् की नमाज का समय उपस्थित है। तुम इसी क्षण यदि भारत-सम्राट् के हाथी के सामने से हट न जाओगे, तो वह तुम्हें कुचलता हुआ आगे निकल जायेगा।" इस बात के प्रत्युत्तर में उस दल के एक हिन्दू ने कहा,—"जो मृत्यु शासन-पेषण से होने को है, वह मृत्यु भारत-सम्राट् के हाथी के पैरों के नीचे और इसी समय प्राप्त हो,

उस समय पञ्जाब में ही आबद्ध था। फलतः औरङ्गजेब की हिन्दू-द्रोह-नीति के फल से उस समय हिन्दुओं का सर्वनाश उपस्थित था।

यह देख बहुतेरे हिन्दुओ ने स्थिर किया, कि औरङ्गजेब हमारा राजा है; एक बार उसके पास जा उससे हमें अपनी मर्म्म व्यथा कहना और प्रतिकार प्रार्थना करना चाहिये। यह स्थिर कर देश देश के सहस्र-सहस्र हिन्दू दिल्ली पहुचे। वहा उन्होने औरङ्गजेब से प्रार्थना कराई, कि हमलोग आपकी सेवा में अपनी मर्म्मव्यथा प्रकट करने के लिये दिल्ली आये हैं; आप हमें अपने सम्मुख उपस्थित होने की अनुमति प्रदान करें। प्रत्युत्तर में औरङ्गजेब ने कहलाया, कि मैं काफिरो की मर्म्मव्यथा सुनना नहीं चाहता; वह मेरे सामने आने का प्रयास न कर अपनी-अपनी जगह लौट जायें। औरङ्गजेब का यह उत्तर पाकर भी वह हिन्दू-दल हतोत्साह न हुआ। प्रति शुक्रवार को जुलूस के साथ औरङ्गजेब अपने किले से निकल दिल्ली की प्रसिद्ध जामा मसजिद में नमाज पढने जाया करता था। उस हिन्दू-दल ने स्थिर किया कि आगामी शुक्रवार को औरङ्गजेब जब नमाज पढने के लिये निकलेगा, उस समय उसके सम्मुखीन हो उससे हम अपनी मर्म्मव्यथा प्रकट करेंगे; उस समय औरङ्गजेब का मन बड़ा ही पवित्र होगा; अपने पवित्र हृदय से वह हमारे अभाव अभियोग सुन उनके प्रतिकार की व्यवस्था करेगा। बड़ी प्रतीक्षा के उपरान्त वह काङ्क्षित दिन उपस्थित हुआ। बहुसंख्यक घोड़ों और हाथियो के साथ औरङ्गजेब की सवारी निकली। वह जैसेही जामा मसजिद के सामने पहुंची, वैसेही वह हिन्दू-दल

औरङ्गजेब के हाथी के सामने आ खड़ा हुआ। उसने उच्चस्वर से पुकार कर कहा,—"हे दिल्लीपते! हे भारत-सम्राट्! हम आपकी प्रजा हैं, हमें शासन-पेषण से बचा हमारी रक्षा का उपाय कीजिये; आप का यह प्रजामण्डल आपकी शरण आया है; आप इसकी पुकार सुनिये।" इस पर औरङ्गजेब की आज्ञा से उसके हाथी के सामने के नकीबों ने उच्चस्वर से कहा,—"मुसल्मान-धर्म्म में काफिरों के प्रति का जो व्यवहार निर्द्दिष्ट किया गया है; तुम्हारे प्रति वही व्यवहार किया जाता है। इस व्यवहार की आज्ञा दे भारत-सम्राट् ने अपनी शास्त्राज्ञा का पालन किया है; तुम पर निष्ठुरता या अत्याचार नहीं किया है। तुम्हारे द्वारा लाख यत्न होने पर भी भारत-सम्राट् अपने धर्म्म-पथ से विच्युत हो नहीं सकते। तुम्हें उचित है, कि यह निरर्थक यत्न परित्याग कर भारत सम्राट् के हाथी के सामने से हटो और अपने-अपने घर वापस जाओ।" इसपर हिन्दू दल ने उच्चस्वर से 'त्राहि-त्राहि' की और वह औरङ्गजेब के हाथी के सामने हाथ जोड़ भूमि पर दण्डवत् लेट गया। इसपर औरङ्गजेब की आज्ञा से उसके नकीबों ने एकबार फिर उच्चस्वर से कहा,—"तुम सब भारत-सम्राट् की आज्ञा न मान बहुत बड़ी गुस्ताखी कर रहे हो। भारत-सम्राट् की नमाज का समय उपस्थित है। तुम इसी क्षण यदि भारत-सम्राट् के हाथी के सामने से हट न जाओगे, तो वह तुम्हें कुचलता हुआ आगे निकल जायेगा।" इस बात के प्रत्युत्तर में उस दल के एक हिन्दू ने कहा,—"जो मृत्यु शासन-पेषण से होने को है, वह मृत्यु भारत-सम्राट् के हाथी के पैरों के नीचे और इसी समय प्राप्त हो,

तो अच्छा है।" इस बात के समाप्त होते ही औरङ्गजेब की आज्ञा से उसका विशाल मातङ्ग बड़े वेग से आगे बढ़ाया गया। दर्शकों में हाहाकार रव उत्थित हुआ। औरङ्गजेब के हाथी के सामने पड़े हिन्दू-दल ने भीषण चीत्कारध्वनि की। औरङ्गजेब का वह हाथी असंख्य हिन्दुओं को कुचलता आगे निकल गया। जिन हिन्दुओं की देह पर उस हाथी के पैर पड़े, वह कुचले जाकर मास-पिण्ड में परिणत हो गये। वह पथ मास, त्वचा, रक्त, अस्थि, मज्जा से परिपूर्ण हुआ। क्षण भर में असख्य हिन्दुओं की हत्या हो गई। उस हिन्दू-दल के जो हिन्दू बच गये, वह उन्मत्त की तरह भगवान् के नाम का चीत्कार करते हुए उन घटना स्थल से प्राण ले भागे। वहाँ एकत्र दर्शक-मण्डली भी उस स्थान के उस भीषण दृश्य को देख न सकी; उच्चस्वर से कोलाहल करती वहाँ से भागी। उस हिन्दू-दल की प्रार्थना का औरङ्गजेब ने ऐसा ही प्रत्युत्तर दिया। हिन्दू-दल ने रक्षा की प्रार्थना की; औरङ्गजेब ने उसके मथित होने का आयोजन किया। यह बात सुन विचलित हुए श्रीमन्? तुम भी विकल हुई हो, श्रीमति? किन्तु तुम्हारे विचलित या विकल होने के लिये हमने यह बीभत्स और नीरस दृश्य उपस्थित नही किया है। प्रसङ्गवश यह ऐतिहासिक घटना तुम्हारे सामने रख दी है। आज भी इतिहास—पृष्ठ मे यह पैशाचिक-काण्ड लाल अक्षरो मे लिखा मौजूद है।

फलत. जिस समय सदल बल नाहर ने दिल्ली से काबुल की यात्रा की, उस समय भारतीय हिन्दू औरङ्गजेब के शासन की चक्की मे इसी तरह पीसे जाते थे। कौन बता सकता है, कि जिस दिन उन निरीह निरपराध हिन्दुओ को

अपने हाथी के पैरों से कुचलवा जामा मसजिद में जा औरङ्गजेब ने जब अपने खुदा की नमाज अदा की होगी, तो उसकी उस नमाज से उसका खुदा कितना सन्तुष्ट हुआ होगा? फिर; यही कौन बता सकता है, कि उस दिन औरङ्गजेब के उस हाथी के पैरों के नीचे घिसते हुए हिन्दुओं ने जब मृत्यु—यन्त्रणा से अधीर हो भगवान् को स्मरण किया होगा, तब उनकी इस पुकार से सर्व्वरक्षक सर्व्वप्राणि हितव्रत परमात्मा का आसन कितना विचलित हुआ होगा? इन प्रश्नों का उत्तर और कोई नहीं,-भारत इतिहास द्वारा लिया जा सकता है। इस उत्तर का उल्लेख वर्त्तमान आख्यायिका में अप्रासङ्गिक है। इस स्थल में हमें केवल इतना ही कहना और दिखाना है, कि उस समय हिन्दुओं की क्या दशा थी। जो हिन्दू अकबर, जहांगीर और शाहेजहां के हाथों पाले गये थे, वह हिन्दू औरङ्गजेब के हाथों किस तरह नष्ट-भ्रष्ट किये जा रहे थे। इसी के सम्बन्ध में इतना और कह देना असङ्गत न होगा, कि इस शासन-पेषण के फल से हिन्दुओं के मुंह से उस समय जो तप्तश्वास निकल रहे थे, वह आकाश में पहुंच मुगल-राजवंश के लिये प्रलय के मेघ सृष्ट कर रहे थे। जो समझदार उस मेघ को देखते, वह उसकी वृष्टि का परिणाम सोच अत्यन्त चिन्तित होते थे। भविष्यद्दर्शियों को उसी समय भविष्यत् का हाल दिखाई देने लगा था। दक्षिण में महाराष्ट्र; पञ्जाब में सिख-जाति की सृष्टि पुष्टि हो रही थी। इन दोनों जातियों का क्रमोन्नत तेज देख कभी-कभी औरङ्गजेब की भी छाती दहल जाया करती थी।

हिन्दुओं के शासन-पेषण की असंख्य घटनायें देखता और उनसे अत्यन्त मर्म्माहत होता सदल बल नाहर दिल्ली

से चल पञ्जाब—राजधानी लाहोर पहुंचा और वहाँ एक धर्म्मशाला में उसने अपना डेरा डाला। जिस दिन नाहर लाहोर पहुंचा, उस दिन सन्ध्या समय वह अकेला नगर-परिभ्रमण के लिये निकला। सान्ध्य अन्धकार फैलने तक उसने उस नगर के कितने ही बाजारों और गलियों की सैर की। सान्ध्य अन्धकार फैलने और प्रदीप का प्रकाश प्रकट होने पर नाहर एक राह से अपने डेरे की ओर चला। इस राह से अभी वह कुछ ही दूर अग्रसर हुआ था; ऐसे समय उसे अपने समीप के एक मकान की दूसरी मञ्जिल से सुनाई दिया,—"काजी साहब! मुझे तुम चाहो जितनी यन्त्रणा दो; चाहो जितना सताओ; मैं अपने मृत पिता की आज्ञा कभी न टालूंगा।" इस पर इस बात के प्रत्युत्तर में किसी ने गर्ज्जन कर कहा,—"मैं तुझे जिलाया चाहता था; किन्तु तेरे कपाल में मृत्यु लिखी है। मेरी इच्छा पूर्ण न होगी; तेरे कपाल का लिखा अक्षरशः सत्य होगा। चोरी के अपराध से कल तेरी मृत्यु होगी। इसी अपराध के अपराधी तेरे पिता की जीवितावस्था में खाल उतरवा ली गई थी; तेरा अङ्ग-प्रत्यङ्ग काटा जायेगा। पहले तेरे हाथों और पैरों की उँगलियां काटी जायेंगी; इसके उपरान्त तेरे हाथ पैर, इसके भी उपरान्त क्रम-क्रम से अन्यान्य अङ्ग-प्रत्यङ्ग काटे जायेंगे। सब के अन्त में तेरा शिर काटा जायेगा।" इस पर जिस स्वर द्वारा वह पहली बात प्रकट हुई थी, उसी स्वर द्वारा यह बात निकली,—"काजी साहब! तुम जानते हो, कि मेरे पिता भी चोर न थे; मैं भी चोर नहीं; मेरी रूपवती ब्राह्मणी बहन के लिये तुमने मेरे पिता की हत्या की और अब मेरी हत्या करने पर उद्यत हुए हो।

यदि मेरे भाग्य में मृत्यु ही लिखी है। तो मैं उसका आलिङ्गन करने को तय्यार हूं। काजी साहब! तुम देखोगे, कि अपनी बहन की मर्य्यादा-रक्षा के लिये उसका भाई किस तरह आत्मबलि देता है।" इस पर उस गर्ज्जनकारी मनुष्य ने एक बार फिर कहा,—" इस बदबख्त को जिस जगह से ले आये हो, उस जगह वापस ले जाओ। यह यों न मानेगा। भीषण मृत्यु ही इसका उपयुक्त दण्ड है।"

इसके उपरान्त नाहर को लोहे की जञ्जीरों की झनझनाहट और बहुतेरे लोगों के पद-शब्द सुनाई दिये। नाहर कुछ देर तक अपनी जगह खड़ा रहा। वह समझ गया, कि किसी हिन्दू-परिवार पर घोर अत्याचार हो रहा है; यह समझ इस अत्याचार का सविशेष हाल जानने की उत्कण्ठा वह सवरण कर न सका। नाहर अल्प समय तक उस जगह खड़ा था; ऐसे समय उसकी बगल के एक बड़े मकान का द्वार खुला और उससे छ सशस्त्र सिपाहियों के पहरे में एक हिन्दू नवयुवक कैदी निकला। इसका लम्बा कद झुक गया था; इसका गौर वर्ण काला हो गया था, इसकी आँखें भीतर घुस गई थीं। भीषण मर्म्म व्यथा से इसकी ऐसी ही दशा हो गई थी। इसके पैरों, हाथों और गले में जञ्जीर पड़ी थी। इसकी कमर से भी एक जञ्जीर बधी थी, जिसके दोनों सिरे उसके पीछे के एक सिपाही के हाथ थे।

इस कैदी को ले वह सिपाही एक ओर चले। नाहर उनके पीछे पीछे चला। वह राह जन शून्य और बहुत कुछ अन्धकारमयी थी। उस राह में कोई दो सौ कदम अग्रसर होने के उपरान्त वह सिपाही एक बड़े फाटक के सामने खड़े हो गये। उस फाटक पर दो सिपाहियों का

पहरा था। शीघ्र ही वह फाटक खुला। अपने उस कैदी के साथ वह सिपाही उस फाटक में चले गये। वह फाटक एकवार फिर बन्द हो गया।

कुछ देरतक उस फाटक के समीप ठहर अन्त में नाहर आगे बढ़ उस फाटक के सामने टहलते हुए उन दोनो सिपाहियो के समीप पहुंचा और उनसे उसने अत्यन्त शिष्टभाव से कहा,—"क्यो भाइयो! यह क्या स्थान है?"

एक सिपाही—काजी साहब का कैदखाना।

नाहर—कौन काजी साहब?

दूसरा सि०-बडा ही बेवकूफ़ मालूम होता है। लाहोर शहर के काजी; और कौन काजी?

नाहर-भाई! नाराज न हो। मैं इस शहर में बिलकुल अजनबी हू। आज ही यहा आया हूं। शहर की सैर करता हुआ इस ओर आ निकला हू। तुम्हे देख मेरे मन में बडा कौतुक हुआ है; इसी लिये यहा चला आया हूं। क्यो भाई! काजी साहब के इस कैदखाने मे कैसे कैदी रखे जाते है।

एक सि०-असल में यह कैदखाना नहीं; हवालात है। बडा कैदखाना दूसरी जगह है। इस जगह वह असामी रखे जाते हैं, जिनका विचार चलता रहता है। जिनका विचार समाप्त होता है, वह निरपराध प्रमाणित होनेपर छोड़ दिये जाते है; अपराधी प्रमाणित होनेपर दण्डित हो बडे कैदखाने की ओर भेजे जाते है।

नाहर-इस समय इस कैदखाने में कोई कैदी है या नहीं?

दूसरा सि०-कितने ही कैदी हैं।

नाहर-क्या किसी कैदी को मैं देख सकता हूं?

दूसरा सि०-(उच्च स्वर से) क्या ?

नाहर-(चार रुपये उस सिपाही के हाथ दे) भाई साहब ! यह तुम दोनो के पान खाने के लिये है। अब कोई ऐसी तदबीर बताओ, जिससे मै किसी कैदी को देख लूँ। किसी कैदी को कैदखाने में देखने के लिये मै बड़ाही अधीर और उत्सुक हुआ हूं।

दूसरा सिपाही-(दो रुपये अपनी जेब में रख और दो अपने साथी को दे) तुम बड़े ही गँवार जान पड़ते हो, क्या तुमने अभीतक कोई कैदी नहीं देखा है ? अच्छा; ठहरो,- मैं तुम्हें कैदी दिखाने का सामान करता हूं; पर यह याद रखना, कि इस कैदखाने का जो दारोगा तुम्हें कैदी दिखा-येगा; उसका भी मुंह मीठा करना होगा।

यह कह वह सिपाही उस कैदखाने का फाटक खुलवा भीतर गया और अल्प समय के उपरान्त एक स्थूलकाय मुसलमान के साथ वापस लौट नाहर के सामने आ खड़ा हुआ। उस स्थूलकाय मुसलमान ने नाहर को शिर से पैर तक देखकर कहा,-"क्या तुम्हीं कैदी देखा चाहते हो ?"

नाहर—हाँ। क्या तुम इस कैदखाने के दारोगा हो ?

मुसलमान—हाँ। मेरे साथ आओ; तुम्हें मैं कैदी दि-खाता हूं। इस समय अन्धकार फैल रहा है; अब से कुछ समय पहले आते, तो कैदखाने की अच्छी तरह सैर कर सकते।

नाहर—(खुशामद से) दारोगा साहब ! आपकी इस दया को मै जन्मभर न भूलूंगा। (दारोगा के हाथ दो रुपये देकर) इतना ही कैदी देखने के बाद दूंगा।

दारोगा के साथ नाहर ने उस कैदखाने में प्रवेश कर देखा, कि वह एक मञ्जिला मकान था। उसके मध्य में बहुत

पहरा था। शीघ्र ही वह फाटक खुला। अपने उस कैदी के साथ वह सिपाही उस फाटक मे चले गये। वह फाटक एकबार फिर बन्द हो गया।

कुछ देरतक उस फाटक के समीप ठहर अन्त मे नाहर आगे बढ उस फाटक के सामने टहलते हुए उन दोनो सिपाहियो के समीप पहुंचा और उनसे उसने अत्यन्त शिष्टभाव से कहा,—"क्यो भाइयो! यह क्या स्थान है?"

एक सिपाही—काजी साहब का कैदखाना।

नाहर—कौन काजी साहब?

दूसरा सि०-बडा ही बेवकूफ मालूम होता है। लाहोर शहर के काजी; और कौन काजी?

नाहर-भाई! नाराज न हो। मैं इस शहर में बिलकुल अजनबी हू। आज ही यहा आया हू। शहर की सैर करता हुआ इस ओर आ निकला हू। तुम्हे देख मेरे मन में बडा कौतुक हुआ है; इसी लिये यहा चला आया हू। क्यो भाई! काजी साहब के इस कैदखाने मे कैसे कैदी रखे जाते है।

एक सि०-असल में यह कैदखाना नहीं; हवालात है। बडा कैदखाना दूसरी जगह है। इस जगह वह असामी रखे जाते हैं, जिनका विचार चलता रहता है। जिनका विचार समाप्त होता है, वह निरपराध प्रमाणित होनेपर छोड़ दिये जाते है; अपराधी प्रमाणित होनेपर दण्डित हो बडे कैदखाने की ओर भेजे जाते है।

नाहर-इस समय इस कैदखाने मे कोई कैदी है या नही?

दूसरा सि०-कितने ही कैदी हैं।

नाहर-क्या किसी कैदी को मैं देख सकता हू?

पूर्वपरिचित अर्जुन को अपने पास बुला कहा,-"अर्जुन-सिंह आज फिर एक नारके का काम है।"

अर्जुन—आप आज्ञा दीजिये, अन्नदाताजी! वचे मैं पालन करने के लिये तय्यार हूं। क्या यह काम सिरोहीपति की छावनी में घुसने के काम से अधिक टेढ़ा है?

नाहर—बात यह है, अर्जुन! कि मैं प्राणदण्ड की आज्ञा पाये हुए एक ब्राह्मण कैदी को कैदखाने से निकाल इस नगर से भगा दिया चाहता हूं।

अर्जुन—वह कैदी कौन है?

नाहर—मैं नहीं जानता, कि कौन है, किन्तु यदि मेरा अनुमान सत्य है, तो उसपर मुसलमानों का घोर अत्याचार हो रहा है। इस अत्याचार से उसे मैं बचाया चाहता हूं।

अर्जुन-आपका उद्देश्य बड़ा ही साधु है। इस विषय में मुझसे क्या सेवा ली जायेगी?

नाहर-मेरा घोड़ा तय्यार होने को कह तुम अपना भी घोड़ा तय्यार कर लो और सशस्त्र हो मेरे साथ चलो।

"जो आज्ञा" कह अर्जुन वहां से चला गया। घोड़े तय्यार हुए। नाहर और अर्जुन दोनों घोड़े की सवारी से उस कैदखाने की ओर चले। उसके समीप पहुंच एक गली से निकल दोनों ने अपने को उस कैदखाने के पीछे पाया।

उस कैदी के कथनानुसार सचमुच ही उस स्थान में बहुत बड़ा पक्का एक तालाब था। उसके किनारे चारों ओर कोई तीस या चालीस गज असमतल भूमि थी, जिसमें बहुसंख्यक बड़े बड़े वृक्ष लगे थे। इस भूमि के तीन पार्श्व में मकान थे, चौथे पार्श्व में उस कैदखाने के पश्चाद्भाग की कोई सोलह हाथ ऊँची एक दीवार थी। इस दीवार के

सोना चाहता है; इसे सोने देना चाहिये। यहा यह इसकी अन्तिम रात्रि है। इस रात्रि में इसे विश्राम करने का सुअवसर देना चाहिये।"

वह दारोगा और नाहर दोनो इस कोठरी के द्वार से हट कैदखाने के फाटक की ओर चले। राह में नाहर ने उस दारोगा के पाँच रुपये दे कहा,—"दारोगा साहब! तुम्हारा मुझ पर बड़ा उपकार हुआ। तुम मुझ पर कृपा न करते, ता मै कैदखाना और कैदी देखने की अपनी इच्छा पूर्ण कर न सकता। अब मै और किसी कैदी को न देख अपने डेरे वापस जाऊँगा।"

दारोगा—क्या कल तुम इस कैदी के मारे जाने का तमाशा देखा चाहते हो?

नाहर—कल की बात कल के साथ है। बात यह है, कि मै प्राय ही दिन सात या आठ बजे सोकर उठा करता हू। फिर भी; मै यत्न करूँगा, कि इस कैदी की मृत्यु का तमाशा देखू। इसके लिये कल तुम्हे मैं फिर कष्ट दूं, तो दे सकता हूं।

दारोगा—तुम से मिल मैं बड़ा ही प्रसन्न हुआ हू। मेरे लायक जो काम हो, उसे तुमें नि सङ्कोच मुझसे कहना।

नाहर—अवश्य कहूंगा; आपसे न कहूंगा, तो और किससे कहूंगा। अच्छा; दारोगा साहब! सलाम!—मुझे भूल न जाना।

यह कह नाहर उस कैदखाने के उस फाटक से निकला और उन दोनों सन्तरियों से दो-दो बातें कर उस राह से निकल यथासम्भव शीघ्र अपने डेरे पहुंचा। वहाँ भोजनादि से निवृत्त हो नाहर ने अपने विश्वस्त सरदार हमारे

में खोंच उस खिड़की में प्रतिष्ठित कर दिया। ऐसे समय उस कोठरी के द्वार पर प्रकाश प्रकट हुआ और किसी मनुष्य का पद-शब्द सुनाई दिया।

युवक–सर्वनाश उपस्थित है।

नाहर–क्यों?

युवक–पहरा बदला गया है। कैदखाने के भीतर का नया सन्तरी प्रकाश ले मुझे देखने के लिये मेरी कोठरी की ओर आ रहा है।

नाहर–हूं, यदि यह बात है, तो बात कुछ टेढ़ी हुआ चाहती है। अच्छा तुम सावधान हो; मैं तुम्हें कैदखाने के बाहर उतारता हूं।

यह कह कुएं में उतारे जानेवाले जल पात्र की तरह उस युवक को नाहर ने उस खिड़की से उस जगह उतार दिया, जिस जगह अर्ज्जुन को पीठ पर लिये वह घोड़ा खड़ा था। इस कार्य्य से निवृत्त हो अर्ज्जुन से घोड़ा हटवा उस घोड़े खड़े होनेकी जगह नाहर उस खिड़की से कूद पड़ा। इससे बड़ा धमाका हुआ।

उस युवक के समीप जा नाहर ने अपने पास की बहुत बड़ी एक कैंची से उस युवक के गले, कमर और पैर में बँधी जञ्जीरें काट दीं। जिन कड़ों से यह जञ्जीरें बँधी थीं, उनके काटने का समय न था। नाहर अपने घोड़े पर सवार हुआ; उस युवक के साथ अर्ज्जुन अपने घोड़े पर बैठा। यह दोनों घोड़े उस स्थान से चलाये जाने को थे; ऐसे समय उस कोठरी के भीतर से घोर कोलाहल ध्वनि सुनाई दी,—"दौड़ो-दौड़ो कैदी भाग गया। खिड़की से भागा है। उसके खिड़की से कूदने की ध्वनि मैंने सुनी

खिडकी की कोठरी में था ।- अपने प्रश्न का प्रत्युत्तर पाते ही नाहर उस खिडकी मे लगे लोहे के डण्डो को पकड अर्ज्जुन के कन्धे से उछल उस खिड़की मे जा बैठा । वह खिडकी बहुत चौडी थी; उस चहारदीवारी की मोटी दीवार की पूरी चौडाई में बनाई गई थी; उसकी चौडाई के मध्यभाग मे वह लोहे के डण्डे लगे थे; उन डण्डों के भीतर और बाहर दोनो ओर एक एक मनुष्य के बैठने योग्य स्थान था । ऐसे ही इस स्थान में बैठ नाहर ने अपने असाधारण भुजबल के साहाय्य से उस खिडकी में लगे उन लोहे के डण्डो मे तीन डण्डे टेढ़े कर निकाल लिये । इनके निकल जाने से अवशेष डण्डो के बीच एक मनुष्य के निकल जाने योग्य पथ प्रस्तुत हुआ ।

नाहर-(अत्यन्त मृदु स्वर मे) क्या तुम तय्यार हो ?

स्वर–मै सन्ध्या ही से तय्यार हूं ।

नाहर–अच्छा; इस खिडकी से मै एक डोरी लटकाता हूं । इसका छोर अपनी कमर से बांध और इस रस्सी को दोनो हाथो से पकड तुम खड़े हो जाओ; तुम्हें मैं ऊपर खीच लूगा ।

नाहर ने एक रेशमी डोरी उस खिडकी से उस कोठरी में लटका दी । जल मे डूबता हुआ मनुष्य किनारा पा जिस तरह आनन्दित होता है, भीषण प्राण-दण्ड से दण्डित वह युवक उस रस्सी को पा उसी तरह आनन्दित हुआ । नाहर के आदेशानुसार वह उस रस्सी का छोर अपनी कमर से बांध और उस रस्सी को पकड खडा हो गया । मनुष्य जिस तरह कुए से जलपूर्ण पात्र खीचता है; नाहर ने उसीतरह उस बन्दी युवक को उस कैदखाने की कोठरी

से खींच उस खिडकी मे प्रतिष्ठित कर दिया। ऐसे समय उस कोठरी के द्वार पर प्रकाश प्रकट हुआ और किसी मनुष्य का पद-शब्द सुनाई दिया।

युवक—सर्व्वनाश उपस्थित है।

नाहर—क्यो?

युवक—पहरा बदला गया है। कैदखाने के भीतर का नया सन्तरी प्रकाश ले मुझे देखने के लिये मेरी कोठरी की ओर आ रहा है।

नाहर—हूं, यदि यह बात है, तो बात कुछ टेढी हुआ चाहती है। अच्छा तुम सावधान हो; मै तुम्हें कैदखान के बाहर उतारता हू।

यह कह कुए में उतारे जानेवाले जल पात्र की तरह उस युवक को नाहर ने उस खिडकी से उस जगह उतार दिया, जिस जगह अर्ज्जुन को पीठ पर लिये वह घोडा खडा था। इस कार्य्य से निवृत्त हो अर्ज्जुन से घोडा हटवा उस घोडे खडे होनेकी जगह नाहर उस खिडकी से कूद पडा। इससे बडा धमाका हुआ।

उस युवक के समीप जा नाहर ने अपने पास की बहुत बडी एक कैंची से उस युवक के गले, कमर और पैर में बँधी जञ्जीरें काट दीं। जिन कडो से यह जञ्जीरें बँधी थीं, उनके काटने का समय न था। नाहर अपने घोडे पर सवार हुआ; उस युवक के साथ अर्ज्जुन अपने घोडे पर बैठा। यह दोनो घोडे उस स्थान से चलाये जाने को थे, ऐसे समय उस कोठरी के भीतर से घोर कोलाहल ध्वनि सुनाई दी,—"दौडो-दौडो कैदी भाग गया। खिडकी से भागा है। उसके खिडकी से कूदने की ध्वनि मैंने सुनी

है।" इसके उपरान्त ही समूचे कैदखाने में कोलाहल मच गया। नाहर के परिचित उस कैदखाने के उस दारोगा ने उच्चस्वर से कहा,—"कैदखाने के पीछे जाओ; दौड़ो; कैदी को पकड़ो; काजी साहब को खबर दो; दौड़ो; देर न करो।" उस सङ्कटावस्था में रहने पर भी उस दारोगा की यह बातें सुन नाहर मुस्कुराया।

युवक—अब यथासम्भव शीघ्र भागना चाहिये।

नाहर—किस राह से भागना चाहिये?

युवक—इस स्थान से बाहर निकलने की दो राहें हैं। एक यह बायें है। यह राह इस कैदखाने की बगल की दीवार से होती हुई इस कैदखाने के फाटक के सामने की राह से जा मिलती है। यह राह ठीक नहीं। यह दूसरी राह घूमती हुई आगे बढ़ उस दुरात्मा काजी के द्वार के समीप उसके सामने की राह में मिल जाती है।

नाहर—ऐसी दशा मे यह अन्तिम राह ही हमे ग्रहण करना चाहिये। दोनो ही राहे विपज्जनक हैं; प्रथमोक्त की अपेक्षा शेषोक्त राह आशाप्रद है।

उस दूसरी राह से वह दोनो घोड़े फुरती से दौड़ाये गये। अल्प समय मे यह राह उस राह में जा मिली, जिस में काजी का वह द्वार था। वह दोनो घोड़े जैसे ही उस द्वार के समीप पहुंचे, वैसेही वह एकाएक खुल गया और उस से कितने सशस्त्र मनुष्य उस राह में निकल आये। इनमे कितने ही मनुष्यो के हाथ मशालें थी। इन मनुष्यो में एक मनुष्य सब से आगे था। इसके हाथ मे मशाल की जगह एक तलवार थी। इसे देखते ही उस युवक का सर्वाङ्ग भय से काप उठा। उसने अत्यन्त मृदुस्वर में अर्जुन

और नाहर से कहा,—"जो मनुष्य सब से आगे है, वही वह दुष्ट काजी है। अब हमलोगों का बचना कठिन है।"

जिस तरह नाहर आदि के सामने उस द्वार से वह मनुष्य निकल आये थे; उसी तरह उन मनुष्यों के सामने नाहर आदि पहुच गये थे। नाहर आदि ने जिस तरह उन मनुष्यों को देखा; उन मनुष्यों ने मशाल के प्रकाश में उसी तरह नाहर आदि को देखा। उस युवक का भय सत्य निकला। उस युवक को देखते ही काजी ने पहचान लिया और उसी समय अपनी तलवार म्यान से निकाल उच्चस्वर से कहा,—"दौड़ो—पकड़ो—यह कुत्ता काफिर अपने बदमाश साथियों के साथ मेरी आखों मे धूलि झोंक निकल जाया चाहता है।"

यह कह काजी ने अपनी जगह से आगे बढ़ उस अभागे युवक पर अपनी हाथ की तलवार का एक पूरा वार किया। उस युवक के पीछे बैठे अर्ज्जुन ने क्षणमात्र में अपनी तलवार म्यान से निकाल उस पर काजी की तलवार रोकी। तलवार पर तलवार पड़ने का झन्नाटा हुआ। ऐसे समय एक घटना हुई। अर्ज्जुन की कमर में एक लम्बा छुरा लगा था। उस युवक ने उस छुरे को एका-एक निकाल अपने समीप आये हुए काजी की गरदन में समूचा घुसेड़ दिया। काजी अर्द्धस्फुट स्वर से चीत्कार करता और अपने गले के उस जखम तथा मुख से रक्तपात करता उस राह में गिर तड़पने लगा। उस युवक ने काजी की देह पर अपना घोड़ा दौड़ा दिया।

यह समूची घटना कुछ क्षण में हो गई। इसे देख काजी के साथी उन दोनों चोरों पर टूटे; वह दोनो

घोड़े अपने सवारो का सङ्केत पा वायु—गति से आगे बढ़े। काज़ी के उन साथियो मे एक की भी तलवार उन दोनो घोड़ो या उनके सवारों को लगने न पाई। दोनों घोड़े अपने सवारो को ले वायु-वेग से उड़े। काज़ी के वह साथी निरुपाय हो उच्चस्वर मे चिल्लाने लगे,— "काज़ी साहब का खून हो गया; खूनी भागे जाते हैं; इनके पीछे सवार दौड़ाओ; गश्ती सवारो को पुकारो।"

यह शोर होते ही घटनास्थल के समीप के मकानो में कोलाहल होने लगा। मनुष्य इधर से उधर दौड़ने लगे। उस युवक के साथ नाहर और अर्ज्जुन यह दोनो किसी बात की कोई परवा न कर अपने घोड़े बढ़ाते उस स्थान से दूर भागे। कोई आध घंटे तक उस नगर की कितनी ही शाहराहो से अपने घोड़े भगा अन्त मे उन्हें नाहर और अर्ज्जुन ने धीमा किया।

नाहर—हमलोग घटनास्थल से कोई एक कोस दूर निकल आये है और चारो ओर की निस्तब्धता से प्रकट होता है, कि इस समय काज़ी के सिपाही या गश्ती सवार हमारा पीछा कर नहीं रहे हैं।

युवक—जबतक हमलोग किसी रक्षित स्थान में पहुच न जायँ, तबतक अपने को हमें रक्षित समझना न चाहिये।

नाहर—काज़ी से तुम ने अपने पिता के खून का बदला ले लिया।

युवक—इसमें सन्देह नहीं, कि इस दुष्ट का वध कर मैं पैतृक ऋण से उऋण हुआ हू। स्वय जगदीश ने उसके दण्डित होने का आयोजन कर दिया। वह यदि मेरे समीप आ मुझ पर तलवार न चलाता, तो मैं उसका

वध कर न सकता।

नाहर—इस दुष्ट के मारे जाने से बात और भी टेढ़ी हो गई है। हमलोग इस नगर से सम्पूर्ण अपरिचित है; हम नहीं जानते, कि हमे तुम्हारी रक्षा का क्या उपाय करना चाहिये।

युवक—आप लोग इस नगर में कहाँ ठहरे हुए हैं?

नाहर—एक सराय में।

युवक—ऐसी दशा मे आप लोगो के साथ मै उस सराय मे रह नहीं सकता। प्रात काल होते ही वहा मैं पकड़ लिया जाऊँगा।

नाहर—क्या तुम्हारी समझ में तुम्हारे छिपने का कोई स्थान नहीं?

युवक—है क्यों नही? मैं इसी नगर का अधिवासी हूं; इस नगर के कितने ही अधिवासी मेरे विश्वस्त मित्र है; मैं उनके घर जा छिप सकता हू। फिर भी; मैं अपने किसी मित्र के पास न जा अपने परलोकगत पिता के मित्र के घर जाया चाहता हू; उन्हीं के घर मेरी बहन रूपवती भी है। आप जिस सराय में ठहरे है, वह यहा से किधर और कितनी दूर है।

नाहर—मै नही जानता। नगर के दक्षिण फाटक के समीप ही वह सराय है। उसका द्वार बहुत ऊचा और पत्थर का बना हुआ है।

युवक—मै समझ गया। आपकी उस सराय के समीप ही मेरे पिता के उन मित्र का मकान है। अब आप लोग मेरे बताये पथ से अपने घोड़े चलायें। मै ऐसी राहो से आप को उस सराय के समीप पहुचा चाहता हू, जिन-

मे गश्ती सवार भी न मिलें और हमलोग यथासम्भव शीघ्र उस सराय के समीप पहुच जायें।

कोई दो घण्टे के उपरान्त वह दोनो घोड़े उस सराय के सामने जा खड़े हुए।

युवक-(नाहर से) अब आप क्या किया चाहते हैं?

नाहर-जिस मकान में तुम जाया चाहते हो, वह मकान यहा से कितनी दूर है?

युवक-कोई आठ सौ कदम के अन्तर पर।

नाहर-अच्छा; तुम उन वृक्षो के नीचे के घनान्धकार में ठहरो; मैं अपना घोड़ा सराय में छोड़ पैदल तुम्हारे पास लौट आऊगा। मेरा साथी मेरा घोड़ा ले जा सकता है; किन्तु बिना सवार का एक घोड़ा देख सराय के दरवान सन्देह करेंगे।

युवक-किन्तु आप इस समय मेरे पास आ क्या करेंगे?

नाहर-मै तुम्हें तुम्हारे उस मकान में छोड़ सराय में वापस लौट आऊगा।

युवक-इससे आपको बड़ा कष्ट होगा।

नाहर-इससे नही; तुम्हारे साथ न जाने से ही मुझे बड़ा कष्ट होगा। जो कार्य्य मैने आरम्भ किया है; तुम्हारे यहा छोड़ जाने से वह अधूरा रह जायेगा और अधूरा काम करना मेरी प्रकृति के विरुद्ध है।

यह कह और उस युवक को उन वृक्षो के नीचे छोड़ अर्जुन के साथ नाहर उस सराय में गया और वहाँ अपना घोड़ा छोड़ अकेला उस युवक के पास वापस आया। इसके उपरान्त नाहर के साथ वह युवक उस मकान की ओर चला। राह में उस युवक से नाहर ने पूछा,-"युवक! अब

तुम अत्यन्त सक्षेप में यह कहो, कि तुम पर यह विपद् आने का कारण क्या है ?"

युवक–मेरी विपद् कथा आप ही सक्षिप्त है। मैं जाति का ब्राह्मण हूं; अपने पिता और कोई तेरह वर्ष की अवस्था की अपनी एक बहन के साथ इस नगर के एक महल्ले के एक मकान में रहता था। देव-सेवा और यजमानी से हमलोगों की जीविका चलती थी। औरङ्गजेब ने अपना आज्ञापत्र निकाल प्रकाश्य देव सेवा वन्द करा दी। समय के प्रभाव ने हमारे यजमान भी धर्म्म-कर्म्म से बहुत कुछ उदासीन हुए। इसके फल से हमारी आय घट गई, हमारे दिन बड़े ही कष्ट से कटने लगे। ऐसे समय अब से कोई चार मास पहले हमारे एक पड़ोसी धनाढ्य और नवयुवक एक मुसलमान की दृष्टि हमारी दरिद्रा बहन पर पड़ी। वह दुरात्मा मेरी बहन के रूप पर मुग्ध हो मेरी बहन के आयत्त करने का यत्न करने लगा। किसी यत्न का कोई फल न देख अब से कोई दो सप्ताह पहले एक दिन वह मेरे पिताजी के पास आ बोला, कि आप यदि अपनी कन्या मुझे दें, तो आपको मैं प्रचुर धन दूं।

उसका यह पाप–प्रस्ताव सुन मेरे पिता उसका शिर काटने पर तय्यार हुए। यह देख वह मेरे पिता के सामने से भाग गया; किन्तु जाने से पहले यह कहता गया, कि तुम्हारे इस कुव्यवहार का बदला तुम से मैं अवश्य लूंगा। उस दिन सन्ध्या समय जब मैं मकान लौटा, तब मेरे पिता ने मुझ से इस घटना की बात कही। इसी के साथ-साथ यह भी कहा, कि रूपो यानी मेरी बहन रूपवती को उसी रात अन्यत्र हटा देना चाहिये। उसी रात रूपवती

को ले हम पिता पुत्र अपने पिताजी के मित्र ब्राह्मण कान्हचन्द्र के घर गये। कान्हचन्द्र के परिवार में और कोई नहीं; अपने कुछ नौकरों के साथ वह अपने मकान में रहते हैं। रूपवती के लिये और कोई उपाय न देख उस समय उसे हम कान्हचन्द्र के पास छोड़ आये। मेरे पिता से कान्हचन्द्र ने कहा, कि तुम किसी बात की चिन्ता न करना; रूपवती जिस तरह तुम्हारी रक्षा में रहती थी; अब से वह उसी तरह मेरी रक्षा मे रहेगी। कान्हचन्द्र का यह भी कहना था, कि जब तक वह और उनके विश्वस्त नौकर जीवित रहेंगे, तब तक उनके मकान से रूपवती को कोई भी ले जा न सकेगा। रूपवती को कान्हचन्द्र के घर छोड़ निश्चिन्त मन से हमलोग अपने घर लौटे। दूसरे दिन प्रात काल काजी के भेजे कई सशस्त्र सिपाहियों ने आ मुझे और मेरे पिता को गिरफ्तार किया। रूपवती को न पा वह सब हम पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उसी दिन हम लोग काजी के सामने उपस्थित किये गये थे। यह काजी वही था, जो अब से कुछ ही घण्टे पहले मेरे हाथों मारा गया है। काजी ने हम दोनों पर अपने उस मुसलमान पड़ोसी के घर चोरी करने का अपराध लगा हमें हवालात में बन्द करा दिया। इसी दिन सन्ध्या को हमारा वह मुसलमान पड़ोसी हमारे पास हमारी उस हवालात में आया। उसने हम से कहा, कि उसने काजी को प्रचुर धन दे हम पर चोरी का अपराध लगा हमें गिरफ्तार कराया है; हम यदि रूपवती को उसके हाथ दे देंगे, तो प्राणदान पाने के साथ-साथ धन भी पायेंगे; अन्यथा हम दोनो मारे जायेंगे। इस पर मेरे पिता ने उसे खूब

समझाकर कहा, कि तुम यदि हम निरपराध ब्राह्मणो पर अत्याचार करोगे, तो भगवान् द्वारा दण्ड पाओगे। इस पर उसने हँसकर कहा, कि तुम काफिरो का कोई भगवान् नही, भगवान् मुसलमानो का है। इसकी उपरान्त उसने विविध प्रलोभन दे हम दोनो से रूपवती का पता पूछा। इसका कोई फल न होने पर वह हमारे पास फिर आने का वादा कर वहाँ से चला गया। इसके उपरान्त वह कई दिन हमारे पास हवालात मे आया। हमारे पिता ने उसका हृदय कोमल करने के लिये विविध यत्न किये, किन्तु किसी यत्न का कोई फल न हुआ। अन्त में हमारे पिता को विश्वास हो गया, कि वह युवक पाषाण हृदय है; उसके हृदय मे न तो भगवान् का भय है न दया। यह निश्चय करते ही हमारे पिता ने एक दिन उस युवक के मुह पर थूक दिया और बड़े क्रोध से कहा, कि मैं अपनी कन्या के धर्म्म को अपने और अपने पुत्र के प्राण से अधिक मूल्यवान् समझता हू; रूपवती तुझे मिल न सकेगी, इसके सम्बन्ध में तू जो किया चाहता हो, कर। इस घटना के दूसरे ही दिन हम दोनो एक बार फिर काजी के सामने उपस्थित किये गये। काजी ने मेरे पिता की खाल खिंचने की आज्ञा दी। उस दिन मेरे पिता मेरे समीप से हटाये गये। जाते समय वह मुझ से कह गये,—'आनन्दस्वरूप! देखना मृत्यु भय से कहीं अपनी बहन रूपवती का पता बता न देना।' मैंने अपने पिताजी को विश्वास दिलाया, कि ऐसा न होगा। मेरे पिता की मृत्यु होने के उपरान्त मेरा वह मुसलमान पड़ोसी मेरे पास आया। उसने मुझे बारबार प्राणभय दिखा वश करने की चेष्टा की; किन्तु

उसे शीघ्र ही विदित हो गया, कि मै अपने निर्भीक पिता का निर्भीक पुत्र हूं। इसके उपरान्त कल सन्ध्या को मैं काजी के सामने एक बार फिर उपस्थित किया गया। काजी ने मेरा अङ्ग-प्रत्यङ्ग काट मेरी हत्या करने की आज्ञा दी। अब से कुछ घण्टो के उपरान्त मैं मारा जाता; आप की कृपा से मैने प्राण लाभ किया है। अब आप अपना परिचय मुझे प्रदान करें। मुझ पर आप की जो कृपा हुई है, वह असाधारण है। इस समय ऐसे मनुष्य बहुत कम है, जो आप की तरह अपना प्राण सङ्कट में डाल दूसरे की प्राण-रक्षा किया करते हैं।"

नाहर ने आनन्दस्वरूप को सक्षेप मे आत्मपरिचय प्रदान किया। इसके उपरान्त उससे यह भी बताया, कि काजी के मकान के द्वार पर किस तरह आनन्द को वह प्रथम बार देख सका था। अन्त में नाहर ने पूछा,—"जिस मकान की ओर तुम जा रहे हो, वह मकान क्या उन्हीं कान्हचन्द्र का है?"

आनन्द—हाँ।

नाहर—क्या तुम्हारे पिता की और तुम्हारी दुर्दशा का समाचार कान्हचन्द्र को मिल चुका है?

आनन्द—मैं नहीं जानता। फिर भी; इसमें सन्देह नहीं, कि वह हमारी दुर्दशा का समाचार पा गये होंगे।

नाहर—उनका वह मकान और कितनी दूर है?

आनन्द—जिस मकान के सामने हमलोग आ पहुंचे हैं, यही वह मकान है।

नाहर ने उस मकान को देखा। एक छोटे से बाग के

लम्बाई—चौड़ाई अधिक न थी। इसका द्वार बन्द था। आनन्द के उस पर आघात करने से उसे किसी ने भीतर से खोल दिया। इस द्वार का खोलनेवाला इस मकान का कोई नौकर था। उससे आनन्द ने पूछा,-"क्या कान्हचन्द्रजी मकान मे है?"

नौकर-हैं। किन्तु इस समय वह विश्राम करते होंगे। इस पिछली रात को आप का यहां आना कैसे हुआ?

आनन्द—यह बात करने का समय नहीं। तुम मुझे अपने स्वामी के पास ले चलो। उनसे मैं बड़ी ही प्रयोजनीय एक बात कहना चाहता हूं। यदि विलम्ब करोगे, तो तुम्हारे स्वामी तुम पर अत्यन्त असन्तुष्ट होंगे।

वह नौकर द्वार बन्द कर बाहर और आनन्द को अपने साथ ले उस मकान के नीचे के चबूतरे पर पहुँचा और वहां इन दोनो को छोड़ एक सीढ़ी से चढ ऊपर की मञ्जिल में गया। कुछ समय के उपरान्त उस मकान की ऊपर की मञ्जिल की एक खिड़की खुली। उस खिड़की में खड़े हो किसी मनुष्य ने पूछा,-"आपलोग कौन हैं?"

आनन्द-कान्हचन्द्रजी! कृपापूर्वक आप नीचे आइये।

कान्ह—कौन-यह कौन है-किसकी आवाज है?

आनन्द-विलम्ब न कर आप नीचे आइये; आप से मुझे बड़ी ही प्रयोजनीय एक बात कहना है।

कान्ह—(कुछ चिन्ता कर) अच्छा ठहरो! मैं नीचे आता हूं।

कुछ क्षण के उपरान्त कान्हचन्द्र नीचे आया। उसके समीप जा आनन्द ने अत्यन्त मृदु स्वर में कहा,-"कान्हचन्द्रजी! इन अपने मित्र के साहाय्य से मैं कैदखाने से

भाग निकला हूं। मेरी रक्षा कीजिये; मेरे छिपने के लिये कोई स्थान बताइये।"

आनन्द को देख और उसकी यह बात सुन कान्हचन्द्र अत्यन्त क्षुब्ध और चिन्तित हुआ। इसके उपरान्त उसने एकाएक कहा,—"अच्छा; तुम लोग मेरे साथ आओ।"

उस मकान की नीचे की मंज़िल की एक कोठरी में घुस और उस में रखी एक लालटेन जला नाहर और आनन्द को ले कान्ह कितनी ही कोठरियों से होता हुआ इस मकान के पिछले भाग में पहुचा। यहाँ एक दालान था, जिसकी दोनो ओर की दीवार मे कितने ही द्वार थे। इन मे एक द्वार मे ताला बन्द था। कान्ह ने यह ताला खोल द्वार खोला। उस द्वार के भीतर नीचे की ओर जाने वाली सीढ़ियो का एक सिलसिला प्रकट हुआ। यह द्वार भीतर से बन्दकर और इन दोनो को साथ ले कान्ह सीढ़ियाँ के इस सिलसिले के नीचे पहुचा। यहाँ और एक द्वार था। यह द्वार अपेक्षाकृत सुदृढ था। इसका ताला खोल और इस में घुस कान्ह एक छोटे और साफ तहखाने में जा खड़ा हुआ। नरहर और आनन्द कान्ह के साथ थे। उस तहखाने में पहुंच उसने इन दोनो की ओर देख कहा,—"इस समय तुम दोनो के ठहरने के लिये यही स्थान है। वह सामने दरी बिछी है; तुम लोग उस पर विश्राम करो; प्रात काल तुम्हारे पास मैं आऊँगा।"

आनन्द—कान्हचन्द्रजी! मेरी बहन रूपो कहा है?

कान्ह—(आनन्द को अल्प समय तक देखकर) ऊपर है।

आनन्द—उस से मै भेंट किया चाहता हू।

कान्ह—प्रात,काल उस से तुम्हारी भेंट होगी। इस

समय वह यदि यहाँ आयेगी, तो तुम्हारे यहाँ आने का हाल मेरे नौकरों को मालूम हो जायेगा। ऐसा होने से तुम यहाँ ठहर न सकोगे।

आनन्द-क्या उसे और आप को मेरे पिता जी की मृत्यु का समाचार मिल चुका है?

कान्ह-मिल चुका है। इस समय अधिक बात-चीत करने का प्रयोजन नहीं। प्रातःकाल तुम्हारे पास मैं आऊँगा। उस समय तुम से बातें होंगी। उसी समय मैं यह भी स्थिर करूँगा, कि तुम्हें किस दिन यह नगर परित्याग करना चाहिये। कारण, तुम अधिक समय तक इस तहखाने में रह न सकोगे।

आनन्द—ऐसा ही कीजिये। मैं भी अत्यन्त श्रान्त-क्लान्त हूँ; मुझे विश्राम का बड़ा प्रयोजन है।

कान्ह-अच्छा, अब मैं जाता हूँ।

आनन्द-जाइये और इन मेरे मित्र को अपने साथ लेते जाइये। इनका निवासस्थान इस मकान के समीप ही है। यह यहाँ से वहाँ चले जायेंगे।

कान्ह-(चौंककर) क्या तुम्हारे यह मित्र तुम्हारे साथ इस तहखाने में न रहेंगे?

आनन्द-नहीं। इन पर किसी को किसी तरह का सन्देह नहीं। अत्यन्त गुप्त भाव से यह मुझे मेरे कैदखाने से निकाल लाये हैं।

कान्ह-(नाहर को आपादमस्तक अच्छीतरह देखकर) तुम कौन हो?

नाहर-मुझे आप अपना एक सेवक समझें। कल प्रातःकाल मुझे आप जिस समय बुलायेंगे, उस समय आप

के पास मैं पहुच जाऊँगा । आनन्दस्वरूप के इस नगर से निकालने के सम्बन्ध में आप को मैं कुछ न कुछ साहाय्य अवश्य दे सकूंगा ।

कान्ह–मैं तो यह चाहता हूं, कि प्रातःकाल तक तुम भी इसी तहखाने में रहो । तुम्हारे जाने से मेरे नौकरों के मन में सन्देह हो सकता है ।

नाहर–आनन्दस्वरूप को यदि मेरा प्रयोजन है, तो मैं उन के पास इस तहखाने में रहने के लिये प्रस्तुत हूं ।

आनन्द—नहीं; इस समय मुझे आप का कोई प्रयोजन नहीं । आपने मुझ दरिद्र ब्राह्मण के लिये जो कष्ट स्वीकार किया है, वह कम नहीं । इस समय आप जाइये; प्रातःकाल आप से भी भेंट होगी ।

कान्ह—यदि यह जाया ही चाहते है, तो मैं इन्हें यहा से ले जाने से पहले ऊपर जा यह देख आया चाहता हू, कि राह साफ है या नहीं ।

आनन्द—ऐसा ही कीजिये; किन्तु जो कुछ कीजिये; शीघ्र कीजिये । इन अपने मित्र को मैं और अधिक कष्ट दिया नहीं चाहता ।

कान्ह—मैं आध घण्टे के भीतर लौट आऊँगा ।

यह बात कह कान्ह ने उस तहखाने से बाहर निकल उसका वह नीचे वाला सुदृढ द्वार बाहर से बन्द कर दिया । नाहर और आनन्द को कान्ह के पद शब्द और एक और द्वार के बन्द होने से जान पड़ा, कि कान्ह ने उन सीढ़ियों से ऊपर पहुच वह ऊपर वाला भी द्वार बन्द कर दिया ।

नाहर—आनन्दस्वरूप ! यह क्या बात है ?

आनन्द–कैसी बात ?

नाहर—मुझे ऐसा ज्ञान पड़ता है, कि कान्ह हमारा मित्र नहीं; उसने हम दोनो को इस कैदखाने में कैद कर दिया है।

आनन्द-क्या यह सम्भव है?

नाहर-कोई आध घण्टे में इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर मिल जावेगा।

आध घण्टे की जगह कोई एक घण्टा बीत गया; फिर भी कान्ह न लौटा। नाहर ने नितान्त गम्भीरभाव से कहा,—"पहले मेरा अनुमान था; अब पूर्ण विश्वास है, कि हम दोनो इस तहखाने में कैद कर दिये गये हैं।

त्रयोदश परिच्छेद।

पैशाचिक लीला।

नाहर और आनन्द को लाहोर नगर के उस मकान के उस तहखाने में बन्द छोड़ हम एक बार फिर दिल्ली नगर में उपस्थित होते हैं। नाहर के दिल्ली परित्याग करने के उपरान्त एक दिन रात्रि कोई आठ बजे औरङ्गजेब अपने दिल्ली के किले के एक अत्यन्त सुसज्जित और सुविशाल कमरे में बैठा था। उस समय उसके समीप थोड़े से सशस्त्र ख्वाजासरा और चार-पांच विश्वस्त मुसाहिब बैठे थे।

उस कमरे की सङ्गमरमर और सङ्गमूसा की चिकनी गच पर पैर धँसने योग्य बहुत ही मोटा और बड़ा ही बहुमूल्य एक सूती कालीन बिछा था। उसके ऊपर बड़े ही मूल्यवान् हरे रङ्ग के मखमल का फर्श था। इस फर्श के किनारों और मध्य में कारचोबी के काम थे, जिनमें जगह जगह मोती टँके थे। इस फर्श के एक ओर पर पर से भरा

कारुकार्य्य खचित नीले रङ्ग के साटन का बहुत मोटा एक गद्दा और उस पर कितने ही मसनद और तकिये थे। एक बड़े मसनद से लग और कुछ तकियों पर झुक भारत-सम्राट् औरङ्गजेब बैठा था। उसकी देह पर आबेरवाँ का एक अङ्गा और पायजामा था। उसके शिर पर सफेद रङ्ग की एक पगड़ी थी, जिसमें ललाट के ऊपर एक तुर्रा लगा था। इस तुर्रे के तलदेश में बहुत बड़ा एक हीरा लगा था। इसकी ज्योति से औरङ्गजेब का माथा बारबार चमक उठता था।

उस कमरे की दीवारें और छत सङ्गमरमर की थीं, जिन पर विविध रङ्ग के बहुमूल्य पत्थरों से मोटी और बारीक बेलें और उनके छोटे-बड़े फूल पत्ते बने थे। कितनी ही बेलें और उनके फूल-पत्ते पत्थर के नहीं; जवाहरात के थे। वह कमरा उस किले की यमुना के ऊपर की दीवार के ऊपर बना था; उस कमरे की यमुना की ओर की सब खिड़कियां खुली थीं और उन पर लगे कारचोबी के काम के मखमली परदे हटे हुए थे। उस कमरे के ऊपर एक सौ बत्तियों का बहुत बड़ा एक झाड़ लटक रहा था; उसकी सभी बत्तियां जल रही थीं। उस कमरे के मध्यभाग में शीशे का बहुत बड़ा एक फव्वारा रखा था। उसमें गुलाब जल छूट रहा था। वह फव्वारा देशी नहीं; विदेशी जान पड़ता था; सम्भवतः किसी युरोपीय राजदूत द्वारा औरङ्गजेब को भेंट में दिया गया था। उस फव्वारे की चारों ओर जड़ाऊ बड़े-बड़े थालों में बेला, जुही, चमेली, गुलाब आदि ग्रीष्म-ऋतु के विविध सुगन्धित पुष्प रखे थे। कभी-कभी यमुना के ऊपर से बहता हुआ समीरण आ उस फव्वारे के गुलाब जल को फूलों से परिपूर्ण उन थालों पर

छिड़क देता था। उस फ़ाड़ में जलती कपूरी बत्तियों, उन थालो में भरे पुष्पो और उस फव्वारे से छूटते हुए उस गुलाब-जल से उस कोठरी की वायु अतीव सुगन्धित होने के कारण बहुत कुछ स्थिर हो गई थी।

औरङ्गजेब के पूर्वपुरुष सम्राट् अकबर, जहाँगीर और शाहेजहाँ उस कमरे में जब बैठते थे, तब समय-समय पर उनके सामने गवय्ये बैठ विविध बाजो पर समय की चीजें गा मनुष्यो और पशुओं का चित्त रञ्जन किया करते थे, किन्तु सम्राट् औरङ्गजेब के समय उस कमरे मे गान वाद्य का सम्पूर्ण अभाव रहता था। कारण, औरङ्गजेब ने अपने को परमधार्म्मिक मुसलमान प्रमाणित करने के लिये उस कमरे तो कमरे; अपने समूचे साम्राज्य का गान वाद्य बन्द होने की आज्ञा दे दी थी। फिर भी; उस समय के बहुतेरे निन्दक बहुतेरे कानों को बचा आपस में इस बात की चर्चा किया करते थे; कि औरङ्गजेब प्रत्यक्ष में गान-वाद्य का विरोध करता; यथार्थ में इसका अनुरागी है; कारण, औरङ्गजेब के अन्त पुर से समय-समय पर वाद्य के साथ कल-कण्ठियो के गाने की तानें सुनाई दे जाया करती है।

फलत. उस समय औरङ्गजेब अपने कुछ विश्वस्त मुसाहिबो आदि के साथ ऐसे ही उस कमरे में सुखपूर्वक बैठा था। समय-समय पर उसके माथे पर बल पड़ जाते थे और उसकी आखो से सम्भवत वैसी ही पैशाचिक ज्योति प्रकट हो जाती थी; जैसी ज्योति एक बार उस दरबारे-आम में देख नाहर भीत और चकित हुआ था। बहुत समय तक निस्तब्ध रह औरङ्गजेब ने अपने एक मुसाहिब की ओर देख कहा,—"मै नही जानता, कि मेरे जीवन में

मारवाड़ में मेरा रहना अत्यावश्यक है। आप ने और पिताजी ने मारवाड़-शासन का जो भार मेरे ऊपर रखा है, वह मेरे लिये बिलकुल नया है। मेरी आन्तरिक कामना यह है, कि मेरे इस शासन-कार्य्य मे कोई ऐसी त्रुटि न हो, जिससे आप और मेरे पिताजी मुझ से असन्तुष्ट हो जायँ।

औरङ्गजेब-मेरी समझ मे तुम दूसरे महाराज यशवन्त सिंह हो; तुम्हारे शासन-कार्य्य में कोई त्रुटि होने की आशङ्का नही।

यह बात सुन पृथ्वीसिंह ने अपना शिर नीचा कर लिया। उस समय औरङ्गजेब की दृष्टि से एक बार फिर वही भयङ्कर पैशाचिक ज्योति प्रकट हुई। इसमें सन्देह नही, कि नाहर यदि इस ज्योति को देखता, तो एक बार फिर उसका सर्वाङ्ग काप उठता।

औरङ्गजेब ने अपने समीप बैठे अपने उस प्रधान मुसाहिब के प्रति एक सङ्केत किया। इसे देख वह उस कोठरी से बाहर चला गया। उसके जाने के उपरान्त औरङ्गजेब ने पृथ्वीसिंह से पूछा,-"क्यो पृथ्वीसिंह! तुम कितने भाई हो?"

पृथ्वीसिंह-तीन।

औरङ्गजेब-तुम्हारे दोनो भाई तुमसे छोटे हैं या बड़े?

पृथ्वीसिंह—छोटे। दोनो ही इस समय पिता के पास काबुल में है।

औरङ्गजेब-तुम्हारे पिता जी का स्वास्थ्य कैसा है?

पृथ्वीसिंह-अच्छा है, हुजूर! फिर भी, वह काबुल छोड़ स्वदेश लौटने के लिये बहुत चिन्तित रहा करते है।

औरङ्गजेब-अपने इस वार्द्धक्य में काबुल की उत्कट

जल-वायु में रह महाराज यशवन्तसिंह और अधिक स्वास्थ्य लाभ कर सकेंगे। उन्हें और कुछ समय तक काबुल में रहना चाहिये।

पृथ्वीसिंह-हुजूर! मातृभूमि स्वर्ग से भी अधिक प्यारी होती है काबुल अपनी जल-वायु के कारण स्वर्ग ही क्यों न हो; किन्तु मेरे पिता जी को उतना प्रिय हो नहीं सकता। मेरी समझ में इस वार्द्धक्य मे उनका स्वदेश और स्वराज्य ही में रहना उचित है।

औरङ्गजेब-पृथ्वीसिंह! तुम्हारी यह पितृभक्ति देख तुमसे मै अत्यन्त प्रसन्न हुआ हू।

ऐसे समय उस प्रथम मुसाहिब ने इस कमरे मे प्रवेश किया। उसके साथ एक चोबदार था, जिसके हाथ मे बहुत बड़ा एक थाल था। इस थाल पर मोतियों की जाले का एक आवरण था। यह थाल औरङ्गजेब के सामने रखा गया। औरङ्गजेब ने उस आवरण से ढके उस थाल को छू दिया। उस प्रथम मुसाहिब ने उस थाल का वह आवरण हटा उसके नीचे से बड़ी ही बहुमूल्य एक खिलअत उठा पृथ्वीसिंह को पहना दी। पृथ्वीसिंह ने यह खिलअत पहन औरङ्गजेब को झुक-झुककर सात सलामें की। इसके उपरान्त पृथ्वीसिंह एक बार फिर अपनी जगह बैठना चाहते थे; किन्तु बैठ न सके। औरङ्गजेब उठ खड़ा हुआ। पृथ्वीसिंह की ओर देख उसने कहा,—"पृथ्वीसिंह! यही खिलअत देने के लिये तुम्हें मैंने मारवाड़ से दिल्ली बुलाया था। आज तुम्हें यह खिलअत मिल गई। अब तुम दिल्ली से मारवाड़ वापस जा सकते हो।"

पृथ्वीसिंह-हजूर! यह खिलअत दे मेरे प्रति आपने जो

वस्त्र और भी शीघ्र उतार दो।

पृथ्वीसिंह–यह सम्राट् औरङ्गजेब की दी हुई खिल-अत है। इसे मेरे शरीर से उतार कर यत्न पूर्व्वक रखना।

पृथ्वीसिंह की देह के अन्यान्य सब वस्त्रो के ऊपर वह खिलअत थी; इसलिये सब से पहले वही उतारी गई। राज–वैद्य ने उसे अपने हाथों में ले लिया। उसे हाथ में लेते ही उनके चेहरे का रङ्ग एकाएक उड़ गया। उन्हो ने उस वस्त्र को नाक से लगाया। इसके उपरान्त वह स्थिर रह न सके; एक वैद्य को अपने साथ ले उस कमरे से जाने पर उद्यत हुए।

पृथ्वीसिंह–वैद्यराज! यह वस्त्र ले आप कहाँ जाते है?

राजवैद्य–एक प्रयोजनीय कार्य्य से जाता हूं; अभी लौट कर आऊँगा। यह वस्त्र इस समय आपके पास नहीं मेरे पास रहेगा। इसका मुझे बड़ा प्रयोजन है।

पृथ्वीसिंह के और कोई प्रश्न करने से पहले उन वैद्य के साथ राज–वैद्य उस कमरे से बाहर चले गये। इस कमरे से कुछ दूर जा और एक जगह ठहर उन्हो ने अपने साथ के वैद्य को वह खिलअत दी और उससे अत्यन्त मृदु-स्वर मे कुछ बातें कहीं। वह खिलअत ले और राज-वैद्य की कही बातें सुन वह वैद्य बड़ी ही शीघ्रता से एक ओर चला गया। उसके जाने पर राज-वैद्य ने एक दूसरे स्थान मे जा अपने हाथ धोये और अपना ऊपर का वस्त्र परि-त्याग कर एक बार फिर वह पृथ्वीसिंह के समीप पहुचे।

इस अवसर में पृथ्वीसिंह के प्राय समस्त वस्त्र उ-तार लिये गये थे। राज-वैद्य ने कहा,- "कुवर जी को विल-

विवस्त्र कर इस पलङ्ग से नीचे उतार तुमलोग यथा-

सम्भव शीघ्र बाहर आ स्नान करो। दूसरे सेवक आ कुवर जी को दूसरा वस्त्र पहना इस शयनागार से निकाल दूसरे शयनागार में ले जायें। इस शयनागार में कोई न रहे; इस समय इसके द्वार पर ताला लगा दिया जाये।"

राजवैद्य की आज्ञा कार्य्य मे परिणत हुई; पृथ्वीसिंह दूसरे वस्त्र से आवृत किये जाकर दूसरे शयनागार मे पहुचाये गये। इस अवसर में उनकी निर्बलता बहुत बढ गई; उनके मुख और शरीर का गौर वर्ण बहुत कुछ मलिन हो गया। उनकी बोलने की शक्ति बहुत कुछ लोप हो गई। इस दूसरी कोठरी में राज-वैद्य ने पृथ्वीसिंह की नाड़ी-परीक्षा तथा अङ्ग-परीक्षा की। इसके उपरान्त एक औषधि किसी रस के साथ पृथ्वीसिंह को पिलाई।

राजवैद्य—कुवरजी! आपकी देह मे यह पीड़ा कब से उत्पन्न हुई है?

पृथ्वीसिंह—(अत्यन्त मृदु स्वर में) औरङ्गजेब से विदा ग्रहण करने के समय से।

राजवैद्य—इससे पहले क्या आप सम्पूर्ण स्वस्थ थे?

पृथ्वीसिंह—हां।

राजवैद्य—विदा-काल से कितनी देर पहले आप को खिलअत पहनाई गई थी?

पृथ्वीसिंह—अल्प समय पहले। मेरे खिलअत पहनते ही औरङ्गजेब उठा और मैंने उससे विदा ग्रहण की। इस खिलअत के सम्बन्ध मे इतनी बातें आप क्यों पूछते हैं?

राजवैद्य—इसका उत्तर अभी नहीं, यथासमय दिया जायेगा।

पृथ्वीसिंह—क्या उस खिलअत और मेरी इस मस्व-

स्था के बीच कोई सम्बन्ध है ?

राजवैद्य—कुअरजी! मेरी प्रार्थना है, कि इस समय मुझ से आप यह प्रश्न न करें।

इसके उपरान्त पृथ्वीसिंह को और एक दवा पिलाई गई। इसके फल से पृथ्वीसिंह को कितनेही दस्त आये और कै हुई। राज-वैद्य तथा अन्यान्य वैद्य वारवार पृथ्वीसिंह की नाड़ी-परीक्षा कर उन्हें पहले आध--आध घटे; पीछे पाव-पाव घटे के उपरान्त औषधि देने लगे।

औषधि की इतनी व्यवस्था होने पर भी पृथ्वीसिंह की पीड़ा बढ़ती ही गई। उनकी देह का रङ्ग श्याम हो गया; उनकी आँखों के गिर्द काले गड्ढे पड़ गये; उनके नाखुन काले होने लगे; उनके हाथ और पैर की उगलियां पानी में भीगी उगलियों की तरह सिकुड़ने लगीं। उनके मुख से फेन निकलने लगा और वह बकने झकने लगे।

अर्द्धनिशा तक पृथ्वीसिंह की ऐसी ही अवस्था रही; इसके उपरान्त वह और भी शोचनीय हो गई। पृथ्वीसिंह की देह श्याम हो गई। उनका सर्वाङ्ग बरफ जैसा शीतल और बहुत कुछ कठोर हो गया। उनके हाथ पैर की उंगलियाँ सिकुड़कर टेढ़ी हो गईं। उनकी आंखों की पुतलियां फिर गईं। उनके माथे से वारवार ठण्डा पसीना बहने लगा। उनका मुख खुल गया। केवल श्वास-प्रश्वास चलने से विदित होता था, कि पृथ्वीसिंह अभी जीवित हैं।

उस दुस्समय में परदा रखना कठिन था। अन्तःपुर की बहुतेरी स्त्रियां पृथ्वीसिंह के गिर्द आ खड़ी हुईं और उनकी यह दशा देख मुह ढांक अर्द्धस्फुट स्वर से रोने लगीं। उस कोठरी के एक पार्श्व में बहुतेरे राठोर वीर एकत्र हुए;

इनके मुख से इनका आन्तरिक दुःख प्रकट होता था। इन मे कितने ही वीरो के नेत्रो में जल आ गया। ऐसे समय पृथ्वीसिंह की चाची ने राज-वैद्य से कहा,—"वैद्य जी! इस मेरे लाल को यह क्या रोग हो गया है?"

राजवैद्य--रानी जी! क्या बताऊ, कि क्या हो गया? मेरी बुद्धि काम नहीं करती। औरङ्गजेब की दी हुई खिलअत पहनते ही यह पीडित हुए हैं।

यह बात सुन पृथ्वीसिंह की चाची पृथ्वीसिंह की अवसन्न देह पर गिर फूट-फूट कर रोने लगीं।

राजवैद्य—रानी जी! आप इतना विलाप न करें, इससे रोगी को और कष्ट होगा।

चाची—क्या यह किसी तरह चैतन्य लाभ कर नहीं सकते?

राजवैद्य—आपकी आज्ञा हो, तो मैं इन्हें सचेत करू, किन्तु इससे इनकी निर्बलता और भी बढ जायेगी।

चाची—एक बार इन्हें चैतन्य अवश्य करना चाहिये।

"जो आज्ञा" कह राज-वैद्य ने एक गोली जल के साथ पृथ्वीसिंह के कण्ठ में बडी कठिनता से उतार दी। इस गोली के कण्ठ में जाते ही पृथ्वीसिंह के मुख का वर्ण लाल हुआ। इसके उपरान्त उनकी देह हिली। अन्त में पृथ्वीसिंह ने एकाएक आखें खोलीं। उनकी आंखो को देख उनके समीप खडे मनुष्य भीत हुए।

पृथ्वीसिंह की चाची जी ने उच्चस्वर से पूछा,—"मेरे लाल! तुम्हारी यह क्या दशा है!"

पृथ्वीसिंह जागो सोते से उठे। उन्हों ने पहले अपनी चाची की ओर देखा, इसके उपरान्त अपनी दाहनी

भुजा की तर्ज्जनी से उस कोठरी की छत की ओर सङ्केत कर एक हलकी चीत्कार ध्वनि की ।

घाची—क्या कहते हो ?

पृथ्वीसिंह—वह-वह देखो-औरङ्गजेब की आंखें-दौड़ो-दौड़ो-यह मुझे खा रही हैं ।

धाची—वत्स ! औरङ्गजेब की आखें इस कोठरी की छत मे कहाँ ?

यह बात सुन पृथ्वीसिंह ने अतीव भयङ्कर एक चीत्कार ध्वनि की, साथ-साथ आँखें मूद निस्तब्ध हो गये। उनका [illegible] गिर गया; उनके मुख की वह लालिमा जाती रही; उनका मुख सूख गया; मुख से श्वास-प्रश्वास का निकलना बन्द हो गया ।

अन्तःपुर की स्त्रिया उच्चस्वर से क्रन्दन कर उठी; राज-वैद्य ने झपट कर पृथ्वीसिंह की नाड़ी-परीक्षा की; उनकी छाती पर हाथ रखा; इसके उपरान्त अपना शिर झुका अत्यन्तकष्ट से कहा,—"समाप्ति हो गई; पृथ्वीसिंह जी इहलोक मे नहीं ।" इस दिन पिछली रात को मेवाड़-पति महाराज यशवन्तसिंह के ज्येष्ठ पुत्र युवराज पृथ्वीसिंह ने इहलोक परित्याग किया ।

राजवैद्य की यह बात सुन अन्तःपुर की स्त्रिया पृथ्वीसिंह की शव देह पर गिर तड़प-तड़प कर उच्च स्वर से विलाप करने लगीं; उस कोठरी में उपस्थित प्राय. सब राठोर वीरो के नेत्रो से अश्रुधारा बहने लगी । देखते-देखते यह दु खद समाचार समूचे महल में फैल उसके सभी मनुष्यो का हृदय विदीर्ण करने लगा ।

नवयुवक पृथ्वीसिंह की यह एकाएक की मृत्यु बड़ी

ही भयङ्कर थी। इसके फल से महाराज यशवन्तसिंह की छाती के लिये वज्र प्रस्तुत हुआ; लक्ष-लक्ष राठोरो के निमित्त ,अन्धकार की सृष्टि हुई; पृथ्वीसिंह के समवयस्क बहुसंख्यक राजवंशीय जागीरदार राठोर नवयुवकों के लिये स्थायी मर्म्म पीड़ा उत्पन्न हुई। पृथ्वीसिंह को समझने वाले बहुतेरे समझदार मनुष्यो ने एक स्वर से कहा,—" वृद्ध यशवन्तसिंह जीवित है; नवयुवक यशवन्तसिंह ने इहलोक परित्याग किया।" इसमे सन्देह नही, कि पृथ्वीसिंह की इस मृत्यु से केवल मारवाड या राठोरो ही की नही; हिन्दू-जाति की भी क्षति हुई। वह यदि जीवित रहते, तो औरङ्गजेब के शासन काल की समाप्ति के उपरान्त केवल अपने देश ही का नही, समूचे हिन्दू-जगत् का बड़ा उपकार करते।

राजवैद्य का उस कोठरी मे अब कोई प्रयोजन न था। उससे निकल वह एक बरामदे में पहुचे। यहा बहुतेरे राठोर वीरो ने उन्हे घेर पूछा,—" वैद्य जी! यह अनर्थ कैसे हुआ? कुछ घण्टे पहले के स्वस्थ-सबल पृथ्वीसिंह ने इतनी फुरती से अपनी इहलीला कैसे संवरण की?"

राजवैद्य—इसका उत्तर मै न दूंगा; यह वैद्यराज देंगे।

सब लोगो ने उन वैद्यराज को देखा। यह उसी क्षण उस बरामदे में पहुचे थे। यह वैद्यराज और कोई नही; वही थे, जिनको औरङ्गजेब की दी खिलअत दे राज-वैद्य ने अब से कुछ घण्टे पहले कही भेजा था। यह उस समय जा इस समय लौटे थे। इनकी ओर देख इनसे राज-वैद्य ने पूछा,—"परीक्षा हो गई?"

वैद्य—हो गई। आप का अनुमान सत्य निकला।

उस खिलअत का भीतरी वस्त्र विष-रस से रगा हुआ है। इसका विष बड़ा ही प्रबल भुजङ्ग-विष जैसा है । पसीने के साथ; और तो क्या,-श्वास-प्रश्वास के भी साथ मनुष्य-देह में प्रविष्ट हो मनुष्य का प्राण-नाश कर सकता है। इस विष के एक बार शरीर में प्रवेश कर जाने पर मनुष्य की रक्षा हो नहीं सकती ।

राजवैद्य--(अपने समीप खड़े राठोर वीरो से) अब से कुछ समय पहले औरङ्गजेब की दी हुई जो खिल-अत पहन पृथ्वीसिंह पीड़ित हुए थे, उस खिलअत में विष होने का सन्देह कर उसे मैंने इन वैद्यराज को परीक्षार्थ दिया था। उसकी परीक्षा समाप्त कर यह इस समय लौटे हैं। उस परीक्षा में इन्हो ने जो बात निर्णय की है; इस समय आप लोगों के सम्मुख इन्हो ने उसी बात का उल्लेख किया है । इनकी यह बात ही आप लोगो के उस प्रश्न का उत्तर है ।

एक सरदार-(अपने माथे पर प्रबल वेग से हाथ मार) हाय ! हम लोगो को यदि इस बात का सन्देह भी होता, तो हम अपने कुवर को दिल्ली क्यो आने देते ।

दूसरा सरदार-वस्त्र द्वारा विष-प्रयोग नवीन पैशाचिक उद्भावना है; मनुष्य इसके सम्बन्ध में सन्देह कैसे कर सकता है ?

राजवैद्य-राजकुमार की आकृति और उनकी पीड़ा के लक्षण देखते ही मुझे उनके विषाक्रान्त होने की आशङ्का हो गई थी; इसीलिये मैंने राजकुमार को विवस्त्र करा दूसरा वस्त्र पहनवाया और उनकी शय्या तथा कोठरी परिवर्तित करा दी । राजकुमार की दशा के सम्बन्ध में मैंने अभी

यत्न किये, किन्तु दुःख है; कि उनका कोई फल न हुआ। बली काल राजकुमार को हमारे हाथ से छीन ले गया।

इस बात पर राज-वैद्य के समीप खड़े बहुतेरे सरदारों के मुख से एक साथ ध्वनि हुई,—"शिव! शिव!"

चतुर्दश परिच्छेद।

कान्ह जी।

'जिस कान्ह जी के घर आनन्दस्वरूप और उसके पिता दोनों रूपवती को रख आये थे, वह धनसम्पन्न, अपरिवार, धर्म्मज्ञान शून्य और व्यभिचारी मनुष्य था। उस समय उसकी अवस्था कोई चालीस वर्ष की थी, दश वर्ष पहले उसकी स्त्री का देहान्त हो चुका था। तब से अब तक वह अपरिवार था। इसका कद लम्बा, देह बलिष्ठ और मुख बहुत कुछ सुन्दर था। उसके आडम्बर देख उसे हिन्दू परमधार्म्मिक और मुसलमान धर्म्म-कर्म्म से निरपेक्ष समझते थे। इसी विश्वास से अपनी उस विपद् में वह पिता-पुत्र रूपवती को कान्ह के घर छोड़ आये थे।

रूपवती को अपने घर में पा पहले कान्ह की यह इच्छा हुई, कि वह उसे काजी के हाथ सौंप उस समय की मुसलमान-सरकार का श्रद्धाभाजन बने। किन्तु रूपवती का रूप देखते ही उसकी यह इच्छा उसके मन ही में रह गई। रूपवती निरी बालिका थी। उस समय उसकी अवस्था कोई तेरह वर्ष की थी। सुख से पली थी; इसलिये अपनी उस अवस्था से अधिक वयस की जान पड़ती थी। उसके सुन्दर मुख; उसके गौर वर्ण, उसके सुदीर्घ केश और उसकी वह वार्द्धक्य की कोमलता देख कामुक

कान्ह धैर्य्य च्युत हुआ। इसके उपरान्त जब उसे रूपवती के पिता की मृत्यु और उसके भाई आनन्द के प्राणदण्ड से दण्डित होने का समाचार मिला, तब उसके आनन्द की सीमा न रही। नराधम ने मन ही मन कहा, कि अब अनाथा रूपवती मेरी है; इच्छा करते ही जिस दिन चाहूंगा, उस दिन अपनी पाप वृत्ति चरितार्थ कर सकूंगा।

कामुक कान्ह के पञ्जे में फँसी हुई रूपवती कान्ह द्वारा अपने पिता और भाई की दण्डाज्ञा का समाचार पा अत्यन्त विह्वल थी। उसने भोजन और निद्रा परित्याग कर दिन-रात रोना आरम्भ किया था। अधिक दुःख उसे इस बात का था, कि उसके पिता और भाई का कोई सहायक न था। जिस दिन उसे अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला, उसी दिन उसे यह भी मालूम हो गया, कि उसके प्रति कान्ह के मनोभाव अच्छे नहीं। उसकी उस महाविपद् में उसका एक ही सहायक था। वह सहायक और कोई नहीं; कान्ह का दूर का सम्बन्धी उस समय का उसका नौकर देवीदयालु नामक एक ब्राह्मण बालक था। इस सुन्दर और बलिष्ठ बालक की अवस्था उस समय कोई सोलह वर्ष की थी। रूपवती की दुर्दशा का हाल जान उसके प्रति वह विशुद्धान्त करण से सहानुभूति प्रकाशित किया करता था। अपने पिता की मृत्यु का समाचार पा रूपवती जब अत्यन्त व्यथित हुई, तब उसे धैर्य्य दिलाने के लिये देवीदयालु ने बहुतेरी बातें कहीं। फिर; कल सन्ध्या समय कान्ह द्वारा अपने भाई के प्राण-दण्ड की आज्ञा पाने का समाचार पा जब रूपवती मूर्छिता हो भूमि पर गिरी, तब देवीदयालु ने ही उसके मुख पर जल

छिड़क उसमे चैतन्योदय किया और इसके उपरान्त उससे धैर्य देने वाली बहुतेरी बातें कही। उसी समय देवी से रूपवती ने कान्ह के चरित्र के प्रति अपनी आशङ्का प्रकट की। इसे सुन देवी के क्रोध की सीमा न रही। उसने रूपवती से कहा,—"मैं बालक हूं सही, किन्तु आवश्यकता होने पर तुम्हे मै इस पापिष्ठ के पाप से बचाने का पूर्ण प्रयत्न करूंगा।"

कान्ह जिस कमरे में सोता था, उसके समीप का एक कमरा रूपवती को रहने के लिये दिया गया था। उस कमरे के समीप के एक बरामदे में देवीदयालु के सोने का स्थान था। उस दिन पिछली रात्रि को जब नाहर के साथ रूपवती का भाई आनन्दस्वरूप इस मकान मे आया और कान्ह के प्रश्न करने पर उसे आनन्द ने अपने पास बुलाया, तब अनिद्रा के कारण जागती हुई रूपवती ने अपनी कोठरी से अपने भाई को कण्ठस्वर केवल सुना ही नहीं; वरन् पहचान भी लिया। कान्ह के नीचे जातेही रूपवती ने अपनी कोठरी से निकल सोते हुए देवीदयालु को जगा कहा,—"बड़े ही आश्चर्य की बात है!"

देवी—क्या बात?

रूपवती—अभी किसी ने कान्ह को पुकारा और उससे मिलने के लिये वह नीचे गया है। जिस मनुष्य ने कान्ह को पुकारा है, वह और कोई नहीं, मेरे भाई आनन्द-स्वरूप है।

देवी—यह तुमने कैसे जाना?

रूपवती—मैने उनके स्वर से मालूम किया।

देवी—क्या वैसा कण्ठस्वर और किसीका हो नहीं सकता?

रूपवती—नहीं। मुझे निश्चय है, कि यह कण्ठस्वर मेरे भाई का ही है।

देवी—तुम्हारा अनुमान यदि सत्य है, तो तुम्हें आनन्दित होना चाहिये; कारण, तुम्हारे भाई के यहां आने से एक तो यह प्रकट होता है, कि उनकी प्राण-रक्षा हुई; इसी के साथ-साथ यह भी स्थिर हुआ, कि तुम अनाथा थीं; अब बहुत कुछ सनाथा हुईं।

रूपवती—तुम्हारी यह बात ठीक है; किन्तु मेरे मन में एक आशङ्का उत्पन्न हुई है।

देवी—कैसी आशङ्का?

रूपवती—मुझपर कान्ह की कुदृष्टि है। मेरे भाई को देख कान्ह अपनी पाप-प्रवृत्ति चरितार्थ करने में घोर बाधा समझेगा। ऐसी दशा में वह ऐसा यत्न करेगा, जिससे यह बाधा उसके सामने से दूर हो जाये।

देवी—कान्ह यह बाधा कैसे दूर कर सकता है?

रूपवती—बड़ी ही आसानी से। पिछली रात के अन्धकार और निस्तब्धता में मेरे भाई जिस तरह इस मकान में आये हैं, उससे स्पष्ट प्रकट होता है, कि छुटकारा पाकर नहीं; कैदखाने से भाग करही आये हैं।

देवी--अब मैं समझ गया। तुम्हारे भाई को कोतवाली भेज देते ही कान्ह के सामने की यह बाधा दूर होजायेगी। किन्तु रूपवती! कान्ह क्या ऐसा नीच कर्म्म कर सकेगा?

रूपवती—मेरी समझ में कान्ह इससे भी अधिक नीच कर्म्म कर सकता है। मेरे पिताजी कहा करते थे, कि कामान्ध के लिये जगत् का कोई भी कार्य्य अकार्य्य नहीं।

देवी—तब तुम मुझे क्या करने के लिये कहती हो?

तुम्हारे भाई और तुम्हारी रक्षा के लिये मुझे यदि प्राण तक विसर्ज्जन करना पड़े, तो मैं करने के लिये तय्यार हू।

रूपवती–तुम नीचे जा गुप्तभाव से यह देखो, कि कान्ह और मेरे भाई के बीच क्या बातें होती हैं और मेरे भाई से कान्ह कैसा व्यवहार करता है।

देवी यह बात सुन दबे पैर नीचे चला गया। रूपवती अपनी कोठरी में जा बैठी। कुछ समय के उपरान्त रूपवती के द्वार पर किसी का पद शब्द हुआ। रूपवती समझ गई, कि यह पद शब्द देवी का नहीं; कान्ह का था। कान्ह अल्प समय के लिये रूपवती के द्वार पर ठहर अपनी कोठरी में चला गया। उसने जैसे ही अपनी कोठरी का द्वार बन्द किया, वैसे ही रूपवती के द्वार पर अत्यन्त मृदु एक आघात हुआ। यह आघात देवी के हाथ द्वारा किया गया था। रूपवती अपनी कोठरी से निकल आई। उसे ले देवी अपने बरामदे में पहुचा। उस समय आकाश में प्रत्यूष का प्रकाश फैलकर बढ रहा था; वायु में शीतला आ गई थी।

उस बरामदे में पहुच देवी और रूपवती ने अत्यन्त मृदुस्वर में बातचीत आरम्भ की।

रूपवती–क्यों,–क्या समाचार है?

देवी–तुम्हारा अनुमान सत्य है।

रूपवती–कैसे?

देवी–तुम्हारे भाई अकेले नहीं, एक मनुष्य के साथ हैं। इन्हीं के साहाय्य से वह कैदखाने से निकल भागे हैं। कान्ह ने इन दोनों को कौशल से नीचे के तहखाने में बन्द कर बाहर से तहखाने के द्वार पर ताला लगा दिया है।

रूपवती–इस तरह यह दोनो मनुष्य उस तहखाने में

कैद कर दिये गये है।

देवी—हाँ।

रूपवती-कान्ह अपनी कोठरी में है। तुम्हारे आने से पहले लौट कर आया है। इस में सन्देह नही, कि वह कोतवाली जाने की तय्यारी कर रहा होगा।

देवी-यह बात असम्भव नहीं। तुम्हे पाने के लिये कान्ह तुम्हारे भाई और उसके साथी को पकड़वा दिया चाहता है।

रूपवती-किन्तु इस दुरात्मा का यह दौरात्म्य होने न पायेगा। हम दोनो कान्ह को रोक नही सकते। इसलिये हमें उचित है, कि हम किसी तरह आनन्द और उनके साथी को उस तहखाने मे निकाल दे।

देवी-यह बात बड़ी ही आसानी से हो सकती है। मेरे पास इस मकान के बहुतेरे तालो की तालियो का एक गुच्छा है। तहखाने के द्वार पर जो ताला बन्द है; मेरी समझ में उसकी ताली मेरे इस गुच्छे मे होगी। फिर; यदि उसकी ताली न भी मिलेगी, तो हर्ज नही; मै वह ताला तोड़ डालूगा।

यह सुन बालिका रूपवती ने बड़ी ही करुणाव्यञ्जक दृष्टि से देवी का मुह देख कहा,—"देवी दयालु! इस समय तुम यदि मेरे भाई की प्राण-रक्षा करोगे, तो मै आजन्म तुम्हारा उपकार मानूगी।"

रूपवती का वह मुख देख और उसकी वह बात सुन तरुण देवी के हृदय मे विविध भाव उत्पन्न हुए। उन्हें दमन करने में असमर्थ हो उसने रूपवती का हाथ पकड़ कहा,—"रूपवति! तुम्हारे और तुम्हारे भाई के लिये मैं

प्राणविसर्ज्जन करने को प्रस्तुत हूं। मेरी प्रार्थना यह है, कि मैं अनाथ बालक हूं, समय उपस्थित होने पर तुम मेरी अङ्गसङ्गिनी बन मुझे संसार-ताप से बचाने का यत्न करो।"

देवीदयालु की यह बात सुन रूपवती ने लज्जा से अपना शिर झुका लिया। देवी कुछ देरतक रूपवती को देख अन्त मे एकाएक बोला,-"अब हमे विलम्ब करना न चाहिये, अब भी कुछ अन्धकार है; इस अन्धकार का प्रश्रय ले हमे उन दोनो को कैदखाने से छुड़ा देना चाहिये।

रूपवती-मै भी तुम्हारे साथ चलती हूं।

दोनो उस बरामदे से चल उस तहखाने के द्वार पर आये। देवी के पास के उस ताली के गुच्छे की एक ताली उस तहखाने के द्वार पर लगे ताले में लग गई। उस तहखाने का प्रथम द्वार खुला। जिस ताली से पहला ताला खुला था, उसी ताली से दूसरा ताला भी खुल गया। देवी ने वह दूसरा द्वार फुरती से खोल दिया।

इस द्वार के खुलते ही उस तहखाने में बन्द नाहर और आनन्द चौंक उठे।

देवी-आपलोग यथा सम्भव शीघ्र ऊपर आयें।

यह कह रूपवती के साथ देवी ऊपर आया। उसके पीछे-पीछे नाहर और आनन्द भी ऊपर आया। ऊपर के उस दालान मे पहुच प्रात काल के धुँधले प्रकाश में रूपवती और आनन्द ने एक दूसरे को पहचाना। रूपवती दौड़कर अपने भाई की गोद मे जा पड़ी और प्रेमाश्रु विसर्ज्जन करने लगी। आनन्द भी अपनी आखो का जल सवरण कर न सका; अपनी बहन की गरदन पर टप-टप अश्रुजल टपकाने लगा।

देवी–किन्तु इस समय विलम्ब करने से हम सब बड़ी विपद् में पड़ेंगे। हमें यथासम्भव शीघ्र आगे का अपना कर्त्तव्य निर्द्धारण कर उसके अनुसार कार्य्य करना चाहिये।

नाहर ने भी इस बात का अनुमोदन किया। देवी ने अत्यन्त संक्षेप में रूपवती द्वारा आनन्द के पहचाने जाने से उनके छुटकारा पाने तक का सम्पूर्ण विवरण कह सुनाया। इसे सुन नाहर ने कहा,–"मैं सब बातें समझ गया। अब तुम यह बताओ, कि इस मकान में कितने नौकर है?"

देवी-मेरे सहित चार।

नाहर–अवशेप तीनो नौकर कहाँ हैं?

देवी—दो नौकर द्वार पर सोते हैं; वह दोनो वहीं होंगे। तीसरा नौकर इस मकान को नीचे की मञ्जिल में सोता है। इस मे सन्देह नहीं, कि इस समय वह सोया होगा।

नाहर—यदि यह बात है, तो हमें यथासम्भव शीघ्र इस मकान की उस कोठरी मे चलना चाहिये, जिसमें इस समय कान्ह है। देवोदयालु! तुम उस कोठरी का द्वार खुलवाना; अवशेष कार्य्य मैं सम्पन्न करूँगा।

यह चारो उस दालान से चल उस मकान की दूसरी मञ्जिल की एक कोठरी के द्वार पर पहुचे। यह द्वार भीतर से बन्द था। देवी के इस पर आघात करते ही भीतर से कान्ह ने पूछा,—"कौन है?"

देवी—मैं हूं;–देवीदयालु।

कान्ह—इस समय क्या काम है?

देवी—शीघ्र द्वार खोलिये; बड़ाही प्रयोजनीय काम है।

कान्ह ने अपनी उस कोठरी का द्वार खोल दिया।

यह द्वार अभी अच्छी तरह खुलने भी न पाया था; ऐसे समय नाहर ने इस कोठरी मे घुस एक हाथ से कान्ह की गरदन पकड़ दूसरे हाथ से अपनी कटार कान्ह की छाती पर रख दी। कान्ह चीत्कार किया चाहता था; नाहर ने अत्यन्त गम्भीर भाव से कहा,-"कान्ह! यदि तूने किसी प्रकार की भी ध्वनि की, तो मैं तुझे मार डालूगा। कई मनुष्यो की रक्षा करने के लिये एक दुष्ट का वध करने मे मुझे तनिक भी सङ्कोच न होगा। जिस तरह पशु या कुत्ता मारा जाता है, उसी तरह तू इसी क्षण मारा जायेगा।"

कायर कान्ह के मन में भय का सञ्चार हुआ। उसने अपने को सम्पूर्ण विवश पा नाहर से गिड़गिड़ा कर कहा,-"मेरी प्राण-रक्षा कीजिये, मैं आपके कथनानुसार ही कार्य्य करूगा।"

अब देवी, आनन्द और रूपवती यह तीनो भी इस कोठरी में आ गये। इसका द्वार भीतर से बन्द कर दिया गया। इन सबको देख कान्ह अपनी उस दुर्दशा का कारण अच्छी तरह समझ गया।

नाहर—(कान्ह से) रे दुर्वृत्त! क्या तुझे भगवान् का भय नही;—यमदण्ड का त्रास नही? हम दोनो को दुराचार यवनो के हाथ दे तू अपनी पुत्री के वयस की इस अनाथा बालिका पर अत्याचार करने चला था?

कान्ह—मैं आप लोगों को यवनों के हाथ दिया न चाहता था। यह बात आप से किसने कही?

नाहर-दुष्ट! यह बात तेरे इस परिच्छद ने कही। जिस समय तू हमारे पास तहखाने में गया था, उस समय प्राय विवस्त्र था। इस समय तू बाहर निकलने के परि-

च्छद में है। सच बता यह परिच्छद धारण कर तू इस समय कहां जाने पर उद्यत हुआ था?

कान्ह—मैं-मैं-अपने एक सम्बन्धी के यहां जाया चाहता था।

नाहर—हम लोगों से तू आध घण्टे में लौटने का वादा करके यहां आया था; आध घण्टा बीतने पर भी हमारे पास क्यों न गया?

कान्ह-मै-मैं—"

नाहर—चुप नीच। एक पाप के छिपाने के लिये मिथ्याभाषण कर और पाप न कर। अब मैं जो बातें कहता हू, उन्हें तू सुन।

कान्ह—मैं सुन रहा हूं।

नाहर—तू अपने नौकरों को बुला उनसे कह, कि तेरे घर मे कितने ही अतिथि आया चाहते हैं; उनकी सेवा मे वह सब प्रवृत्त हों। तेरे यह बात कह चुकने पर अपने आठ साथियो के साथ मैं इस मकान में आ रहूंगा। दो दिन हम लोग इस मकान में रहेंगे। कल सन्ध्या समय हम यह मकान परित्याग कर तुझे अपने साथ ले इस नगर से यात्रा करेंगे। इस नगर से कोई बीस कोस दूर जा हम तुझे छोड़ेंगे। इस समय से उस समय तक तू हमारे पहरे में रहेगा। चौबीसो घण्टे तेरी बगल में एक सशस्त्र सिपाही का पहरा रहेगा। जैसे ही तू अपने नौकरों या राह के किसी मनुष्य से हमारा भेद खोलने के लिये मुंह खोलेगा, वैसे ही तेरी बगल का वह सशस्त्र सिपाही तेरे पेट में समूचा छुरा भोंक तुझे पशु की तरह मार डालेगा। हम लोगों के हाथ से छुटकारा पाने के उपरान्त लाहोर

लौट यदि तू हमारे पीछे सरकारी सिपाहियों को लगायेगा, तो भी तू बच न सकेगा; तेरी हत्या कर दी जायेगी।

कान्ह-(हाथ जोड़ कर) मेरी प्राण-रक्षा कीजिये; आपने जैसा कहा है, मैं वैसा ही करूँगा।

नाहर-यदि यह बात है, तो तू अपने तीनो नौकरों को इस खिड़की के नीचे बुला उनसे यह कह दे, कि तेरे घर कितने ही अतिथि आनेवाले हैं और वह सब उनकी सेवा करने के लिये तय्यार रहें।

नाहर के कथनानुसार कान्ह ने अपने नौकरों को बुला उनसे यह बात कह दी। उस समय सूर्य्योदय न होने पर भी प्रातःकाल का प्रकाश फैल गया था। लाहौर नगर जाग उठा था; उससे कल-कल ध्वनि उत्पित होने लगी थी। यह देख नाहर ने आनन्द से कहा,—"आनन्द! तुम मेरी यह कटार ले इस दुष्ट कान्ह के समीप बैठो; तुम्हारी बिना अनुमति के यह यदि उठने का भी यत्न करे, तो निःसङ्कोच इसकी हत्या कर डालो। मैं बाहर जाता और अपने आठ साथियों के साथ शीघ्र ही वापस आता हूं। जब तक मैं वापस न आऊँ, तब तक तुम कान्ह का पहरा दो।"

यह कह नाहर उस मकान से निकल उस सराय में पहुंचा, जिसमें अपने साथियों के साथ उसने डेरा डाला था। राह और सराय में नाहर को सविशेष हलचल दिखाई दी। जगह-जगह यवन सिपाही और सवार घूमते दिखाई दिये। उस सराय में नाहर को देख अर्ज्जुन उसके समीप गया।

अर्ज्जुन-अन्नदाताजी! आपके लौटने में विलम्ब होने

से मै अत्यन्त चिन्तित था। मेरे साथियों ने आपके सम्बन्ध में कितने ही प्रश्न किये; किन्तु मैंने उनके किसी प्रश्न का कोई उत्तर न दिया।

नाहर-अच्छा किया।

अर्ज्जुन-आज प्रातःकाल से इस नगर में बड़ी हलचल है। कल उस युवक के कैदखाने से भागने और काजी के मारे जाने से सारे नगर में फौजी सिपाहियो का पहरा बैठ गया है। नगर से बाहर जानेवालो की बड़ी जाच हो रही है। नगर के मुसलमान हाकिम उस युवक के पकड़ने का बडा यत्न कर रहे हैं।

नाहर-किन्तु उनके इस यत्न का कोई फल न होगा। उस युवक का नाम आनन्दस्वरूप है और वह इस समय अत्यन्त सुरक्षित है।

अर्ज्जुन—आपके आने से कुछ समय पहले कितने ही सिपाहियो के साथ कोतवाली का एक अफसर यहां आया था। उसने हम लोगो के आने का कारण और हमारी सख्या पूछी। इस पर जैसे ही मैंने आप का और महाराज यशवन्तसिंह का नाम लिया, वैसे ही वह सन्तुष्ट हो यहां से चला गया।

नाहर-अच्छा हुआ। अर्ज्जुन! अपने सात साथियो के साथ तुम मेरे साथ चलो। हम लोग कल सन्ध्या को यह नगर परित्याग करेंगे। इस अवसर में तुम आठो मनुष्यो के साथ मै इस सराय में न रह समीप के एक मकान में रहूंगा। आनन्द भी वहीं है।

अल्प समय के उपरान्त अपने आठ कम्पावत वीरो के साथ नाहर उस मकान में पहुंचा। इस मकान के नौकरों

ने नाहर और उसके साथियो का यथोचित सम्मान किया। इस मकान के नीचे की मञ्जिल की कई सुप्रशस्त और सुस-ज्जित कोठरियों में नाहर के साथियो का डेरा पड़ा। अब एक वीर के साथ नाहर ऊपर की उस कोठरी में पहुचा वहा उसने आनन्द को कान्ह के पहरे से हटा उस वीर को उस कार्य्य में नियुक्त कर कहा,—"तुम अपना छुरा अपने हाथ में रखो, कान्ह का कोई भी कु-भाव देख इसकी हत्या कर डालो। चार चार घण्टे के उपरान्त पहरा बदला जायेगा। इस कोठरी का द्वार भीतर से सदा बन्द रखो।"

यह कह नाहर आदि उस कोठरी से निकल उसकी बगल की कोठरी में जा बैठे। सब से पहले आनन्द के गले आदि का कड़ा काटा गया; उसकी पोशाक बदली गई। उस समय इस मकान और इसकी कुल चीजो पर नाहर का अधिकार था। वह अपने साथियो के साथ अत्यन्त निर्भीक भाव से इस मकान में बैठ घर जैसा सुख उपभोग करने लगा।

दोनो दिन सकुशल बीते। दूसरे दिन सन्ध्या को सदलबल नाहर ने इस नगर से विदा होने की तय्यारी की। आनन्द, रूपवती, दीनदयालु और कान्ह इस दल में सम्मिलित कर लिये गये। आनन्द का वर्ण, रूप और परिच्छद बदल दिया गया। वह नाहर के साथियो में मिल गया। काजी की हत्या के उपरान्त से इस नगर से जानेवाले मनुष्य इसके सिर्फ एक फाटक से निकलने पाते थे, और इस फाटक पर कितने ही फौजी अफसर अवस्थान कर प्रत्येक यात्री को अच्छी तरह देखते और उसका परि-चय प्राप्त करते थे।

खदलबल नाहर के इस फाटक पर पहुचने पर एक फौजी अफसर उसके समीप आया। उसने पूछा,-"आप लोग कौन हैं और कहा जाते हैं ?"

नाहर—मे राजपूत हूं और मेरा नाम नाहर है। यह सब मेरे साथी है। मै स्वदेश से अपने महाराज काबुल के सूबेदार श्रीमान् यशवन्तसिंह की सेवा में जा रहा हू।

नाहर का नाम सुनते ही वह अफसर चौका। उसने ससम्भ्रम कहा,—"क्या वही नाहर ! जिन्होने शेर को पराजितकर भारत-सम्राट् से नाहर उपाधि पाई है ?"

नाहर—वही नाहर।

अफसर—आप हमारे सम्राट् के प्रियपात्र हैं; आपको इतनी देर भी रोककर मैने अपराध किया है। इसके लिये आप मुझे क्षमा करेंगे। बात यह है,-जनाब ! परसों रात्रि को इस नगर का एक कैदी काजी साहब का खून कर निकल भागा है। उसी के पकड़ने के लिये हमलोग इतनी सावधानी से नगर से जानेवाले प्रत्येक यात्री की देखभाल कर रहे हैं। आशा है, कि मेरे कर्त्तव्यपालन के लिये मुझसे आप असन्तुष्ट हुए न होंगे। अच्छा; आपने अपनी यह यात्रा प्रात काल आरम्भ क्यों न की ?

नाहर—उत्ताप की अधिकता से इन दिनो यात्रा करने में दिनको बड़ा कष्ट और रातको बड़ी सुविधा होती है। इसीलिये मैं दिनको नहीं; रात्रिको अपनी यात्रा आरम्भ किया करता हूं। अब से तीन दिन पहले जब मै इस नगर में आया था; तब रात्रिको यात्राकर प्रात काल यहाँ पहुचा था।

अफसर—आप जा सकते हैं।

वह अफसर नाहर को सलाम कर पीछे हट गया।

सदलबल नाहर लाहोर नगर से बाहर निकला। उस समय कान्ह नाहर के एक सिपाही के साथ एक ऊट पर सवार था। राह में किसी से वह अपने सङ्कट का समाचार प्रकाशित कर न सका। इस नगर से बाहर निकलने पर आनन्दस्वरूप को जो आनन्द हुआ, उसका वर्णन किया जा नही सकता। उसकी बहन रूपवती को यह देख परम सन्तोष हुआ, कि आनन्द की प्राण-रक्षा हुई।

अपनी दूसरी मञ्जिल से तीसरी मञ्जिल की यात्रा आरम्भ करने से पहले लाहोर से कोई सोलह कोस दूर एक जनशून्य मैदान में नाहर ने कान्ह को छुटकारा दिया। कान्ह के वापस लौटने से पहले उससे नाहर ने कहा,—"कान्ह! अब तुम लौट जाओ; किन्तु जाने से पहले इतना सुन जाओ, कि लाहोर पहुच यदि तुम आनन्द की बात प्रकाश करोगे, तो मारडाले जाओगे। और एक बात है, कान्ह! इनदिनों हिन्दू-जाति जितना मुसलमानों द्वारा कष्ट नही पाती, उतना अपने विभीषणो द्वारा कष्ट पाती है। तुम हिन्दू-जाति के विभीषण हो। हिन्दू-जाति के शत्रु अच्छे; किन्तु विभीषण अच्छे नही। तुम से मेरा अनुरोध है, कि या तो तुम मुसलमान हो हिन्दू-जाति के शत्रु हो जाओ; या गले में रस्सी बाँध आत्महत्या कर लो; विभीषण न बनो। बहुतेरे विभीषणों ने हिन्दू-जाति का बड़ा अपकार किया है। सच तो यह है, कि प्रथम वैदेशिक सिकन्दर का भारताक्रमण भारतीय विभीषणो के प्रादुर्भाव ही से हुआ और मुसलमानो का भारत-साम्राज्य भारतीय विभीषणो ही की कृपा का फल है। भारत अब घोर पतन को प्राप्त हुआ है; हिन्दू जाति अब अत्यन्त पददलित

हो चुकी है; ऐसी दशा में भारत और हिन्दू जाति के अधिक पतन के लिये अब और किसी विभीषण का प्रयोजन नहीं। आशा है, कि तुम भविष्यत् मे इस जाति के विभीषण न बनोगे।

कान्ह वापस गया। सदलबल नाहर आगे बढा। राह मे रूपवती और देवीदयालु के बीच का प्रेमानुराग देख आनन्द की अनुमति ले इन दोनो को नाहर ने वैवाहिक सूत्र में आवद्ध करा दिया। देवी और रूपवती से नाहर ने कहा,—"अभी तुम दोनो मेरे साथ रहो। जब मै कावुल से लौट स्वदेश पहुचूगा, तब तुम्हें भूमि दे तुम्हारी जीविका का स्थायी प्रबन्ध कर दूंगा।" आनन्द ने नाहर का साथ छोड़ सिख-धर्म्म ग्रहणकर सिखों के दल मे मिल जाने की इच्छा प्रकट की। इसपर उसे नाहर ने कहा,—"इस समय इस बात का प्रयोजन नही। तुम्हे मै अपना अन्यतम पुजारी बनाता हू। मेरी भूमि में कितनेही देव-मन्दिर हैं। प्रत्येक मन्दिर के लिये ग्राम दिये गये हैं। स्वदेश लौट ऐसे ही किसी मन्दिर का तुम्हें मै पुजारी नियुक्त करूँगा। इस समय तुम भी मेरे साथ कावुल चलो।"

पञ्चदश परिच्छेद।

कावुल के सूवेदार।

उस समय के कावुल और वर्त्तमान कावुल में अधिक परिवर्त्तन नही हुआ है। वनाच्छादित पर्व्वतमालाओके बीच अवस्थित कावुल नगर जैसा उस समय था, वैसा ही आज भी है। कावुल के अधिवासी भी प्राय वैसे ही हैं। परलोकगत अफगान अमीर अब्दुररहमान के शासन काल से वर्त्तमान कावुल के शासन कार्य्य में थोड़ा परि-

वर्त्तमान हो गया है सही; किन्तु काबुल के अफगानो के स्वभाव में वैसा कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ है। अफगान जाति वही ही मूर्ख, स्वाधीनताप्रिय और वीर है। कठोर शासन-दण्ड के सामने अवनत होती; कोमल शासन-नीति देखते ही घोर उच्छृङ्खलता और औद्धत्य प्रकाश करती है। अफगानस्थान के भूतपूर्व अमीर अबदुर्रहमान का शासन-दण्ड अत्यन्त कठोर था; इसलिये उसके सामने अफगान जाति अवनत हुई; वर्त्तमान अफगान-अमीर हबीबुल्लह-खा का शासन-दण्ड कुछ शिथिल है, इसलिये सुअवसर पाते ही औद्धत्य प्रकाश किया करती है। मुगल-सम्राट्-गण के समय भी इस जाति का यही हाल था। अकबर, जहाँगीर, शाहेजहा आदि के समय यह जाति जैसा शासन-दण्ड अपने सामने पाती थी, वैसा ही अपना रूप प्रकाश करती थी। औरङ्गजेब के समय शासन दण्ड की शिथिलता देख अफगान-जाति कई बार अपना औद्धत्य प्रकाश कर चुकी थी। उसके इस कार्य्य से उससे औरङ्गजेब अत्यन्त असन्तुष्ट था। औरङ्गजेब ने मुसलमान द्रोही महाराज यशवन्तसिंह को जिन कारणो से काबुल भेजा था, अफगानो को महाराज यशवन्तसिंह द्वारा कठोर दण्ड दिलाना उनमें अन्यतम कारण था। महाराज यशवन्तसिंह ने काबुल पहुंचते ही अफगानो को कठोर दण्ड दे वश करलिया था।

गगन भेदी असख्य पर्व्वत मालाओ के बीच अवस्थित अफगानस्थान—राजधानी काबुल नगर जैसा इस समय है, प्राय वैसा ही उस समय भी था। इसमें सन्देह नही, कि अब की तरह तब काबुल नगर के किले में बिजली का प्रकाश होता न था और तोप—बन्दूक

के सरकारी कारखाने प्रतिष्ठित न थे; फिर भी; काबुल नगर जैसा आज है; वैसा ही उस समय भी था। बालाहिसार नामक इस नगर का किला जैसा आज है; वैसा ही उस समय भी था। आज की तरह उस समय भी वनाच्छादित पर्व्वतमालाओ के बीच काबुल नगर अवस्थित था; आज की तरह उस समय भी इस नगर के किनारे के एक उच्च गिरिशिखर पर बालाहिसार अवस्थित था। उस समय की तरह आज भी शीतकाल मे काबुल नगर की चारो ओर की भूमि और पर्व्वत हिमाच्छादित हो जाते थे; आज की तरह उस समय भी ग्रीष्मकाल में भी काबुल मे शीत अपना प्राधान्य दिखाया करता था। पहले का दुर्गम्य काबुल आज भी बहुत कुछ दुर्गम्य है; इसीलिये शताब्दि पर शताब्दि बीत जाने पर भी तब के काबुल और अब के काबुल में बहुत कुछ सादृश्य दिखाई देता है।

सदलबल और सपरिवार महाराज यशवन्तसिंह काबुल के किले में रहते थे। इस किले के द्वार और विविध स्थानों से मुसलमानों का नहीं; राठोरो का कठोर पहरा रहता था। इस किले के एक पार्श्व में कई सहस्र राठोर वीरों की एक सुदृढ छावनी थी। जिस पर्व्वत पर यह किला अवस्थित था, उसके तलस्थ के एक मैदान में काबुल नगर और इस पर्व्वत के बीच राठोरो और मुसलमानो की बहुत बड़ी एक सैन्य रहती थी। काबुल नगर में और उसके इर्द-गिर्द के सामरिक दृष्टि से प्रयोजनीय स्थानो में भी कितनी ही छोटी–बड़ी सैन्य थी। इन सब सैन्य में उच्च पद पर राठोर वीर प्रतिष्ठित थे। अपनी कार्य्य कुशलता से महा-

राज यशवन्त सिंह ने दुर्दण्ड अफगानो को भीत और अवनत बना दिया था। उस समय शान्ति पूर्व्वक अपनी जीवन-यात्रा निर्व्वाह करने ही में वह अपनी कुशल देखते थे।

जिस दिन हम कावुल प्रवेश करते हैं, उससे कई मास पहले सदलवल नाहर महाराज यशवन्तसिंह की सेवा मे पहुच चुका था। उसके पहुचने के कोई दो मास बाद राजकुमार पृथ्वीसिंह की मृत्यु का समाचार यशवन्तसिंह को मिला था। जिस समय महाराज को यह समाचार मिला, उस समय उनके मुह से एक भी शब्द और आखो से एक भी अश्रु—विन्दु निकला न था। कुछ समय तक उनकी देह स्पन्द व शून्य हो गई। इसके उपरान्त जैसे ही उन्हो ने ज्ञान लाभ किया, वैसे ही उनका मुख विवर्ण हो गया; उनके नेत्रो की ज्योति क्षीण हो गई। और एक बात हुई। यह समाचार पाने के उपरान्त जिस समय महाराज उठ कर चले, उस समय लोगों ने देखा, कि उनकी सीधी कमर झुक गई थी। कुछ समय पहले वयोवृद्ध यशवन्तसिंह युवक जान पड़ते थे; कुछ समय के उपरान्त वह सत्तर वर्ष के वृद्ध जान पड़ने लगे। उसी दिन पीड़ित हो महाराज यशवन्तसिंह शय्याशायी हुए। उनकी यह पीड़ा बढ़ती गई। आज कई मास बीत जाने पर भी महाराज का कोई वैद्य महाराज की इस पीड़ा को घटाना तो घटाना; स्थिर करने का भी कोई उपाय उद्भावित कर न सका था।

सन् १६८१ ई० के वसन्त काल की एक मनोहारिणी सन्ध्या उपस्थित थी। कावुल के दुर्ग बालाहिसार के अन्त पुर की सबसे ऊंची मञ्जिल के अत्यन्त सुसज्जित एक बड़े कमरे में रोग जीर्ण महाराज यशवन्तसिंह सोने के

पाये के एक सुन्दर पलग पर लेटे थे। उनके समीप उनकी कितनी ही रानिया और परिचारिकायें खड़ी थीं। उनके समीप ही चादी की एक छोटी चौकी पर नाहर वैठा था। नित्य की तरह आज भी सन्ध्या को महाराज अपने पलग पर मसनद और तकियो के साहाय्य से वैठा दिये गये थे। उनकी वगल की खिड़किया खोल और उनके बहुमूल्य परदे हटा दिये गये थे। उन खिड़कियो से सहस्र सहस्र हाथ ऊचे विविध वृक्ष तथा पुष्पो से परिपूर्ण गिरि-शृङ्गों से टकराता अविच्छिन्न वायु-प्रवाह आ रहा था। किसी-किसी चिरतुषाराच्छादित गिरिशिखर का स्पर्श करने के कारण यह प्रवाह कुछ अधिक शीतल था। इस कमरे में वैठे मनुष्यो को इन खिड़कियों की ओर देखने से वड़े ही मनोरम; बड़े ही विचित्र दृश्य दिखाई देते थे। दिखाई देता था, कि उस स्थान से सहस्र-सहस्र हाथ नीचे काबुल नगर की नयनाभिराम उपत्यका थी; उससे आगे वन था और उससे भी आगे एक विशाल पर्वत माला; इस पर्वत-माला के पीछे पर्वत-मालाओ का सागर था; उस स्थान से चारो ओर जहाँ तक दृष्टि जाती थी, वहा तक नीचे पर्वतमालायें और ऊपर आकाश दिखाई देता था। अस्ता-चल गामी सूर्य्यदेव की छूटी हुई लालिमा उस विशाल और रङ्गीन दृश्य को और भी रङ्गीन वना रही थी।

व्याधि से जर्ज्जरित महाराज यशवन्तसिंह की दृष्टि, इन दृश्यो की ओर थी। कुछ ही मास की अस्वस्थता से उनका शरीर अत्यन्त जीर्ण हो गया था। इधर कुछ दिनो से वह इतने जीर्ण हो गये थे, कि विना किसी का साहाय्य लिये अपने बल से करवट भी वदल न सकते थे। उनकी

जो भुजा कृपाण ग्रहण कर शत्रुदल का मथन किया करती थी, उस भुजा में उठने की भी शक्ति रह न गई थी। उन का कण्ठस्वर अत्यन्त क्षीण हो गया था। बड़ी कठिनता से वह वार्त्तालाप कर सकते थे। देर तक अपने सामने के दृश्यो को देख महाराज यशवन्तसिंह ने अत्यन्त मृदुस्वर में कहा,—"नाहर !"

नाहर—महाराज !

यशवन्त-नैसर्गिक विविध शोभा सम्पन्न मेरे सामने के यह दृश्य कितने मनोहर हैं ?

नाहर-इसमें सन्देह नही, कि इनकी छटा नयनानन्द दायिनी है।

यशवन्त-यह चिरकाल से ऐसे ही मनोहर हैं; भविष्यत् में भी ऐसे ही मनोहर रहेंगे, केवल इन्हे देखने वाले आते और चले जाते हैं; आयेंगे और चले जायेंगे।

नाहर-और अन्त में खण्ड प्रलय उपस्थित होने पर यह दृश्य भी महाप्रकृति की महालीला में मिल जायेंगे।

यशवन्त-(कुछ समय तक निस्तब्ध रहकर) अफगानस्थान की यह भूमि आज म्लेच्छों से परिपूर्ण है सही; किन्तु अब से पहले इस भूमि पर हिन्दुओ का प्राधान्य था। आरम्भ में अलकजन्धर ने आ इस भूमि के हिन्दुओं को पहले-पहल सन्त्रस्त और विपद्ग्रस्त किया, इसके उपरान्त मुसलमान आक्रमणकारियों ने वारवार आ यहा के अधिवासियो को बल पूर्वक मुसलमान बनाया। क्यो नाहर ! क्या हिन्दुओ की इस मनोहर भूमि पर हिन्दुओ का पुनराधिकार हो नहीं सकता ?

नाहर-भगवान् के राज्य में सभी बातें हो सकती हैं।

यशवन्त—किन्तु जब तक हिन्दू-जाति के घोर पाप का प्रायश्चित्त पूरा न होगा, तब तक यह कैसे होगा ?

नाहर—क्यो महाराज ! क्या इस प्रायश्चित्त की कोई अवधि नही ?

यशवन्त-अवधि क्यो नहीं ? जिसका आदि है, उसका मध्य और अन्त अवश्य है । मेरी समझ में अति या अधिकता ही अन्त की सूचना है । इस समय हिन्दू-जाति का भीषण प्रायश्चित्त हो रहा है । मेरी समझ मे अब इसका अन्त होना आवश्यक है ।

नाहर—इसमें सन्देह नहीं, कि इस समय भारत में मुसलमानो का प्रबल प्रताप है ।

यशवन्त—यह बात मै अस्वीकार नहीं करता । ऐसा न होता, तो मेरे हृदय का रत्न पृथ्वीसिंह एक अनाथ बालक की तरह मारा कैसे जाता ? जिस बालक का पिता यशवन्त था, जिस बालक की पीठ पर मरुभूमि के कठिनप्राण और अत्यन्त वीर लक्ष-लक्ष राठोर थे, उस बालक का वध एकाएक कैसे हो जाता ? इसमे किसी का दोष नही; हिन्दू-जाति के अदृष्ट का दोष है । जिस पृथ्वीसिंह का हृदय हिन्दुओ के प्रेम से परिपूर्ण था; उस पृथ्वीसिंह की हठात् अकाल मृत्यु हो गई । (दात पीसकर) और दुःख है, कि इस दुर्घटना के उपरान्त ही मैं कठिन पीड़ा से पीड़ित हो शय्या-शायी हुआ । यह पीड़ा जाने के लिये नही; मुझे इहलोक से परलोक भेजने के लिये उपस्थित हुई है । यदि मैं और कुछ भी समय तक जीवित रहता, तो अपने इस हृदय-रत्न के चूर चूर कर डालने के पाप का बदला इस पापिष्ठ यवन से अवश्य लेता ।

नाहर—(एक दीर्घ निश्वास परित्याग कर) हाय! मैं यदि औरङ्गजेब के नेत्रों की उस पैशाचिक ज्योति का मर्म्म समझ सकता, तो पृथ्वीसिंह को दिल्ली में छोड़ यहाँ क्यों आता? काल बड़ा ही बली होता है, राजन्! वह किसी के मन की होने नहीं देता; अपने मन की क्रिया करता है। जो होना था; हो गया; बीती बात की चिन्ता करना बुद्धिमान् का काम नहीं। अब आप पृथ्वीसिंह की मृत्यु का शोक मन से निकाल स्वस्थ-सबल हो एक बार फिर कार्य्यक्षेत्र में अवतीर्ण होने का यत्न करें।

यशवन्त—नाहर! अब मै इहलोक में नहीं; परलोक में कार्य्यक्षेत्र में अवतीर्ण हूंगा। यहाँ का मेरा कार्य्य समाप्त हो चुका है। अपने जीवन में मैने जो हिन्दू सेवा की है, उससे इस समय मेरे मन को बड़ा सन्तोष हो रहा है। इस समय मेरे लिये असन्तोष की बात केवल इतनी है, कि मै पृथ्वीसिंह के खून का बदला ले न सका।

नाहर—महाराज! आप इतने अधीर न हो; भगवत् कृपा से आप एक बार फिर आरोग्य लाभ कर सकते हैं।

यशवन्त—नहीं, नाहर! तुम अपना भ्रम दूर करो; इस बात का विश्वास करो, कि मेरी यह शय्या रोग-शय्या न हो; मृत्यु-शय्या है। मै आरोग्य कैसे हो सकता हू? मेरे काबुल आने के उपरान्त काबुल की शीतल जल-वायु ने मेरे वृद्ध शरीर मे श्वास रोग उत्पन्न कर दिया था। यह रोग मेरी देह को बहुत जीर्ण कर चुका था। इसके उपरान्त ही एकाएक मुझे पृथ्वीसिंह की मृत्यु का समाचार मिला। इस समाचार ने मेरी छाती फाड़ दी; मेरा मेरुदण्ड तोड़ दिया। इस समय मै कहने को जीवित हू सही, किन्तु

मेरी देह में जीवनी शक्ति नहीं। ऐसी दशा में मेरे नवजीवन लाभ की प्रत्याशा कैसे की जा सकती है?

नाहर—फिर भी, महाराज! हमें भगवान् की दया पर विश्वास करना चाहिये; उनकी दया से असम्भव सम्भव हो सकता है।

महाराज यशवन्तसिंह ने नाहर की इस बात का कोई प्रत्युत्तर न दिया। इस बातचीत मे सान्ध्य-प्रकाश मिटा; रात्रि का अन्धकार प्रकट हुआ। वनाच्छादित पर्वतमालाओ से घिरे काबुल का नैश अन्धकार बड़ा ही प्रभावशाली होता है। रात्रि का अन्धकार उपस्थित देख उस कमरे में कपूर की बत्तियाँ जलाई गईं, खिड़किया बन्द की गईं और महाराज यशवन्तसिंह मसनद से हटाये जाकर एकबार फिर अपने पलग पर लिटा दिये गये। महाराज के साथ आये उनके इष्टदेव के मन्दिर मे सान्ध्य आरति होने लगी। डङ्का, घड़ी-घण्टा और शङ्ख की ध्वनि होने लगी। इस ध्वनि से सारा बालाहिसार और काबुल नगर का एक अश गूजने लगा। महाराज ने अपनी शय्या पर पड़े रह हाथ जोड़ और नेत्र मूद अपने इष्टदेव को प्रणाम किया। अल्पक्षण तक अस्फुट स्वर में कुछ प्रार्थना भी की, जिसे उस कोठरी में उपस्थित मनुष्य समझ न सके।

सान्ध्य अभिवादन का कृत्य समाप्त हो जाने पर महाराज यशवन्तसिंह ने कहा,—"नाहर!"

नाहर—मै आपके समीप बैठा हू।

यशवन्त—कुछ और समीप आओ।

नाहर ने अपनी चौकी महाराज के और समीप कर ली।

यशवन्त—नाहर! मैं तुम्हें एक समाचार दिया चाहता हूं।

नाहर—कैसा समाचार, महाराज ?

यशवन्त—यह रात्रि मेरे जीवन की अन्तिम रात्रि है।

यह बात सुन पाषाण विगलित हुआ; नाहर के दोनों नेत्रों से अविरल वारिधारा बहने लगी।

यशवन्त—नाहर ! यह क्या करते हो ? शीघ्र अपना अश्रु-जल पोंछो। तुम्हारे नेत्रों में जल देख स्त्रियाँ उच्च-स्वर से क्रन्दन करने लगेंगी। समूचे दुर्ग में, इसके उपरान्त सम्पूर्ण काबुल में मेरे जीवन के सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें प्रचारित हो जायेंगी। इसका फल अच्छा न होगा। दुर्द्दमनीय काबुली निर्भय हो जायेंगे।

नाहर—(अपना अश्रुजल पोंछ) यह आपने कैसा समाचार सुनाया ?

यशवन्त—इस समाचार को भ्रमात्मक न समझना। मैंने अपने शरीर की दशा देखकर ही तुम से यह बात कही है।

नाहर—क्या मै राजवैद्य को बुलवाऊ ?

यशवन्त—इसका कोई प्रयोजन नहीं। तुम जानते हो, कि इधर कुछ समय से मैंने औषधि-सेवन परित्याग कर दिया है। तुम्हें मैंने यह समाचार इसलिये दिया है, कि मै अपनी अन्तिम यात्रा करने से पहले एक प्रयोजनीय बात किया चाहता हूं।

नाहर—मैं महाराज की बातों को ध्यानपूर्वक सुन रहा हू।

यशवन्त—तुमसे यह कहना व्यर्थ है, कि औरङ्गजेब मुझे अपना घोर शत्रु समझता है।

नाहर—मैं यह बात बहुत अच्छी तरह से जानता हूं।

यशवन्त—आरम्भ में औरङ्गजेब मुझे प्रेम और श्रद्धा की दृष्टि से देखा करता था, हिन्दू भावापन्न दारा को भारत-

सिंहासन दिलाने के लिये उज्जैन के समीप जिस समय औरङ्गजेब की सैन्य से मैंने युद्ध किया, उस समय से मेरे और उसके बीच शत्रुता उत्पन्न हुई। यह शत्रुता इस समय बहुत बड़े एक वृत्त में परिणत हुई है। इसी के फल से मैं स्वदेश से इतनी दूर के इस काबुल को भेजा गया हूं और मेरा सुयोग्य पुत्र पृथ्वीसिंह अनाथ की तरह मार डाला गया है।

नाहर—मैं इन सब बातों से अवगत हूं।

यशवन्त—औरङ्गजेब के मन में इतने समय की सञ्चित मेरे प्रति की इस शत्रुता का प्रभाव मेरी मृत्यु के उपरान्त मेरे सन्तान पर भी प्रकट हो सकता है। जिस समय औरङ्गजेब मेरी मृत्यु का समाचार पायेगा, उस समय वह अतीव निरङ्कुश और निर्भय हो मेरे अवशेष दोनो पुत्रो को मरवा या मुसलमान बनवा मारवाड़ पर अधिकार करने का यत्न कर सकता है।

नाहर—औरङ्गजेब के लिये कोई भी कार्य्य अकार्य्य नहीं।

यशवन्त—कोई भी कार्य्य अकार्य्य नही। विशेषत मेरे और मेरे सम्बन्धियो के प्रति कुव्यवहार करने में औरङ्गजेब किसी तरह का भी सङ्कोच कर नही सकता। ऐसी दशा में, नाहर! मुझे इस बात की बड़ी चिन्ता है, कि मेरी मृत्यु के उपरान्त मेरे सम्बन्धियो का क्या होगा; मेरे मारवाड़ की क्या दशा होगी।

नाहर—सुनिये, महाराज! आपको इस बात की कोई चिन्ता करना न चाहिये। जिन सर्व्वरक्षक हरि ने मारवाड़ की इतने दिनों से रक्षा की है, वही सर्व्वशक्तीश्वर जगन्नियन्ता आगे भी मारवाड़ की रक्षा करेंगे। पापमय शासन कार्य्य बहुत दिनोतक नही चलता। हमें इस बात का विश्वास

करना चाहिये, कि काल पाकर पापिष्ठ औरङ्गजेब समूल नष्ट हो जायेगा और मारवाड़ एकबार फिर सुख शान्ति के साहाय्य से मधुर हास्य करेगा।

यशवन्त—तुम्हारी यह बात सत्य हो सकती है। यदि अन्त मे धर्म्म की जय हुआ करती है, तो समय उप-स्थित होनेपर मारवाड़ की जय अवश्य होगी। फिर भी; मुझे चिन्ता इस बात की है, कि इस आसन्न विपद् से मेरे सम्बन्धी और मारवाड़ कैसे रक्षा पा सकेगा।

नाहर—क्या मारवाड़ राठोरों से शून्य हो गया है?

यशवन्त—यह बात नहीं। मुझे चिन्ता इस बात की है, कि मेरी मृत्यु के उपरान्त मारवाड़ के राठोर अनाथ हो जायेंगे। मेरे जेष्ठ पुत्र अजित्‌सिंह की अवस्था इस समय बहुत थोड़ी है। इस समय जब वह अपनी ही रक्षा कर नहीं सकता, तब दूसरों की रक्षा क्या करेगा? जबतक अजित्‌सिंह ज्ञानलाभ कर अपनी और राठोरो की रक्षा करने में समर्थ न होगा, तबतक मारवाड़ के राठोरो से परिपूर्ण रहने पर भी मारवाड़ की रक्षा कौन करेगा?

नाहर—महाराज! भगवान् की इच्छा से मारवाड़ पर यदि ऐसा सङ्कट उपस्थित होगा ही, तो उसकी रक्षा आ-पके नमक से पले आपके सरदार करेंगे; आपकी ही जागीरें भोगनेवाले आपके सम्बन्धी करेंगे।

यशवन्त—मुझे भी ऐसी ही आशा है। किन्तु मै चाहता हू, कि मेरे जो सम्बन्धी और सरदार इस समय मेरे पास हैं, वह सब मेरे सम्मुख इस बात की प्रतिज्ञा करें।

नाहर—आप की आज्ञा होते ही इस बात की व्यवस्था की जायेगी।

पर उद्यत हुआ था; किन्तु शोक है, कि मैं ऐसा कर न सका। फिर भी; मुझे दिखाई देता है, कि मेरे इस यत्न का कुछ न कुछ फल अवश्य उत्पन्न हुआ है। दक्षिण में महाराष्ट्रों, राजपूताने में राजपूतों और पञ्जाब में सिखों का उत्थान मेरी इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। मुझे विश्वास है, कि आज हो या दश दिन बाद यह उत्थान बड़ा ही पुष्ट रूप धारण करेगा और सुअवसर पातेही भारत की मुसलमानो की शक्ति की जड़ सदा के लिये काट देगा। (एक दीर्घ निश्वास परित्यागकर) यह शुभ समय मैंने अपने चर्मचक्षु से देखने का यत्न किया था; किन्तु देख न सका। भगवान् की ऐसी ही इच्छा थी; इसके सम्बन्ध में उत्सुकता प्रकाश करनेका कोई फल नहीं। वीरगण ! तुम सौभाग्यशाली हो; इसीलिये तुम अपना कर्तव्य प्रतिपालन कर सके और मैं अभागा अपना कर्तव्य प्रतिपालन कर न सका। जो होना था; हुआ; बीती बात के सम्बध में चिन्ता करना वृथा है। वीरगण ! इतने समय की तुम्हारी कर्त्तव्यपरायणता देखकर ही आज तुमपर मैं और एक गुरु कार्य्यभार रखनेपर उद्यत हुआ हू। आशा है, कि तुम इसे स्वीकार कर मुझे सन्तुष्ट करोगे।

कई सरदार—महाराज हमें इस कार्य्य के सम्बन्ध में निःसङ्कोच आज्ञा प्रदान करें।

यशवन्त—वीरगण ! मैं तुम्हें आज्ञा प्रदान किया नहीं चाहता; वर तुम में तुम्हारे कर्त्तव्यज्ञान का उद्रेक किया चाहता हू। जिस मारवाड़-सिंहासन की तुमने इतने समय से रक्षा की है, वह मारवाड़-सिंहासन इस समय विपद् की घनघटा से आच्छन्न हुआ चाहता है। तुम जानते हो,

कि मेरे ज्येष्ठ और समर्थ पुत्र पृथ्वीसिंह की मृत्यु हो चुकी है और मैं कठिन रोग से आक्रान्त हो शय्याशायी हुआ हूं। मृत्यु अवश्यम्भाविनी है, यदि किसी समय मेरी मृत्यु हो गई, तो मेरा कौन उत्तराधिकारी होगा; मेरे बाद कौन मारवाड-सिंहासन पर बैठ मरुदेश का शासन-कार्य्य परिचालन कर सकेगा?

महाराज का यह प्रश्न सुन उस कमरे मे एकत्र सभी सरदारों की दृष्टि ज्येष्ठ राजकुमार अजित्‌सिंह की ओर गई। कितने ही सरदारोंने महाराज की इसबात के प्रत्युत्तर में कहा,—"राजकुमार अजित्‌सिंह।"

यशवन्त—तुम्हारी यह बात सत्य है। मेरी मृत्यु के उपरान्त मेरा जेठ पुत्र अजित् ही मारवाड-सिंहासन लाभ कर सकेगा। किन्तु अजित् इस समय बालक भी नही, शिशु है। कोई और समय होता, तो शिशु अजित् मारवाड का शासन-कार्य्य परिचालन कर सकता। किन्तु इस समय मारवाड पर औरङ्गजेब की बड़ी ही क्रूर दृष्टि है। ऐसे समय अजित् मारवाड का शासन कार्य्य परिचालन कर न सकेगा। ऐसी दशा मे, वीरगण! मै तुम्ही से पूछता हूं, कि मारवाड का क्या परिणाम होगा,—इस प्राचीन राज-वंश ही का क्या परिणाम होगा?

बहुतेरे सरदार—जबतक हम जीवित हैं, तबतक मारवाड से आप के राज-वंश का लोप होने न देंगे।

यशवन्त—मेरे बाद इस राज वंश और मारवाड की रक्षा का भार तुम पर अर्प्पित करने के लिये ही तुम्हें मैंने इस समय अपने समीप बुलाया है।

बहुतेरे सरदार—हम यह भार सहर्ष ग्रहण करते हैं।

यशवन्त—यदि यह बात है, तो तुम सब सरदार अपने हाथ के खड्ग को साक्षी कर इस बात की प्रतिज्ञा करो, कि मेरे उपरान्त तुम अजित् और मारवाड़ की औरङ्गजेब के आक्रमण से रक्षा करोगे ।

इस पर वहां के सब सरदारो ने अपने-अपने खड्गपर हाथ रख उच्चस्वरसे प्रतिज्ञा की, कि हम इन दुर्गा को साक्षी कर कहते हैं, कि जब तक हम में और हमारे साथियो की देह मे प्राण रहेगा, तबतक हमलोग शत्रुपक्ष के सब तरह के आक्रमण से मारवाड़ और अजित् की रक्षा करेंगे ।

यशवन्त-वीरगण ! और एक बात है । मेरा देहान्त होने के उपरान्त तुमलोग मेरे इन दोनो पुत्रो को ले यथा सम्भव शीघ्र काबुल से मारवाड़ पहुचने का यत्न करना । औरङ्गजेब या उसके सिपाहियो के बाधा देने पर भी राह में कहीं न रुकना । बस, तुमसे मुझे और कुछ नहीं कहना है । तुम सदा एक रहना; हिन्दुओ को एक होनेका उपदेश देना ।

इस पर कितने ही सरदारो ने कहा,—"ऐसाही होगा।"

इस के उपरान्त महाराज यशवन्तसिंह अत्यन्त सतुष्ट हो एकाएक निस्तब्ध हुए । अधिक समय तक बोलने से उनको मूर्च्छा आ गई । यह देख नाहर ने राजवैद्यो को बुलाया । उस कोठरी मे एकत्र सरदार मूर्च्छित महाराज को प्रणामकर वहां से चले गये ।

इस घटना के उपरान्त से महाराज यशवन्तसिंह विषम ऊर्द्ध स्वास से आक्रान्त हुए । पिछली रात्रि को उनकी यह पीड़ा और बढ़ी । दूसरे दिन प्रात काल भगवान् का नाम लेते हुए महाराज यशवन्तसिंह ने अपनी इहलीला सबरण की । महाराज यशवतसिंह की मृत्यु होते

ही अन्त पुर मे कुहराम पड गया। रानियाँ और उनकी असख्य दासिया उच्चस्वर से क्रन्दन करने लगी। अन्त पुर का यह दु खद समाचार समूचे दुर्ग में; इसके उपरान्त समस्त काबुल और इसके भी उपरान्त समग्र अफगानस्थान में प्रकाशित हो गया। सुसमाचार के फैलने में कुछ समय लगता है; दुःसमाचार के फैलने में कुछ भी समय नही लगता।

इस तरह वृन मारवाड-रवि हिन्दू हितव्रत नरेश की मृत्यु हुई। यह कहने का प्रयोजन नही, कि मारवाड के नरेशो में महाराज यशवन्तसिंह असाधारण थे। उन में बहुतेरे गुण थे, उन मे बडी शक्ति थी, उनका हृदय बहुतेरे उच्च विचारो का आकर था। बडे ही स्वाधीन भावों को अपने हृदय में ले वह मारवाड-सिंहासन पर बैठे थे और बहु सख्यक असाधारण कार्य्य सम्पन्न करने के उपरान्त उन्होने इहलोक से यात्रा की। इस में सन्देह नहीं, कि महाराज यशवन्तसिंह के बहुतेरे कार्य्यो में समय ने यदि कुछ भी साहाय्य दिया होता, तो भारत का इतिहास और का और हो गया होता। कुछ ऐतिहासिको ने महाराज यशवन्तसिंह के चरित्र के बहुतेरे दृश्यो को अपदृश्य बताया है। हम इस बात से उतने सम्मत नही। चारित्रिक अपदृश्यो को किसी तरह का प्रश्रय देना हमारा धर्म्म नही। फिर भी; हम एक बात अवश्य कहेंगे। जिस समय महाराज यशवन्तसिंह अपने लीला-क्षेत्र में अवतीर्ण हो विविध लीलाये सम्पन्न कर रहे थे, उस समय काल-पात्रादि के विचार से उनके चरित्र सम्बन्धीय बहुतेरे दृश्यो का अपदृश्य बन जाना नितान्त स्वाभाविक था। इसके लिये

केवल महाराज यशवन्त ही दोषी ठहराये जा नहीं सकते। उस समय औरङ्गजेब भारत-सिंहासन पर था। अकबर, जहाँगीर और शाहेजहाँ की सञ्चित सम्पूर्ण राजकीय शक्ति को औरङ्गजेब ने हिन्दुओं के विरुद्धाचरण में व्यय करना आरम्भ किया था। राजकीय आज्ञाएं सन्दिग्ध दृष्टि से देखी जाती थीं। और तो क्या;—औरङ्गजेब के आत्म-सम्बन्धी भी औरङ्गजेब के कार्य्य और बातों पर विश्वास स्थापित कर न सकते थे। ऐसी दशा मे महाराज यशवन्त का औरङ्गजेब की ओर से श्रद्धारहित हो जाना कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। असीम असाधारण राजशक्ति द्वारा किये गये कपट-व्यवहार का प्रतिफल महाराज यशवन्त ने वैसेही व्यवहार द्वारा प्रदान किया था। किसी उदार हृदय वीर पुरुष का व्यक्ति विशेष के प्रति कपटाचरण होने से उसके कर्त्ता के प्रति दोषारोपण करने के बदले उसके कारण की ओर दृष्टिपात करना चाहिये। आत्मरक्षा, मानरक्षा और महाबल सम्पन्न शत्रु से प्रति-शोध लेने के समय बहुतेरे मनुष्यों ने बहुतेरी तरह के उपाय अवलम्बन किये हैं। ऐसी दशा में महाराज यश-वन्तसिंह के चरित्र में जो, अपदृश्य दिखाई दिये, उनके लिये वह सर्वथा निन्दनीय समझे जा नहीं सकते। महाराज यशवन्त बहुसख्यक आदरणीय और प्रशसनीय गुणों से विभूषित थे। उनका मन जिस जातीय प्रेम से परिपूर्ण था, उसकी सीमा निर्द्धारित करना कठिन है। इस प्रेम का कुछ परिचय उनके विविध कार्य्यों को देख प्राप्त किया जा सकता है। इनमें कितने ही कार्य्यों के करते समय महाराज यशवन्तसिंह ने अपनी विपुल सम्पत्ति, प्राचीन

वेशाल राज्य, बहुमूल्य प्राण और प्राण से भी प्रिय न का भी ध्यान न किया। महाराज यशवन्त हिन्दुओं उत्कर्ष साधन के लिये सदा चिन्तित रहते थे; मृत्यु के ाय भी उनको यदि किसी बात की चिन्ता थी, तो हि-ओं के उत्कर्ष की थी। जातीयता के राग-रङ्ग से रञ्जित ावन्त अपने सर्वस्व को एक दाव पर लगाकर भी हिन्दू-ति के उद्वार की बाजी खेला करते थे। सिवा इसके वह ग्राप्रेमी थे; गुणग्राही थे; शिल्पादि के आश्रयदाता थे। समय कोई विशेष सङ्कट उपस्थित होने पर देशभर हिन्दू महाराज यशवन्तसिंह की ओर प्रत्याशापूर्ण दृष्टि देखा करते थे; महाराज यशवन्तसिंह की मृत्यु से समग्र के हिन्दुओं के मर्म्म को व्यथा पहुंची।

दूसरे ही दिन महाराज यशवन्तसिंह की अन्त्येष्टि क्रिया ापन्न हुई। महाराज की कितनी ही रानियां महाराज साथ सती हुई। राजकुमार अजितसिंह की और राज ार दलस्तम्भनसिंह की मातायें भी सती होने पर उद्यत । बहुसंख्यक राठोर सरदारों ने उन्हें ऐसा करने न दिया।

तृतीय दिन प्रातःकाल शिशु अजित्‌सिंह राठोर सर रों द्वारा मारवाड़-सिंहासन के लिये वरित किये गये र इन कार्य्य के उपरान्त ही कोई पांच सौ राठोर दोनों जकुमारों तथा राजमाताओं को ले काबुल परित्याग कर रतवर्ष की ओर चले। इनके साथ विविध रथ, हाथी, अश्व ा कोई डेढ़ सहस्र भृत्य तथा अन्यान्य कर्म्मचारी चले।

राठोरों ने गुप्त रीति से इस यात्रा की तय्यारी की र एकाएक वह काबुल परित्याग कर इस यात्रा में वृत्त हुए। एक मुसलमान कर्म्मचारी अस्थायी रूप से

अफगानस्थान का सूबेदार बनाया गया। जिस समय राठोरो ने यह यात्रा आरम्भ की, उस समय उसने उनसे मुस्कुराकर कहा,--"तुम लोग बिना शाही आज्ञा के जाते हो। मेरी समझ मे तुम्हे अपने इस कार्य्य के लिये पश्चात्ताप करना होगा।"

षष्टदश परिच्छेद।

सिन्धु किनारे।

भारत और अफगानस्थान की नैसर्गिक सीमा सिन्धु-नद के किनारे अटक के समीप औरङ्गजेब का एक मीरुल-बहर या नौ-सेनापति रहता था। सिन्धु मे जितने सरकारी डोंगे रहते थे, वह सब इस नौ-सेनापति की ही आज्ञा से परिचालित होते थे। सिन्धु नद के किनारे एक ऊँचे स्थान मे इस नौ-सेनापति का मट्टी का एक किला था। इस किले में कोई दो हज़ार सिपाहियो की एक फौज थी। यह फौज इस नौ-सेनापति के आधीन थी। सिवा इसके इस अञ्चल मे कोई दो हजार पहरेदार और सरकारी मल्लाह थे। यह सब भी इस नौ-सेनापति के ही आधीन थे।

इस किले के गिर्द छोटी सी एक बस्ती थी; उसमे छोटा सा एक बाजार था। इस किले के समीप तथा दूर के घाटो मे बहुसख्यक डोंगे रहते थे। इनमें कितने ही डोंगे गश्ती सिपाहियो के होते थे। यह सब अपने डोंगो मे सवार हो चारो ओर गश्त लगा यह देखा करते थे, कि बिना उस नौ-सेनापति की अनुमति के कोई मनुष्य गुप्त रूप से अफगानस्थान की ओर से भारत या भारत की ओर से अफगानस्थान जाने न पाये। इस नौ-सेनापति का

यह किला भारत की ओर नहीं, अफगानस्थान की ओर था। अफगानस्थान से भारत आने या भारत से अफगानस्थान जानेवाले काफिले इसी किले के नीचे से होकर आते-जाते थे। यह नौ-सेनापति प्रत्येक काफिले से यथोचित कर लिया करता था।

एक दिन तीसरे पहर यह नौ-सेनापति अपने उस किले के एक बुर्ज में बने एक बँगले में बैठा था। उसके दाहने और पीछे कल-कल रव पूर्वक बहता सिन्धु-नद और सामने एक विशाल अनुर्वर मैदान और इसके उपरान्त वृक्षविहीन पहाड़ियाँ थी। इन पहाड़ियों के पीछे पर्वत थे और इन पर्वतों के पीछे सम्पूर्ण अफगानस्थान में फैले हुए विशाल–विराट् पर्वत सागर का एक पार्श्व था।

यह नौ सेनापति एक चौकी पर बैठा अपने सामने की उन पहाड़ियों की ओर देख रहा था, ऐसे समय उसे उन पहाड़ियों के पीछे से निकल उस किले के दाहने जाता कोई दो सहस्र मनुष्यों का बहुत बड़ा एक काफिला दिखाई दिया। इसे देख यह चकित हुआ। अफगानस्थान से किसी काफिले के आने से पहले उसके आगमन का समाचार आता था। यह काफिला बिना समाचार के कैसे आया?

इसने अपने समीप के एक सिपाही को आज्ञा दी, कि वह किसी सवार को भेज इस काफिले का हाल जाने। कुछ समय के उपरान्त इस किले से भेजा गया सवार समाचार ले वापस आया। यह सवार उस नौ-सेनापति के सामने उपस्थित किया गया। इसे देख उसने पूछा,—"यह किसका काफिला है?"

सवार—हुजूर! यह काफिला नहीं; परलोकगत महा-

राज यशवन्तसिंह के राजकुमारों की सवारी है। इन मृत महाराज के सरदार अपने राजकुमारों और राजमाताओं को अपने साथ ले अफगानस्थान से भारत लौट रहे हैं।

नौ-सेना०—हूं। किसकी आज्ञा से ?

सवार—यह मैं नहीं जानता।

नौ-सेना०—तुम्हें जानना चाहिये था। अच्छा कोई परवा नहीं। मेरा घोड़ा तय्यार हो; मेरे साथ चलने के लिये बीस सवार तय्यार हों।

कोई एक घण्टे के उपरान्त बीस सवारों के साथ वह नौ-सेनापति राठोरों के दल के समीप पहुंचा। उस किले से कोई पौन कोस दूर एक उच्च भूमि की बगल में राठोरों की छावनी बन रही थी। पशुओं और रथों पर से डेरे, खीमे और असबाब उतारे जाकर यथास्थान प्रतिष्ठित किये जा रहे थे। कितने ही खीमे खड़े किये जा चुके थे; कितने ही खड़े किये जा रहे थे।

एक राठोर सरदार से उस नौ-सेनापति ने कहा, कि मैं तुम्हारे प्रधान अफसर से भेंट किया चाहता हूं। यह सुन उस राठोर ने नाहर को उस नौ-सेनापति के सामने ला खड़ा किया। नाहर को आपादमस्तक देख उससे इसने पूछा,—"क्या तुम्हीं इन राठोरों के प्रधान अफसर हो ?"

नाहर—तुम अपना काम बताओ। तुम्हारा नाम क्या है और तुम कौन हो ?

इस पर उस नौ-सेनापति ने कुछ समय तक निस्तब्ध रह कहा,—"मैं इस नद का मीरूलबहर हूं। मेरा नाम नूरखां है। मैं तुम से यह पूछने के लिये आया हूं, कि तुम लोग किसकी आज्ञा से सिन्धु पार किया चाहते हो ?

नाहर-तुम घोड़े से उतर बैठो, तो तुम से मैं बातें करूँ।

नूर--मैं तुमसे बातें करने नहीं; सिर्फ अपने प्रश्न का उत्तर लेने के लिये आया हू।

नाहर—बात यह है, कि काबुल के सूबेदार जिन महाराज यशवन्तसिंह की आज्ञा से अफगानस्थान के काफिले भारत आया करते थे, उन्हीं महाराज यशवन्तसिंह की अन्तिम आज्ञा के अनुसार उनके दोनो राजकुमारो को अपने साथ ले हम अफगानस्थान से भारत वापस लौट रहे हैं।

नूर-क्या उनका हस्ताक्षरित और मुहर किया हुआ आज्ञापत्र तुम्हारे पास है ?

नाहर—नहीं। महाराज को यह मालूम न था, कि उनके राजकुमारो से यह आज्ञापत्र मागा जायेगा; इसी लिये अपने अन्तिम समय मे उन्हो ने इसके लिखने का कष्ट न किया।

नूर-मतलब यह, कि तुम्हारे पास ऐसा कोई आज्ञापत्र नहीं।

नाहर-नहीं।

नूर-ऐसी दशा में तुमलोग सिन्धुनद पार करने न पाओगे।

नाहर—क्या ?

नूर-वही जो मैंने कहा।

नाहर—महाराज यशवन्तसिंह के पुत्र वर्त्तमान मारवाड़पति महाराज अजितसिंह के सिन्धुपार करने में कौन बाधा उपस्थित करेगा ?

नूर-मै बाधा उपस्थित करूँगा। जब तक शाहशाह की आज्ञा न मिलेगी, तब तक मैं तुमलोगो को सिन्धुपार करने न दूगा।

में पहुंचा। वहाँ उसने नूर से भेंट को। नूर उस समय कितने ही मुसलमानों के साथ बैठा था। नाहर को देख उसने कुछ चिढ़कर कहा,—"तुम इस समय यहा क्यों आये हो ?"

नाहर—तुम से भेंट और बातचीत करने के लिये तुम्हारे पास जो मनुष्य आता है, उससे क्या तुम इसी तरह बातचीत किया करते हो ?

नूर—क्या तुम मेरे पास मुझ से यही पूछने आये हो ?

नाहर—नहीं। मैं तुम से एक आवश्यक बात कहने आया था; तुमने अपने व्यवहार से मुझे पहिले यही प्रश्न करने पर बाध्य किया ?

नूर-तुम यदि मुसलमान होते, तो सुव्यवहार के अधिकारी होते; एक काफिर के साथ मै किसी तरह का सुव्यवहार किया नहीं चाहता।

नाहर-तुम्हारे इस व्यवहार और भाषण का समाचार यदि भारत-सम्राट् औरङ्गजेब को मिलेगा, तो वह तुम्हें क्या कहेंगे ?

नूर—एक दीनदार सम्राट् अपने एक दीनदार कर्म्मचारी के सम्बन्ध में जो कुछ कह सकता है, भारत-सम्राट् मेरे सम्बन्ध में वही कहेंगे।

नाहर-अच्छा; इस बात को जाने दो। इस समय तुम्हारे पास मैं बड़े ही प्रयोजनीय एक कार्य्य से आया हूं।

नूर-क्या कार्य्य ?

नाहर-हमारे महाराज अजितसिंह शीघ्र ही सिन्धुनद पार कर भारत-सम्राट् औरङ्गजेब के समीप पहुंचा चाहते हैं। उनकी आज्ञा हुई है, कि हमलोग यथा सम्भव

शीघ्र नद पार करें।

नूर-(मारे क्रोध के अपनी जगह से उठकर) कसम खुदाय पाक की; तुम सब घोर विपद् में पड़ा चाहते हो; तुम सब पर बगावत का अपराध आरोपित हुआ चाहता है।

नाहर-खा साहब! जरा धीर चित्त से बातें करो; हम लोगों का सम्राट् औरङ्गजेब के पास जाने के लिये इस नद का पार करना; हमारा बगावत करना कैसे समझा जा सकता है?

नूर-(उच्च स्वर से चीत्कार कर) अवश्य समझा जा सकता है। मेरी आज्ञा के विरुद्ध तुमलोगों का एक कदम भी उठाना, बगावत करना समझा जायेगा। तुम सब अपनी राजपूती पर भूले हो; किन्तु यहाँ तुम्हारी राजपूती चल न सकेगी। मेरे पास कोई पाँच हजार जवान हैं; इनमें कोई तीन हजार सिपाही हैं। सिवा इसके इस किले के बुर्ज पर तोपे चढ़ी है। तुम सब यदि बगावत करोगे तो बड़ा ही कठोर दण्ड पाओगे।

नाहर-खा साहब! तुम छोटी सी बात को इतना क्यों बढ़ाते हो? हम सब बगावत भी किया नहीं चाहते, कठोर दण्ड भी भोगना नहीं चाहते। हमारे महाराज ने जो बात कही थी, वह तुम से मैंने कह दी। दुःख है, कि उस बात का उत्तर देने के बदले तुम ने मुझे इतनी कठोर बातें सुनाई।

नूर-मैं तुम्हारे महाराज को भी नहीं जानता; तुम्हें भी नहीं जानता। इस समय तुम सब मेरे कैदी हो। कल प्रातःकाल में तुम्हारा समाचार भारत-सम्राट् की सेवा में भेजूगा। इसके उपरान्त तुम्हारे सम्बन्ध में मुझे भारत सम्राट् की जो आज्ञा प्राप्त होगी, मैं उसके अनुसार कार्य्य करूँगा।

इस अवसर में इस विषय में तुम लोगों की मैं कोई बात सुना नहीं चाहता। तुम यदि फिर ऐसी कोई बात सुनाने मेरे पास आओगे, तो मैं तुम्हें बगावत के अपराध में पकड़ इस किले में कैद कर दूंगा।

नाहर-नही, खा साहब! अब तुमको ऐसी बात सुनाने का कष्ट दिया न जायेगा। इस समय तुमने जो बातें कही हैं, वह मै अपने महाराज और उनके निकटवर्ती लोगो से कह दूंगा। तुम यदि नाराज न हो, तो मै एक प्रश्न करूँ।

नूर कोई उत्तर न दे नाहर की ओर देखने लगा।

नाहर-भारत सम्राट् की आज्ञा आने में कम से कम कोई बीस दिन का समय लगेगा। इस से पहले यदि हमारी रसद घट जायेगी, तो और रसद कहा से आयेगी?

नूर-इसकी चिन्ता तुम्हें नही; मुझे है। तुम सब मेरे कैदी हो; तुम्हारी रसद की चिन्ता मुझे है।

नाहर-जब यह बात है, तब इस विषय में अब मुझे कुछ नहीं कहना है। भगवान आप से शीघ्र ही फिर भेंट करायें।

यह कह नाहर नूर से विदा हो अपनी छावनी मे आया और उसने नूर की बातो का सारांश राठोर-सरदारो के सम्मुख उपस्थित किया। नाहर की यह बातें सुन कुछ राठोर-सरदार अत्यन्त चिन्तित हुए; कुछ अत्यन्त उत्तेजित हो उसी समय उस किले पर चढ जाने पर उद्यत हुए।

एक सरदार-हमें अभी किले पर चढाई कर नूर को पकड़ यथोचित दण्ड देना चाहिये।

इस पर एक वयोवृद्ध और प्रतिष्ठित राठोर-सरदार दुर्गादास नें अत्यन्त गम्भीरता पूर्वक कहा,-"वीरगण! यह

उत्तेजना दिखाने का समय नहीं; धैर्य्य पूर्वक कार्य्य करने का समय है। हमें अपने लिये नहीं; महारानियों और राजकुमारों की रक्षा के लिये इस समय शान्ति पूर्वक कार्य्य करना चाहिये। नाहरसिंह! तुम्हारी समझ में इस विपद् से उद्धार पाने का उपाय क्या है?"

नाहर—औरङ्गजेब की आज्ञा आने तक हमारे यहा ठहरने का कोई फल न होगा। कारण, औरङ्गजेब जो आज्ञा देगा, उसे हम सब अनुमान कर सकते हैं। औरङ्गजेब हमारी इस यात्रा का समाचार पा हमें सिन्धु के इस पार ही नष्ट करा डालने का यत्न करेगा। रह गया बल-पूर्वक सिन्धु पार करना। इसके सम्बन्ध में मेरा यह कहना है, कि ऐसा करने से हम पर औरङ्गजेब को बल प्रकाश करने का एक बहाना मिल जायेगा। वह कहेगा, कि तुम सब हमारे नौरे बङ्ग से लड़कर आये हो; इसलिये दण्डार्ह हो। यह कह वह हमें दण्ड देने का यत्न करेगा। फलत हम यहां रहें, चाहे सिन्धु पार करें, हमारी इन दोनो अवस्थाओं में औरङ्गजेब हमें नष्ट करने का यत्न करेगा। यहा रहने पर हम सरलता पूर्वक नष्ट हो जायेंगे, सिन्धु पार करने पर भगवत्कृपा से हम स्वदेश पहुच जाने पर नष्ट होने से बच जा सकते हैं। ऐसी दशा मे मैं यही उचित समझता हूं, कि हम लोग यहा न ठहर यथा सम्भव शीघ्र सिन्धु पार करें।

दुर्गादास—मैं तुम्हारे इस मत से सहमत हू। किन्तु प्रश्न यह है, कि हम लोग यह नद कैसे पार कर सकते हैं। एक ओर हम कोई पाँच सौ राठोर; दूसरी ओर कोई पाच सहस्र पठान हैं। उभय पक्ष में युद्ध होने पर हममें प्रत्येक

राठोर कट मरेगा सही; किन्तु हमारे केवल कट मरने से अजित् अपने पैतृक राज्य मारवाड़ कैसे पहुंच सकेंगे ?

नाहर—इसमें सन्देह नहीं, कि विपक्ष की संख्या अधिक और हमारी बहुत कम है। ऐसी स्थिति में हमें सिन्धु नद पार करने के लिये सम्मुख समर में प्रवृत्त न हो; कौशल से काम लेना चाहिये।

दुर्गादास–किस कौशल से ?

नाहर—इसके सम्बन्ध में मैं अभी कोई बात कह नहीं सकता। कारण, अभी तक मैं कोई बात स्थिर कर नहीं सका हूं।

दुर्गादास—इसमें सन्देह नहीं, कि यह विषय समय-सापेक्ष है।

नाहर–और हमारे पास उतना समय नहीं। फिर भी; इस काम के लिये हमे एक दिन का समय निकालना ही पड़ेगा। सच तो यह है, कि इस स्थान को बिना देखे कौशल से सिन्धु नद पार करने के सम्बन्ध मे मैं कोई बात कह नहीं सकता।

दुर्गादास–ऐसा ही हो। कल तीसरे पहर इस विषय की मीमांसा होगी। इसके उपरान्त उस दिन यह विषय स्थगित हुआ।

सप्तदश परिच्छेद।

कौशल।

दूसरे दिन प्रातःकाल नाहर अपनी छावनी से निकल सिन्धु नद के किनारे–किनारे उस ओर चला, जिस ओर से यह नद बह कर आता था। राह में कितने ही

स्थानों में ठहर उसने कितनी ही बातें ध्यान पूर्वक देखी। दो पहर को वह अपनी छावनी में वापस आया। वापस आने पर उसे यह देख बड़ा ही सन्तोष हुआ, कि उसकी कल की अन्तिम बातों से सन्तुष्ट हो नूर ने राठोरों की छावनी के पहरे की कठोरता बहुत घटा दी है। कल इस छावनी के गिर्द कोई एक सहस्र सिपाहियों का पहरा खड़ा किया गया था; आज इस छावनी के समीप कोई दो सौ सिपाहियों का पहरा था। यह पहरा भी इस छावनी की चारों ओर नहीं; केवल इस नद और किले के पार्श्व की ओर था। सिवा इसके कल इस छावनी के लोग इससे निकलने न पाते थे, आज वह सब अन्यान्य ओर जाने पाते, केवल नद की ओर जाने न पाते थे। इन सब बातों को देख नाहर को बड़ा सन्तोष हुआ।

तीसरे पहर इस छावनी के एक खीमे में राठोर-सरदारों की मन्त्रणा-सभा का फिर एक अधिवेशन हुआ। वयोवृद्ध दुर्गादास ने नाहर की ओर देख कर कहा,— "नाहर! कल के विषय के सम्बन्ध में आज तुम्हारा क्या कहना है?"

नाहर—मैंने सिन्धु नद पार करने की एक कल्पना की है। मेरी समझ में इस कल्पना के अनुसार कार्य्य होने से हम लोग अपेक्षाकृत सरलता पूर्वक नद पार कर सकेंगे।

इस पर कितने ही सरदारों ने अत्यन्त उत्सुक हो पूछा, कि यह कल्पना क्या है? दुर्गादास ने भी नाहर की ओर स्थिर दृष्टि से देखा।

नाहर—इस स्थान से कोई सवा कोस ऊपर यह नद अपेक्षाकृत सङ्कीर्ण तटों के बीच में बहता है। उस स्थान

मे नद-जल के बीच छोटा सा एक द्वीप है । यह द्वीप विविध वृक्षौं से परिपूर्ण है। इस किनारे से उस द्वीप तक का नद–जल बड़ाही छिछला है । अधिक से अधिक कमर तक जल है । उस द्वीप मे नद के दूसरे किनारे तक का जल अत्यन्त गहरा और बड़े वेग से बहता है । फिर; इस स्थान से कोई आध कोस दूर यानी इस छावनी और उस द्वीप के बीच मीरे बक्ष की अन्तिम चौकी है। इस चौकी में कोई पचीस सरकारी होंगे और कोई एक सौ छोटी–छोटी नावें हैं । अब मेरी कल्पना सुनिये। जिस जगह हमलोगो की यह छावनी है, उस जगह से अफगानस्थान की ओर की पहाड़ियाँ अधिक दूर नही। हमारी इस छावनी और इन पहाड़ियो के बीच कोई पहरा नही। हम लोगो को छोटे–छोटे दलो मे विभक्त हो अपनी छावनी से निकल इन पहाड़ियो के पीछे जाना और इनके पीछे ही पीछे चल उस स्थान तक पहुचना चाहिये, जिस स्थान में वह द्वीप है। वहाँ पहुंच हमें इन पहाड़ियो के पीछे से निकल नद–जल पार कर उस द्वीप तक पहुंचना चाहिये। यह कार्य्य अभी से आरम्भ करना चाहिये। सन्ध्योपरान्त हमारे एक दल को इन पहाड़ियों के पीछे से जा नावो की उस चौकी पर आक्रमण कर वहा की समस्त नावों पर अपना अधिकार कर उन्हें उस द्वीप तक पहुंचाना और उस द्वीप मे अवस्थित हमारे मनुष्यों को उन नावों में सवार करा द्वीप से नद के दूसरे किनारे पहुचाना चाहिये।

दुर्गादास—किन्तु—

नाहर—किन्तु जिस समय हम नावो पर अधिकार

करेंगे, उस समय कोलाहल होने से हमलोगो की गति-विधि के प्रकट हो जाने की आशङ्का है। इसके लिये हमे पहले ही से प्रस्तुत रहना चाहिये। इससे पहले ही इस छावनी के प्रत्येक मनुष्य और प्रयोजनीय सामान को इस छावनी से निकाल उस द्वीप मे पहुंचा देना चाहिये। जिस समय उन नावो पर आक्रमण हो, उस समय इस छावनी में सिर्फ दो सौ राठोर-योद्धा रहे। वह जैसे ही पहरे के सिपाहियो में हलचल देखे, वैसे ही इस छावनी से निकल इन पहरे के सिपाहियो और उस नावो की चौकी के बीच नद-गर्भ में अवस्थित हो जायँ और यह पहरे के सिपाही जब उस चौकी की ओर अग्रसर होने का यत्न करें, तब उन्हे मार-काट पीछे हटा दें। इसके उपरान्त यह राठोर-वीर धीरे-धीरे पीछे हट उस द्वीप के सामने पहुचे। उस समय तक एक ओर यदि नूर के सिपाही आ पहुचेंगे, तो दूसरी ओर द्वीप में अवस्थित हमारे अधिकाश मनुष्य नावो और डोगो में सवार हो नद के खर स्रोत के साहाय्य से नद के उस पार पहुच जायेंगे।

दुर्गादास—किन्तु जो दो सौ राठोर योद्धा नूर के सहस्र-सहस्र सिपाहियो के सम्मुख इस पार रह जायेंगे, उनका क्या होगा?

नाहर—उनकी रक्षा बड़ी ही आसानी से हो सकेगी। यह लोग उस द्वीप से एकाएक कुछ आगे बढ जायेंगे। उस समय इन लोगों और नूर की सैन्य के बीच वह द्वीप आ जायेगा। उस समय द्वीप मे बैठे कोई एक सौ राठोर नूर की सैन्य पर गोलियो की वृष्टि आरम्भ करेंगे। नूर की सैन्य इस एकाएक के आक्रमण से चकित होगी। उसी

समय इस किनारे के वह दोनो सौ राजपूत नदी-जल में घुस उस द्वीप में पहुंच जायेंगे। नूर की सैन्य उनके इस कार्य्य में यदि वाधा देगी, तो द्वीप मे बैठे वह राठोर नूर की सैन्य की यह वाधा भङ्ग करेंगे। मतलब यह, कि उस द्वीप में बैठे राठोरो की गोलियो का आश्रय ले यह दोनो सौ राजपूत उस द्वीप मे पहुचेंगे। वहा थोड़ी सी अवशेष नावें पहले ही से तय्यार रहेंगी। जैसे ही यह दोनो सौ राजपूत उस द्वीप में पहुचेंगे, वैसे ही उस द्वीप के समस्त राजपूत उन नावो में सवार हो नद के दूसरे किनारे पहुच अपने साथियो में मिल जायेंगे।

दुर्गादास—अच्छा; नूर ने यदि नावों द्वारा नद से और सैन्य द्वारा स्थल से हम पर आक्रमण किया, तोक्या होगा?

नाहर—यह असम्भव है। कारण; नूर को हमारा यथार्थ उद्देश्य पहले मालूम हो न सकेगा। वह यह समझ न सकेगा, कि हम क्या किया चाहते है। उस द्वीप में बैठे राठोरों को देखने के उपरान्त ही वह हमारा प्रकृत उद्देश्य समझ सकता है। किन्तु उस समय समय की सङ्कीर्णता से अपने उस किले के नीचे से नावें मँगा वह हम पर आक्रमण कर न सकेगा।

नाहर के इस प्रस्ताव पर वहुतेरे राठोर-सरदारों ने वहुतेरी तरह की शङ्कायें उपस्थित की। नाहर ने उन सब शङ्काओ का बड़ी ही सरलता से समाधान किया। अन्त में यह शङ्का उपस्थित की गई, कि इस तरह नद पार करने मे हम अपना वहुत सा माल-असवाव और पशु इस किनारे छोड़ जाने पर वाध्य होगे। इस पर नाहर ने कहा,—"इसमें सन्देह नही, कि हम अपने समस्त हाथी,

गड़े हुए खीमे, रथ आदि छोड़ जाने पर बाध्य होंगे; किन्तु इन सब के साथ ले जाने का कोई उपाय नहीं, हम यदि अपने राजकुमारो की और अपनी रक्षा किया चाहते है, तो हमे इन सबको परित्याग करना ही पड़ेगा।"

अन्त में नाहर की यह कल्पना सर्व्वसम्मति से स्वीकृत हुई। यह भी स्थिर हुआ, कि विलम्ब न कर इसी समय इस कल्पना के अनुसार कार्य्य आरम्भ करना चाहिये। सब से पहले दुर्गादास और उनके अधीनस्थ बीस राठोरो के साथ नाहर उस छावनी मे निकल उसके पीछे की पहाड़ियो के पीछे घुसा और कोइ दो घण्टे में पहाड़ियो के पीछे से निकल उस द्वीप के सामने पहुचा। दुर्गादास अट्ठारह राजपूतो के साथ नद के जल में घुस उस द्वीप मे पहुच गये। नाहर दो राठोरों को ले उस छावनी में वापस आया। इसके उपरान्त प्रति आध घण्टे पर शताधिक मनुष्यो का दल उस द्वीप की ओर भेजा जाने लगा। बहुत बड़े एक दल में पालकियो और तामदानो की सवारियो में दोनो राजकुमार और महारानियाँ भी उस द्वीप की ओर भेज दी गई। एक तो वह द्वीप इस छावनी से बहुत दूर था; दूसरे इस छावनी और उस द्वीप के बीच का नदी तट टीले की तरह उभरा हुआ था, तीसरे जिस जगह वह द्वीप था, उस जगह नद अपने दक्षिण तट की ओर कुछ घूम गया था; इन्ही सब कारणो से उस छावनी के सहस्राधिक मनुष्यो के उस द्वीप में पहुच जाने पर भी नूर के पहरेदार सिपाहियो को यह बात मालूम न हुई।

नाहर की उस कल्पना का यह पहला अंश निर्विघ्न समाप्त हुआ। वह छावनी खाली हो गई। उसमे खीमे

खड़े थे; स्थान-स्थान में हाथी-घोड़े बधे थे; विविध साज-सामान विविध स्थानो मे पड़े थे; किन्तु मनुष्य न थे। प्रयोजनीय थोड़े से सामान और घोड़ो के साथ उसके सभी मनुष्य वहाँ से निकल उस द्वीप में पहुंच गये थे। उस समय वहा केवल ढाई सौ राठौर योद्धा अवस्थान करते थे। यह सब नाहर के अधीन थे। नाहर उस छावनी मे बैठा सान्ध्य अन्धकार के प्रगाढ होने की प्रतीक्षा करता था।

क्रम-क्रम से सान्ध्य अन्धकार के बदले नैश अन्धकार प्रकट हुआ। अफगानस्थान मे फैली पर्वतमाला का अन्धकार घनीभूत हुआ; सिन्धु नद पर फैला धुधला प्रकाश अन्तर्हित हुआ। नूर के पहरेदारो को भ्रम में डालने के लिये नाहर ने उस छावनी मे स्थान-स्थान मे प्रदीप प्रज्वलित करा दिये। अन्धकार की प्रबलता देख नाहर ने उन ढाई सौ सशस्त्र राठोरो को अपने समीप बुलाया। उनमें पचास राठोर नाहर ने अपने साथ लिये; अवशेष दो सौ राठोरो के अफसरो से कहा,—"इन पचास राठोरो के साथ मै उन नावो पर अधिकार करने के लिये जाता हूं। तुम लोग तय्यार रहना। जैसे ही तुम्हें उन नावो की ओर से कोलाहल सुनाई दे, वैसे ही तुम लोग इस छावनी और नद के बीच अवस्थित नूर के सिपाहियो और उन नावो के बीच अवस्थित हो धीरे धीरे उस द्वीप की ओर पीछे हटना। नूर के सिपाही उस कोलाहल के कारण जानने के लिये तुम्हारी पंक्ति भेद उन नावो की ओर जाने का यत्न करेंगे; किन्तु तुम लोग उन्हें ऐसा करने न देना। उधर उन नावो के सम्बन्ध का अपना कार्य्य समाप्त कर मैं तुरन्त तुम लोगों के समीप पहुंच जाऊँगा। रात्रि अतीव

अन्धकारमयी है; हमारा कार्य्य सरलतापूर्वक हो सकेगा।"

यह कह नाहर उन पचास राठोरो को अपने साथ ले एकबार फिर उन पहाड़ियों के पीछे जा उस स्थान मे निकला, जिस स्थान मे नावो की वह चौकी थी। अपने साथियो के साथ धीरे धीरे आगे बढ और उस चौकी के समीप पहुच नाहर ने देखा, कि नावें नद के किनारे बँधी हैं; कोई वीस सिपाही उस चौकी मे है और कोई एक सौ मल्लाह उस चौकी के समीप के बहुत बडे एक छप्पर के नीचे हैं। चौकी और छप्पर में प्रकाश हो रहा था। चौकी के बहुत बडे एक प्रदीप का प्रकाश उन नावों और सिन्धु-जल पर पड रहा था।

विलम्ब करने का समय न था। नाहर ने पेंतीस राठोरो को उन निरस्त्र मल्लाहो पर अधिकार करने की आज्ञा दी और स्वय पन्द्रह राठोरो के साथ तलवार खीच उस चौकी मे एकाएक घुस गया। नाहर और उसके साथी सशस्त्र राठोरो को देख उस चौकी के सिपाही पहले घबरा गये, पीछे सँभल कर उन्हो ने नाहर पर आक्रमण किया। नाहर और उसके साथियों ने पाच सिपाहियों को धराशायी किया। अवशेष सिपाहियो की ओर देख नाहर ने कहा,—"सामना करने से कोई लाभ नहो। अपने साथियो की तरह तुम सब भी मार डाले जाओगे। हथियार रख दो।" उन सिपाहियो ने अपने हथियार रख दिये। नाहर के साथियो ने उनकी मुश्कें कस दीं और उनके मुह मे कपडे ठूस दिये। इन सबको अपने साथ ले नाहर उस चौकी से निकला।

बाहर निकल नाहर ने देखा, कि उसके अवशेष सा-

थियो ने उन निरस्त्र मल्लाहों को प्रायः वश कर लिया है। वह सब राठोरो को अपने सामने पा आरम्भ मे चीत्कार कर उठे; राठोरो के भय दिखाने पर वह सब निस्तब्ध हो भागने का पथ ढूढने लगे। इस पर उन राठोरो ने उनको चारो ओर अवस्थित हो कहा, कि तुममे जो मनुष्य यह छप्पर परित्याग करेगा, वह गोली से मार दिया जायेगा। यह सुन वह सब प्राण-भय से भीत हो एक दूसरे का मुह देखने लगे। ऐसे समय नाहर उन कैदी सिपाहियो के साथ उन मल्लाहों के समीप पहुंचा। उसने उन मल्लाहो से कहा,—"तुम लोग यदि भागने का यत्न करोगे, तो मारे जाओगे। इसके विरुद्ध तुम सब यदि भागने का विचार छोड हमारी बात के अनुसार कार्य्य करोगे, तो उचित पुरस्कार से पुरस्कृत किये जाओगे। तुम सब शीघ्र उठो और इस स्थान की छोटी-बडी सब नावो को उस द्वीप के पश्चाद्भाग मे पहुचाओ।"

प्राण-भय से यह सब मल्लाह नाहर की आज्ञा के अनुसार कार्य्य करने पर उद्यत हुए। वहां की सब नावे परस्पर बांधी जाकर उस द्वीप की ओर चलाई गई। नाहर ने अपने साथी उन सब राठोरो को उन नावों मे बैठा दिया। उन नावो के छूटने से पहले उच्च स्वर से अपने साथी राठोरो से कह दिया,—"राह में खूब सावधान रहना। कोई मल्लाह यदि भागने का यत्न करे, तो उसे गोली मार देना। कोई मल्लाह यदि नाव चलाना अस्वीकार करे, तो उसे भी प्राण-दण्ड मे दण्डित करना।" नाहर की इन बातो से उन मल्लाहो के मन मे बडा भय हुआ। वह सब भागने या छल-कपट करने का विचार छोड़ उन नावों के

बेड़े को उस द्वीप की ओर ले चले।

इस कार्य्य से निवृत्त हो नाहर द्रुत पद से उस छावनी की ओर चला। अभी वह कुछ ही दूर आगे बढ़ा था; ऐसे समय उसे उस छावनी की ओर से बन्दूकों के चलने का शब्द सुनाई दिया। नाहर समझ गया, कि छावनी के समीप के नूर के पहरेदारों ने इन मल्लाहों की चीत्कारध्वनि सुन ली; वह सब इसका कारण जानने के लिये इस ओर बढ़े और उस छावनी के राठोर उनके अग्रसर होने में बाधा उपस्थित कर रहे हैं। यह स्थिर कर नाहर बड़ी ही फुरती से उस छावनी की ओर दौड़ा। कुछ और आगे बढ़ते ही उसे स्पष्ट युद्ध-कोलाहल सुनाई दिया। कुछ और आगे बढ़ने पर उस अन्धकार में नाहर को कुछ मनुष्य-मूर्त्तियां दिखाई दीं। इन्हें देख इन से नाहर ने पूछा,—"तुम लोग कौन हो?"

इस पर इन मनुष्यों ने कहा, कि हम आप के सेवक हैं और आप हमारे सरदार नाहरसिंह। इन्हें पीछे छोड़ नाहर कुछ और आगे बढ़ा था, ऐसे समय नूर के सिपाहियों ने बन्दूकों की बाढ़ दागी। कितनी ही गोलियां नाहर के कान के पास से निकल गईं। इसके उपरान्त ही राठोरों की गोलियां चलीं। गोलियों के शब्द से वह नदी-गर्भ बारबार प्रति ध्वनित हो उठा। नाहर ने और आगे बढ़ देखा, कि उसके साथी राठोर कई छोटे-छोटे दलों में विभक्त हो सम्पूर्ण नदीगर्भ में फैल पीछे हट रहे और उनसे कोई दो सौ गज के अन्तर पर नूर के सिपाही धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे हैं। नाहर ने अपने साथियों के अफसरों के समीप पहुंच उनसे पूछा,—"युद्ध कैसे आरम्भ हुआ?"

एक अफसर—उस चौकी की ओर से चीत्कारध्वनि उत्थित होते ही उसका कारण जानने के लिये नूर के कितने ही सिपाही उस ओर चले। यह देख हम लोग युद्ध-नाद करते अपने खीमों से निकले और कई भागों में विभक्त हो समूचे नदी गर्भ में फैल गये। इस पर नूर के सिपाहियों ने हमपर गोलियाँ चलाईं; प्रत्युत्तर में हमने भी उनपर गोलियाँ चलाईं। इसके उपरान्त गोलियाँ चलाते नूर के सिपाही आगे बढ़ और उनकी गोलियों का प्रत्युत्तर देते हुए हम पीछे हट रहे हैं। हमलोग अपनी उस छावनी से कोई दो सौ कदम पीछे हट आये हैं। अभी तक नूर का एक भी सिपाही हमलोगों के बीच से निकल उस चौकी की ओर जा नहीं सका है। नूर के इतने सिपाहियों को हमलोग सरलतापूर्वक रोक सकते हैं; किन्तु और सिपाहियों के आ-जाने पर उनका रोकना कठिन हो जायेगा।

नाहर ने देखा, कि उस स्थान मे नदी-गर्भ कोई दो सौ हाथ चौड़ा है। उसने अपने एक सौ राठोरों को नदी-जल के समीप और अवशेष एक सौ को नदीगर्भ के छोर पर अवस्थित पहाड़ियों के तलदेश में अवस्थित किया। नाहर ने यह भी आज्ञा दी, कि कोई भी राठोर खड़ा न रहे, बालू पर लेट गोली चलाये; पीछे हटते समय अपने स्थान से उठ और कुछ कदम पीछे दौड़ एक बार फिर बालू पर लेट जाये। नाहर ने यह व्यवस्था इसलिये की, जिससे राठोर शत्रु की गोली से हताहत न हों और शत्रु की संख्या बढ़ने पर उस पर दो पार्श्व से कैंची की सूरत की गोलियों की बाढ़ दाग उसे शीघ्र आगे बढ़ने न दें। यह व्यवस्था कर नाहर अपने साथियों के साथ-साथ पीछे हटने लगा।

अल्प समय के उपरान्त उस किले से एकाएक तोप का ध्वनि हुई और युद्ध-वाद्य बजने का शब्द हुआ। इसके उपरान्त उस किले की ओर से बहुसंख्यक मशालें युद्धस्थल की ओर बढ़ती दिखाई दी। इन मशालों के साथ युद्ध के बाजे भी थे। नाहर अपने साथियो के साथ पीछे हटता अभी उस चौकी तक पहुंचा था; ऐसे समय उनकी उस छावनी की ओर बड़ा प्रकाश दिखाई दिया। उस छावनी को नूर के सिपाहियो ने आग लगा दी। उसके जलने से नदी-गर्भ धुंधला-धुंधला प्रकाशित हो गया। इसके उपरान्त बहुसंख्यक मशालों के प्रकाश में नूर के कोई दो सहस्त्र सिपाही आ अपने साथियो में मिल गये और भयङ्कर कोलाहल करने लगे।

नूर के अधिकाँश सिपाही और अफसर राठोरो की यथार्थ स्थिति न जानने के कारण अपने सामने नदी-गर्भ की ओर गोलिया चलाने लगे। उधर राठोरो की गोलियाँ ठीक उन सिपाहियो पर पड़ने लगीं। इसका फल यह हुआ कि नूर के सिपाहियो की गोलियाँ व्यर्थ प्रमाणित होने और राठोरो की गोलिया अपना कार्य्य करने लगीं। अन्त में मशालों के प्रकाश में नूर के सिपाही राठोरो की यथार्थ संख्या न जान कर भी उनकी यथार्थ स्थिति जान गये। उन्हें जान पड़ा, कि राठोर उनके सामने नदी गर्भ में नहीं, दाहने बाये अवस्थान करते हैं। यह जान उन सब ने राठोरों का निशाना बाँध गोली वृष्टि आरम्भ की। इसमे सन्देह नहीं, कि राठोर यदि बालू पर लेटे न होते, तो इस गोली वृष्टि से घोर रूप से क्षतिग्रस्त होते।

कुछ पीछे हट और उस चौकी का आश्रय ले नाहर के

साथियो ने नूर के सिपाहियो को देर तक रोका और अत्यन्त क्षतिग्रस्त किया। इसके उपरान्त वह उस चौकी से कोई चार सौ कदम पीछे हट गये। इतना पीछे हटने का उद्देश्य यह था, कि नूर के सिपाही उस चौकी से किसी तरह का लाभ उठा न सकें। नाहर के साथी उस चौकी से पीछे हट अभी बालू पर लेटे थे; ऐसे समय नूर के कोई पाच सौ सिपाही दो भागो मे विभक्त हो नाहर के साथियो के दोनो दलो की ओर टूटे। यह देख उन पर नाहर के सिपाहियो ने विषम वेग से गोली वृष्टि आरम्भ की। इसके फल से नूर के बहुतेरे सिपाही मारे गये। अन्त में यह सब जब कोई पचास कदम के अन्तर पर पहुच गये, तब नाहर ने अपने साथियो को अपने स्थान से उठ कोई दो सौ कदम पीछे हट जाने की आज्ञा दी। नूर के सिपाहियों ने नाहर के साथियों के पूर्वाधिकृत स्थान में पहुच उसे शून्य पा क्रोध से भीषण चित्कार किया। यह देख नाहर की आज्ञा से उसके साथियों ने उन पर फिर एक बाढ़ मारी। इसके फल से नूर के बहुसख्यक सिपाही हताहत हुए और वह सब क्षुब्ध हो उस स्थान से पीछे हट अपने साथियो में मिल गये।

क्रमश नूर के सिपाहियो का दबाव बढने और नाहर के साथियों की पीछे हटने की गति क्षिप्र होने लगी। अन्त में सदल बल नाहर उस द्वीप के सामने पहुच गया। वहां पहुच उसने अपने दोनो दलो को एक घना नद-कूल के किनारे-किनारे उस द्वीप से पीछे हटा दिया। अब नूर के सिपाहियों और नाहर के दल के बीच वह द्वीप आ गया। इसके उपरान्त हुशयार शत्रु-दल जैसे ही उसना

लेना कहता आगे बढा, वैसेही उस पर नाहर के साथियो और उस द्वीप में अवस्थित राठोरों दोनो की गोलिया समान रूप से पडी। यह देख नाहर समझ गया, कि उसकी कल्पना का यह अंश भी सम्पूर्ण हुआ। इसके उपरान्त अपने साथियो से एक अन्तिम वाढ नूर के साथियों पर दगवा उन्हें उसने नदी-जल पार कर उस द्वीप में पहुंचने की आज्ञा दी। नाहर के सब साथी नदी-जल में घुस उस द्वीप की ओर चले। अकेला नाहर नद-तट पर लेट गया।

उस द्वीप से गोलियों की बौछार होते ही अपने सिपाहियो के साथ अवस्थित नूर को राठोरो के कौशल का बहुत कुछ तथ्य मालूम हो गया। पहले उसने यह अनुमान किया था, कि मूर्ख राठोर उसके सिपाहियों के पहरे से निकल जाने के लिये अपनी वह छावनी छोड़ अन्यत्र जा रहे हैं। उस चौकी पर अधिकार करने और वहा अपने कुछ सिपाहियो की शवदेह देखने तथा नावो के न पाने से उसने यह अनुमान किया, कि पीछे हटते हुए राठोर इस स्थान की नावों ओर मल्लाहो को अपने साथ ले गये हैं। उसके मन में यह भी आया, कि राठोर इन नावों को इसलिये साथ ले गये है, कि वह उसके पहरे से निकल किसी निर्ज्जन स्थान में पहुच उन नावों द्वारा नद पार किया चाहते है। किन्तु अन्त में उस द्वीप से बन्दूकों की वाढ दगते ही एकाएक उसकी समझ में यथार्थ बात आ गई। वह समझ गया, कि राठोर उन नावों के साहाय्य से उस द्वीप मे पहुच उसी समय नद पार किया चाहते हैं। रात्रि के अन्धकार के कारण वह अपने सामने के राठोरो की यथार्थ सख्या जान न सका था। यदि जान सकता, तो

यह भी समझ लेता, कि राठोरों का केवल एक छोटा दल उसके सामने था; उनके अन्यान्य दल बहुत पहले से उस द्वीप में पहुंच नद पार करने का यत्न कर रहे थे। फिर भी; जो बात वह जान सका, उसी से घबरा गया। वह पागलों की तरह चीत्कार करता इधर-उधर दौड़ अपने सिपाहियों को उस द्वीप में पहुचा राठोरों के भागने का पथ अवरुद्ध करने का यत्न करने लगा।

नूर अपने साथियों से अपने पीछे आने का बारबार अनुरोध कर अपनी तलवार अपने हाथ में ले नद-तट से नद जल की ओर दौड़ा। उसके साथी उससे पीछे रह गये; वह यथासम्भव शीघ्र उस जगह पहुचा, जिस जगह नाहर लेटा हुआ था। नूर नाहर को देख न सका; किन्तु नाहर ने नूर को केवल देखा ही नहीं; पहचान भी लिया। इसके उपरान्त जैसे ही नूर ने जल-प्रवेश किया, वैसे ही नाहर उस पर टूट पड़ा। नाहर के एक ही धक्के में नूर जल में गिरा। उसके सभलने से पहले उसके हाथ की तलवार नाहर ने छीन दूर जल में फेंक दी। इसके उपरान्त जिस तरह कोई बलिष्ठ मनुष्य किसी हलके बोझ को अपनी बगल में दाब चलता है, उसी तरह नाहर नूर को अपनी बगल मे दाब नद-जल से उस द्वीप की ओर चला। नूर ने चीत्कार करने के लिये मुह खोला; नाहर ने उसका कण्ठ दबा अत्यन्त गम्भीर भाव से कहा,—"खाँ साहब! तुमने यदि चीत्कार किया, तो मैं तुम्हें मार डालूगा।"

नूर के कितने ही सिपाही नूर के पीछे-पीछे चल नद तट के समीप पहुंचे। यह देख द्वीप में बैठे राठोरों

ने इन पर गोलियों की वृष्टि की। इनमें कितने सिपाही हताहत हुए; अवशेष नद-तट से पीछे हट अपने साथियों में मिल गये। इन सब ने अपने साथियों से नूर के खोये जाने की सूचना दी। नूर की खूब खोज की गई; किन्तु वह उसके सिपाहियों को न मिला। मिल भी कैसे सकता था? नूर के खो जाने से उसके सिपाही अतीव हृदय-मग्न हुए। राठोरों से सामना करने में उनकी बहुत बड़ी संख्या हताहत हो चुकी थी। सुप पूर्वक नदी-तट का पहरा देने वाले सिपाही योद्धा राठोरों से युद्ध कर बहुत ही दुःखित हुए थे। उन्हें नूर यदि वहाँ तक न लाता, तो वह स्वतः प्रवृत्त हो उस अन्धकार और राठोरों की भीषण गोली-वृष्टि में वहाँ तक न आते। नूर के खो जाते ही उन सब ने राठोरों की गोलियों की पहुंच से पीछे हट किसी सुरक्षित स्थान में ठहरना स्थिर किया। इस सिद्धान्त के अनुसार यथासम्भव शीघ्र कार्य्य किया गया। नूर के सिपाही उस द्वीप से दूर जा अवस्थित हुए। उन सब ने आपस में कहा, कि जब हमारे अफसर नहीं; तब हमें किसी तरह का कार्य्य करना उचित नहीं।

इधर राठोरों ने नद-जल पारकर उस द्वीप में प्रवेश किया। सब के अन्त में नाहर ने उस द्वीप पर पैर रखा।

दुर्गादास ने नाहर का स्वागत किया। उस अन्धकार में नाहर की बगल में कोई वस्तु देख नाहर से दुर्गादास ने पूछा,—"नाहर! तुम्हारी बगल में यह क्या है?"

नाहर—नूरखां, सिन्धु नद के मोहलबहादुर।

दुर्गादास—इसे तुम कैसे पा गये?

नाहर— इसे मेरे पास खींच

अपने साथियों के नद-जल में प्रवेश करने पर मै वालू पर लेटा था; ऐसे समय यह अपने साथियो को अपने पीछे आने के लिये पुकारता उछलता-कूदता मेरे पास आया। प्रयोजन देख इसे मैने पकड़ लिया। जब तक यह हमारे पास रहेगा, तब तक इसके सिपाही कोई विशेष कार्य्य न कर निश्चेष्ट बैठे रहेंगे।

इसके उपरान्त नाहर ने दो राठोर सिपाहियों को बुला उनके हाथ नूर को सौंपा। उसी समय नूर की मुश्कैं कस दी गईं। उसकी कमर से एक डोरी बाँध दी गई।

नाहर-(दुर्गादास से) क्या राजकुमार, राजरानियां तथा भृत्यगण उस पार पहुच गये?

दुर्गादास—पहुच गये।

नाहर—इस बात की सूचना आप को कैसे मिली?

दुर्गादास-मेरे बताये हुए सङ्केत के प्रकट होने से। उनसे मैने कह दिया था, कि आप लोग जैसे ही निर्विघ्न उस किनारे पहुंचें, वैसे ही अल्प समय के लिये लाल रङ्ग की मशाल जलवा दें। इस मशाल के जलने पर इसका प्रकाश देख मैं जान गया हूं, कि वह लोग निर्विघ्न नद पार पहुच गये है।

नाहर-क्या हम लोगो के लिये नावें तय्यार हैं?

दुर्गादास-तय्यार है। मै चिन्ता पूर्व्वक तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। इस युद्ध में राठोरो की कितनी क्षति हुई?

नाहर-केवल ग्यारह राठोर आहत हुए हैं। इनके जख्म बहुत बड़े नहीं; शीघ्र ही भर जायेंगे। शत्रु पक्ष के सम्भवत चार सौ मनुष्य हताहत हुए हैं। अच्छा अब हम लोगो को शीघ्र ही नद पार करना चाहिये।

उस द्वीप के दूसरे पार्श्व में कितनी ही नावें और डोंगे लगे थे। सदलबल नाहर और दुर्गादास उनमें सवार हुए। नावों का यह बेड़ा नद के खर स्रोत में छोड़ा गया। अल्प समय में इस बेड़े की प्रत्येक नाव और डोंगा दूसरे किनारे जा लगा। सदलबल नाहर और दुर्गादास ने भूमि पर उतर अपने साथियों से भेंट की। उस चौकी में जो मल्लाह पकड़े गये थे, वह उत्तम रूप से पुरस्कृत किये जाकर विदा किये गये। सर्व्व सम्मति से स्थिर हुआ, कि उस रात्रि को वहां छावनी न डाल आगे बढ़ना चाहिये।

इस दल ने रात भर यात्रा की। प्रत्यूष को सिन्धु नद से कई कोस दूर पहुंच एक छोटी बस्ती के समीप एक उपयुक्त स्थान में छावनी डाली गई। थोड़े से खीमे और बहुतेरे शामियाने आदि राठोर अपने साथ लाये थे। यह सब खड़े किये और ताने गये। एक बार फिर राठोरों की छावनी प्रतिष्ठित हुई। स्थान-स्थान में राठोर वीरों के पहरे खड़े हुए।

उस दिन तीसरे पहर राठोर-सरदारों के सम्मुख नूरखां उपस्थित किया गया। एक ही रात के कष्ट ने उसके आकार-प्रकार को बहुत विकृत कर दिया था। उसे अपने सामने पा दुर्गादास ने पूछा,—"नूर! तूने यदि हमें नद पार करने दिया होता, तो इतना काण्ड क्यों होता?"

नूर—मैंने शाही आज्ञा के अनुसार कार्य्य किया!

नाहर—क्या तुझे शाह ने आज्ञा दे दी थी, कि तू काबुल के सूबेदार के पुत्र को भी नद पार करने न दे?

इस बात का नूर ने कोई उत्तर न दिया।

अपने साथियों के नद-जल मे प्रवेश करने पर मैं बालू पर लेटा था; ऐसे समय यह अपने साथियो को अपने पीछे आने के लिये पुकारता उछलता-कूदता मेरे पास आया। प्रयोजन देख इसे मैंने पकड़ लिया। जब तक यह हमारे पास रहेगा, तब तक इसके सिपाही कोई विशेष कार्य्य न कर निश्चेष्ट बैठे रहेंगे।

इसके उपरान्त नाहर ने दो राठोर सिपाहियो को बुला उनके हाथ नूर को सौंपा। उसी समय नूर की मुश्कैं कस दी गई। उसकी कमर मे एक डोरी बाँध दी गई।

नाहर-(दुर्गादास से) क्या राजकुमार, राजरानिया तथा भृत्यगण उस पार पहुच गये?

दुर्गादास—पहुच गये।

नाहर—इस बात की सूचना आप को कैसे मिली?

दुर्गादास-मेरे बताये हुए सङ्केत के प्रकट होने से। उनसे मैंने कह दिया था, कि आप लोग जैसे ही निर्विघ्न उस किनारे पहुंचे, वैसे ही अल्प समय के लिये लाल रङ्ग की मशाल जलवा दें। इस मशाल के जलने पर इसका प्रकाश देख मै जान गया हूं, कि वह लोग निर्विघ्न नद पार पहुच गये है।

नाहर-क्या हम लोगों के लिये नावें तय्यार हैं?

दुर्गादास-तय्यार है। मैं चिन्ता पूर्वक तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। इस युद्ध में राठोरो की कितनी क्षति हुई?

नाहर-केवल ग्यारह राठोर आहत हुए है। इनके जख्म बहुत बड़े नही; शीघ्र ही भर जायँगे। शत्रु पक्ष के सम्भवत चार सौ मनुष्य हताहत हुए है। अच्छा अब हम लोगो को शीघ्र ही नद पार करना चाहिये।

उस द्वीप के दूसरे पार्श्व में कितनी ही नावें और डोंगे लगे थे। सदलबल नाहर और दुर्गादास उनमें सवार हुए। नावो का यह बेड़ा नद के खर स्रोत में छोड़ा गया। अल्प समय मे इस बेड़े की प्रत्येक नाव और डोंगा दूसरे किनारे जा लगा। सदलबल नाहर और दुर्गादास ने भूमि पर उतर अपने साथियो से भेंट की। उस चौकी में जो मल्लाह पकड़े गये थे, वह उत्तम रूप से पुरस्कृत किये जाकर विदा किये गये। सर्व सम्मति से स्थिर हुआ, कि उस रात्रि को वहा छावनी न डाल आगे बढ़ना चाहिये।

इस दल ने रात भर यात्रा की। प्रत्यूष को सिन्धु नद से कई कोस दूर पहुच एक छोटी बस्ती के समीप एक उपयुक्त स्थान में छावनी डाली गई। थोड़े से तोमे और बहुतेरे शामियाने आदि राठोर अपने साथ लाये थे। यह सब खड़े किये और ताने गये। एक बार फिर राठोरों की छावनी प्रतिष्ठित हुई। स्थान-स्थान मे राठोर वीरो के पहरे खड़े हुए।

इस दिन तीसरे पहर राठोर-सरदारो के सम्मुख नूर-खा उपस्थित किया गया। एक ही रात के कष्ट ने उसके आकार-प्रकार को बहुत विकृत कर दिया था। उसे अपने सामने पा दुर्गादास ने पूछा,—"नूर! तूने यदि हमें नद पार करने दिया होता, तो इतना कष्ट क्यो होता?"

नूर—मैंने शाही आज्ञा के अनुसार कार्य्य किया?

नाहर—क्या तुझे शाह ने आज्ञा दे दी थी, कि तू काबुल के सूबेदार के पुत्र को भी नद पार करने न दे?

इस बात का नूर ने कोई ०।

नाहर-राठोरो से युद्ध कर तेरे कोई चार सौ सिपाही हताहत हुए हैं। तू ने जो पाप किया, इस तरह तुझे उसका प्रतिफल मिला।

नूर-तुम लोग अब मेरे साथ क्या किया चाहते हो?

नाहर—इसकी सूचना तुझे अभी मिल जायेगी। इसी के लिये इस समय तू यहा बुलाया गया है।

अन्त में राठोर-सरदारो ने परस्पर परामर्श कर यह स्थिर किया, कि अगली और एक मञ्जिल तक नूर कैद रखा जाकर छोड़ दिया जाये। जिस समय नूर को यह बात सुनाई गई, उस समय उसने कुछ उत्तेजित हो कहा,— "इस समय मैं तुम्हारे वश हूं; तुम जो चाहो; करो, किन्तु क्या तुम ने यह भी सोचा है, कि तुम्हारे इस कार्य्य का फल क्या होगा?"

दुर्गादास—सोच लिया है।

नूर—क्या सोच लिया है?

दुर्गादास—औरङ्गजेब से हमें युद्ध करना होगा। यह युद्ध यदि औरङ्गजेब के राज्य में होगा, तो भगवान् जिसको जय देगा, उस की जय होगी; यदि मारवाड़ में होगा, तो राठोरो और राठोर-कुल-भूषण महाराज अजितसिंह की जय होगी।

नूर—इससे जान पड़ता है, कि तुम सब बगावत करने के लिये पूर्णरूप से प्रस्तुत हो। तुम्हें तुम्हारी इस बगावत का फल अवश्य मिलेगा। मेरे अधीनस्थ कर्म्मचारियो ने तुम्हारे बल पूर्वक नद पार करने का समाचार शाह की सेवा में भेज दिया होगा। जैसे ही यह समाचार शाहशाह को मिलेगा, वैसे ही वह तुम्हारे दण्ड देने को तुम्हारी

और सैन्य भेजेंगे। इस सैन्य के पहुंचने पर तुम घोर रूप से दण्डित होगे और अपने कार्य्य पर पश्चात्ताप करोगे।

नाहर—अच्छा मीरेवहर साहब! उस समय हमें जो दण्ड मिलेगा, उसे हम भोग लेंगे। उसके सम्बन्ध में तुम इतनी चिन्ता न करो।

दुर्गादास—(राठोर सिपाहियों को) नूर को ले जाओ।

नूर वहां से हटा दिया गया। नूर चला गया; किन्तु उसकी बातों का प्रभाव देर तक न गया। वहां बैठे सभी राठोर-सरदार औरङ्गजेब की ओर से चिन्तित हुए। उन सब के मन में यह चिन्ता उत्पन्न हुई, कि उन्हें शीघ्र ही राठोरों के घोर शत्रु औरङ्गजेब से सामना करना होगा।

इसी जगह यह भी लिख देना असङ्गत न होगा, कि राठोरों ने अपने प्रतिज्ञानुसार नूर को अपनी अगली मञ्जिल से रवाना होने से पहले छोड़ दिया।

अष्टादश परिच्छेद।

घोर सङ्कट।

दिल्ली नगर के बाहर कोई दो सहस्र मनुष्यों की एक छावनी थी और इस छावनी के गिर्द दिल्ली नगर के कोतवाल की अधीनता में कोई पांच सहस्र शस्त्र सिपाहियों और बरकन्दाजों का पहरा था। बाहर का कोई मनुष्य उस छावनी में जा और उस छावनी का कोई मनुष्य बाहर आ न सकता था।

हमारे पाठक कदाचित् समझ गये होंगे, कि यह छावनी काबुल से लौटे उन राठोरों की थी और इसके गिर्द औरङ्गजेब का पहरा था। के इस हाल ने जैसे ही

लाहोर नगर अतिक्रम किया, वैसे ही एक दिन इसे कोई पाच सहस्र सिपाहियों और बरकन्दाजो के साथ दिल्ली नगर के कोतवाल ने घेर लिया। उसके पास औरङ्गजेब का दस्तखती एक फरमान था। उसमे जो बाते लिखी थी उनका मर्म्म इस तरह था,—"राठोरो के इस दल ने वल पूर्व्वक सिन्धु नद पार किया है। सिन्धु नद के सरकारी कर्म्मचारियो ने इसके इस कार्य्य में जब बाधा दी, तब इसने उनसे युद्ध किया। इस युद्ध में बहुसख्यक सरकारी कर्म्मचारी हताहत हुए। ऐसी दशा मे इस दल ने केवल सरकारी आज्ञा ही उल्लघन नही की; वर इससे बढ़कर सरकार से युद्ध करने का अपराध किया। इस अपराध में यह दल पकड़ा और कठोर पहरे मे दिल्ली लाया जाये। दिल्ली में शाहशाह इस दल के इस अपराध का विचार करेंगे।" इस दल के नाहर, दुर्गादास आदि सभी राठौर-सरदारोने औरङ्गजेब का यह फरमान सुन और परस्पर परामर्श कर कोतवाल के सामने अवनत होना ही स्थिर किया। कोतवाल इस दल को अपने पहरे में ले कितनी ही मञ्जिलें तयकर अन्त में दिल्ली पहुंचा। दिल्ली के बाहर एक मैदान में पहरे के भीतर इस दल की छावनी पड़ी। औरङ्गजेब को इस दल के आगमन की सूचना दी गई। इस बात को चार दिन बीत गये थे। उस समय तक औरङ्गजेब ने इस दल के सम्बन्ध मे अपनी कोई आज्ञा दी न थी।

गुम्बद बनने के उपरान्त उसका चूड़ा तय्यार होता है; औरङ्गजेब हिन्दू-उत्पीड़न का गुम्बद तय्यार करने के उपरान्त अब उसका चूड़ा तय्यार करने पर उद्यत हुआ था। यह बात औरङ्गजेब तो जानता ही था; देश के हिन्दू

भी जानने लगे थे। इस दल के पकड़े जाने से समग्र पञ्जाब और राजपूताने के हिन्दुओं में चिन्ता फैल गई थी। जिस हिन्दू ने यह समाचार सुना, उसी ने दीर्घ निश्वास परित्याग किया। हिन्दुओं के रोम-रोम ने कहा,—"भगवन्! इस हिन्दू-उत्पीड़न का क्या कोई अन्त ही नहीं?" राजपूताने के राजपूतों पर इस समाचार ने और भी गहरा प्रभाव उत्पन्न किया। जयपुर, बूंदी, कोटा, उदयपुर, बीकानेर आदि के राजपूत महिपालगण इन पकड़े गये राठोरों का परिणाम-फल जानने के लिये अधीर हुए। उन सब ने आपही आप कहा,—"परलोकगत मारवाड़पति महाराज यशवन्तसिंह के शिशु सन्तानों को पकड़ औरङ्गजेब ने बड़ा ही गर्हित कार्य्य किया है; उन शिशुओं के रक्षक औरङ्गजेब के अपराधी हो सकते हैं; वह अबोध शिशु, किसी के अपराधी कैसे हो सकते हैं?" उन सब ने आपहीआप यह भी कहा,—"आज मारवाड़पति के वंशधरगण पकड़े गये हैं; कल राजपूताने के अन्यान्य राज्यों के भी वंशधरगण पकड़े जा सकते हैं। अत्याचारी औरङ्गजेब ने केवल राजकुमारों ही को नहीं; राजमाताओं को भी पकड़ लिया है।"

जिस दिन की घटना हम लिखने चले हैं उस दिन प्रातःकाल उस छावनी में नाहर आदि राठोर-सरदारगण एक खीमे में बैठे थे। उनमें अपनी वर्त्तमान अवस्थान, और उसकी भावी परिणति के सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें हो रही थीं।

एक सरदार—नहीं जानता, कि औरङ्गजेब हमारे साथ क्या किया चाहता है?

नाहर—इसमे सन्देह नहीं, कि औरङ्गजेब के हम अतिथि नहीं और वह हमारी सेवा किया नही चाहता। हम सब बहुत समय से औरङ्गजेब की आखो के कॉटे हैं। बहुत समय से वह हमे नष्ट करने की चिन्ता मे है। आज हमे सम्पूर्ण रूप से अनाथ पा अब वह हमें नष्ट करने का यत्न करेगा।

एक सरदार—किन्तु प्रश्न यह है, कि समस्त राजपूतो का भय मन से निकाल क्या वह हम पर और हमारे प्राण से भी प्रिय राजकुमारो पर प्रकाश्य रूप से घोर अत्याचार करने का साहस कर सकेगा?

नाहर—गत कई वर्ष से औरङ्गजेब हिन्दुओ पर जैसे अत्याचार कर रहा है, उससे मुझे विश्वास होता है, कि वह हमपर प्रकाश्य रूप से चूडान्त अत्याचार कर सकेगा।

नाहर की यह बात सुन वहा बैठे सभी राठोर-सरदार निस्तब्ध हो गये। कुछ समय के उपरान्त उनमे एक सरदार ने नाहर से पूछा,—"नाहरसिंह! तुम्हारी समझ में औरङ्गजेब हम पर किस तरह का अत्याचार कर सकता है?"

नाहर—मेरी समझ मे हम पर औरङ्गजेब सभी तरह के अत्याचार कर सकता है। एक सुदृढ सैन्य भेज कर हमारा वध करा सकता है। राजकुमारो और राजरानियों को पकड़वा कैद करा सकता है। हम सब को पकड़ हमें मुसलमान बनाने का यत्न कर सकता है।

नाहर की यह अन्तिम बात सुन बहुतेरे राठोर-सरदारो ने अपनी तलवारो की मूठो पर हाथ रख कहा,—"किन्तु जब तक हम लोगो के शरीर मे प्राण है, तब तक वह हमारा केश स्पर्श भी कर नही सकता।"

नाहर—यह दूसरी बात है। औरङ्गजेब तुम्हें निर्जीव समझ तुम पर विविध अत्याचार होने का आदेश दे सकता है; तुम में यदि जीवन है, तो तुम उन अत्याचारों से आत्म-रक्षा करने का यत्न कर सकते हो।

दुर्गादास—आज चार दिन से हमलोग यहा अवस्थित है; आज चार दिन से औरङ्गजेब ने हमारे सम्बन्ध में कोई भी आज्ञा प्रदान नहीं की है। जिस फरमान द्वारा औरङ्गजेब ने हमें गिरफ्तार कराया है, उस फरमान मे यह लिखा है, कि औरङ्गजेब हमारे अपराध के सम्बन्ध में हमारा विचार करने को है। नही जानते, कि यह विचार कब होगा। इस विचार की प्रतीक्षा में रह हमलोगो ने आत्म-रक्षा का अभी तक कोई भी उपाय नही किया है।

नाहर—हमारी आत्मरक्षा का उपाय हमारी यह तलवारें हैं। हां यह हमे देख लेना चाहिये, कि इनका व्यवहार अभी होना उचित है या कुछ समय के उपरान्त।

दुर्गादास—नाहर! विपद् उपस्थित होने पर हमें क्या करना चाहिये?

नाहर—राजकुमारों और राजमाताओं को बीच मे रख शत्रु व्यूह विदीर्ण कर मारवाड़ की ओर जाने का यत्न करना चाहिये।

ऐसे समय कितने ही डङ्कों के बजने और घोड़ो के टापो की ध्वनि सुनाई दी। इसके उपरान्त कितने ही राठोर सिपाहियों ने इन सरदारो के सम्मुख पहुंच इनसे कहा,—"सहस्र सहस्र नवागत यवन सिपाहियों और सवारो ने हमारी यह छावनी घेर ली है।"

नाहर—इनका अफसर

एक सिपाही—इनका अफसर एक हाथी पर सवार है। यह हाथी इस छावनी के द्वार पर आ खड़ा हुआ है।

नाहर—इनके अफसर ने क्या कोई बात कही है?

एक सिपाही—मुझे खबर नहीं। उसका हाथी जैसे ही इस छावनी के द्वार पर आ खड़ा हुआ, वैसे ही हमलोग आप के पास आये।

ऐसे समय और कई राठोर सिपाहियों ने शीघ्रतापूर्वक वहां पहुंच नाहर आदि से कहा,—"औरङ्गजेब की भेजी अत्यन्त बलिष्ठ एक नई सैन्य ने आ हमारी छावनी घेर ली है। इस सैन्य के प्रधान अफसर ने आप लोगों को बुलाया है।"

नाहर—तुम लोग चलो; हम लोग आते हैं। (राठोर-सरदारों से) वीरगण! आत्मोत्सर्ग के लिये प्रस्तुत हो जाओ। औरङ्गजेब का अत्याचार आरम्भ हुआ चाहता है। औरङ्गजेब को यदि अत्याचार करना न होता, तो वह ऐसी सुदृढ़ सैन्य यहां न भेजता।

दुर्गादास—(कितने ही अफसरों से) मैं नाहर के साथ उस अफसर से भेंट करने के लिये जाता हूं। तुम लोग समस्त राठोरों को अस्त्र-शस्त्र में सुसज्जित कर राजकुमारों और राजमाताओं के खीमे की चारोओर के खीमों में बैठा दो।

यह कह नाहर को ले दुर्गादास इस छावनी के द्वार पर पहुंचा। वहां एक हाथी के नीचे औरङ्गजेब का एक प्रधान फौजी अफसर खड़ा था। उसके पीछे अपने घोड़ों से उतर कितने ही अधीनस्थ फौजी अफसर खड़े थे। इनसे कुछ पीछे उस प्रधान फौजी अफसर के कितने ही शरीर-रक्षक सवार खड़े थे। इन दोनों को यह भी दिखाई दिया,

कि नई फौज के आने से उस छावनी के पहरेदार सिपाहियों की सख्या प्राय द्विगुण हो गई थी।

इन दोनों को अपने सामने पा उस प्रधान फौजी अफसर ने बड़े ही गम्भीर भाव और रूखे स्वर से पूछा,—"क्या तुम्हीं दोनों इस छावनी के राठोरों के प्रधान अफसर हो?"

नाहर—इस छावनी का प्रधान अफसर मैं हू।

अफसर-(नाहर को आपादमस्तक देख) क्या तुम्हारा ही नाम नाहरसिंह है?

नाहर—मेरा ही नाम नाहरसिंह है।

अफसर—क्या तुम्हीं ने अपने साथियों को बलपूर्वक सिन्धु-नद पार करने की आज्ञा दी थी?

नाहर—हा, मैंने ही यह आज्ञा दी थी और अन्त में तुम्हारे मीरबह्र को मैंने ही पकड़ लिया था।

अफसर-क्या तुम यह जानते हो, कि तुम्हारी इस आज्ञा का फल क्या हुआ?

नाहर-मेरी इस आज्ञा के फल से शत शत यवन यम-सदन गये।

अफसर-(अपना होंठ चबा) अब तुम यह देखो, कि उन शत शत यवनों के यम-सदन भेजने से तुम सबको किस विपद् में फँसना होता है।

नाहर—विपद् में हम उसी दिन फँस चुके हैं, जिस दिन हमारे महाराज यशवन्तसिंह का देहान्त हुआ। अब हम विपद् की नहीं; विपद् से उद्धार पाने के समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

अफसर—देखना है, कि तुम्हारी इस प्रतीक्षा के अनुसार कार्य्य होता है या नहीं।

नाहर–इस व्यर्थ के प्रपञ्च से क्या लाभ ? समय उपस्थित होने पर हमारा और हमारे कार्य्य का हाल तुम्हें आप ही विदित हो जायेगा। अपने कोई दश सहस्र सिपाहियों से तुम ने हम कोई पाँच सौ राठोरो को घेर लिया है सही; किन्तु समय उपस्थित होने पर तुम्हे दिखाई देगा, कि हम पाच सौ राठोर क्या करते है। अब तुम फालतू बातें छोड यह बताओ, कि तुम यहा किस लिये आये हो।

नाहर की यह मर्म्मभेदी बातें सुन उस अफसर का मुखमण्डल और भी गम्भीर हो गया। उसने अपनी जेब से एक कागज निकाला और उसे नाहर को दिखा जलद-गम्भीर स्वर मे कहा,–"मै यह शाही फरमान लेकर आया हू।"

नाहर—मै तुम्हारी यावनीय भाषा पढ नहीं सकता; तुम्ही पढकर सुनाओ, कि तुम्हारे इस फरमान मे तुम्हारे उदाराशय शाहशाह ने क्या लिखा है।

उस अफसर ने वह फरमान पढ सुनाया। उसमें औरङ्गजेब की ओर से जो बातें लिखी गई थी, उनका मर्म्म इस तरह था,—"आज प्रात काल बहुतेरे काजियो और मुफ्तियो के सामने तुम राठोरो का अपराध विचारार्थ उपस्थित किया गया। उन सब ने तुम्हारे अपराध पर पूर्णरूप से विचार कर यह स्थिर किया, कि तुम सबको प्राणदण्ड दिया जाये। तुम लोगो ने जैसा पाप किया है, उसका यही उचित प्रायश्चित्त है। फिर भी; परलोकगत महाराज यशवन्तसिंह की बहुतेरी सेवा का विचार कर मैं तुम्हें प्राणदण्ड से बचाने का एक उपाय बताता हू। वह उपाय यह है, कि तुम अपने दोनो राजकुमारों और उनकी

माताओं आदि के साथ मुसलमान धर्म्म ग्रहण करो। ऐसा होने से तुम सबकी प्राण-रक्षा होगी और तुम्हारे दोनों राजकुमार उचित शिक्षा से शिक्षित किये जाकर अन्त में अपने पिता के राज-सिंहासन पर बैठाये जायँगे। इसके विरुद्ध तुम यदि काफिर ही बने रहने की हठ करोगे, तो सरकारी कर्म्मचारी तुम्हें पकड़ तुम्हारे वध की व्यवस्था करेंगे और रानियों के साथ दोनों शिशु राजकुमार तुमसे छीने जाकर मुसलमान बनाये जाने के लिये मेरे पास भेजे जायँगे। तुम यदि अपनी मूर्खता से अस्त्र-शस्त्र का आश्रय ग्रहण करोगे, तो सहस्र सहस्र शाही सिपाहियों के अस्त्र-शस्त्र से कुत्तों की तरह मार डाले जाओगे।"

ऐसा ही उस फरमान का मर्म्म था। इसे हृदयङ्गम कर दुर्गादास और नाहर कुछ समय तक निस्तब्ध रहे। अन्त में उस अफसर ने पूछा,—"क्या तुम लोगों ने इस फरमान का मर्म्म जान लिया?"

नाहर—जान लिया।

अफसर—इसके सम्बन्ध में तुम्हारा क्या उत्तर है?

नाहर—इसके सम्बन्ध में मेरा यह उत्तर है, कि हमारे अपराध के विचार में तुम्हारे काजियों और मुफ्तियों ने न्याय की गरदन कुन्द छुरी से रेती है।

अफसर—कैसे?

नाहर—ऐसे, कि प्रतिवादियों की बात बिना सुने, किसी विषय की मीमांसा की जा नहीं सकती। इस स्थल में तुम्हारे काजियों और मुफ्तियों ने हम लोगों की बात बिना सुने हमारे अपराध की मीमांसा की है।

अफसर—तुम्हारा अ[illegible] प्रत्यक्ष है, उसके

अफसर की यह बात सुन नाहर और दुर्गादास वहाँ से लौट राजमाताओ के समीप पहुंचे। महाराज यशवन्तसिंह की रानिया औरङ्गजेब के इस फरमान का समाचार सुन राजकुमार अजितसिंह और दलस्तम्भनसिंह को अपनी छाती से लगा विह्वल हो गईं। अन्यान्य स्त्रियाँ उच्चस्वर से क्रन्दन कर उठी। नाहर ने राजमाताओ को समझाकर कहा;—"आप लोग अधीर न हो। हमलोग आप लोगो को ले यहा से निकल जाने का यत्न करते हैं। इस यत्न में हम यदि अकृतकार्य्य होगे, तो आपलोगो को अग्नि प्रज्वलित कर उसमे कूद भस्म हो जाना होगा"

वहा से चल नाहर ने राजमाताओ के खीमे के गिर्द के खीमो का निरीक्षण किया। इन सब मे सशस्त्र राठोर योद्धा बैठे थे। नाहर ने इन सब खीमो के आगे सन्दूक, रसद के बोरे आदि के ढेर लगवा दिये और इनके पीछे राठोर वीरो को बैठा दिया। सिवा इस के नाहर ने इस छावनी के किनारे लगे बहुतेरे खीमो के बीच माल-असबाब और रसद के बोरो के ढेर लगवाये। इन सब ढेरों के पीछे राठोर वीरों को बैठाया और उनके पास प्रचुर परिमाण से गोली-बारूद रखवा दी। इस छावनी के भृत्यो का दल कई भागो में विभक्त किया जाकर इन ढेरो के पीछे बैठा दिया गया। स्थिर हुआ, कि इन सब ढेरो के पीछे बहुसख्यक बन्दूकें रख दी जायें और समय पर यह भृत्य उन बन्दूको को भरें और राठोर वीरगण उन्हें शत्रुओपर चलायें। इस तरह एक घण्टे मे नाहर ने इस छावनी को बहुत कुछ सुरक्षित और शत्रु—सैन्य से सामना करने योग्य बना दिया।

एक घण्टा समाप्त होनेपर दिन कोई एक बजे नाहर

अकेला लौट उस छावनी के फाटक पर पहुंचा। उस सम शरत् के निर्म्मेघ गगन में भगवान् भास्कर अपनी पूर्ण प्रभ से अवस्थान करते थे। मन्द-मन्द वायु बहती थी। उ छावनी के गिर्द के वृक्षों पर बैठे पक्षी विविध बोलिय बोलते थे। प्रकृति और पशु-पक्षियों को उन राठोरों क उस आसन्न घोर विपद् का हाल कैसे मालूम हो सकता था।

नाहर को अपने समीप देख उस अफसर ने एकाएक अत्यन्त कठोर भाव धारण कर कहा,—"क्यों; तुम लोगो का क्या उत्तर है?"

नाहर ने और भी कठोर भाव दिखा प्रत्युत्तर मे कहा,— "किस बात का प्रत्युत्तर?"

अफसर—तुम सब मरना या मुसलमान होना चाहते हो।

नाहर—हम सब मरना भी नहीं चाहते और मुसल-मान होना भी नही।

अफसर—तुम सब मुसलमान होना नहो चाहते?

नाहर—(पृथ्वी पर थूककर) हम यह पाप प्रस्ताव सुनना भी नही चाहते।

अफसर—तब तुम सब मरना चाहते हो। अच्छा; तुम सब अपनी मूर्खता से यदि मरना ही चाहते हो, तो मरो; किन्तु मेरा अनुरोध है, कि अपने साथ महाराज यशवन्त-सिंह के उन दोनो बच्चो और उनकी माताओ को न मारो। इन सब को अपनी मृत्यु से पहले हमारे हाथ सौंप दो।

नाहर—रे नीच दुर्म्मुख! जिन सती-साध्वी रा-नियों और निरीह-निरपराध राजकुमारो की रक्षा के लिये पांच सौ राठोर अपने प्राणो का ममत्व परित्याग कर उठ खड़े हुए हैं, उन्हीं रानियों और राजकुमारों को

अनाथाओं और अनाथ की तरह तू कैसे ले जा सकता है? यदि तुझे अपना प्राण प्रिय है, तो शीघ्र यहाँ से पीछे हट जा और दूर अवस्थान कर अपने सिपाहियों और क्रुद्ध राठोरों के भीषण युद्ध का कौतुक अवलोकन कर।

अफसर—(अपने साथी अफसरों और सवारों के प्रति उच्चस्वर में) यह शैतान काफिर सब से अधिक दुरात्मा और अपराधी है; सब से पहले इसी को पकड़ जीवितावस्था में इसकी खाल खींचो।

इस अफसर ने अपनी यह बात अभी कठिनता से समाप्त की थी; ऐसे समय नाहर ने उच्चस्वर से कहा,—"सावधान!" नाहर की यह बात सुन इस अफसर ने जैसे ही अपना शिर फेरा, वैसे ही नाहर का तीक्ष्णधार खड्ग उसकी गरदन पर गिरा। एक क्षण में इस अफसर की बिना शिर की देह उत्तप्त रुधिर का फव्वारा उड़ाती भूमि पर गिरी; शिर लुढ़कता दूर चला गया। यह देख इस अफसर के अधीनस्थ अफसरों तथा इसके शरीर-रक्षक सवारों ने नाहर को घेर उस पर तलवारों का वार करना आरम्भ किया। नाहर अपनी तलवार पर बहुतेरे वार रोक और अपने सामने के तीन अफसरों को काट अपना पथ साफ कर अपनी जगह से हट अपने समीप के एक खीमे में जा पहुचा। नाहर के पीछे-पीछे यह अफसर जैसे ही उस खीमे में घुसने चले, वैसेही उस खीमे में बैठे राठोरों की बन्दूकें दगीं। इनकी गोलियों की चोट से कितने ही अफसर हताहत हुए। अवशेष अफसर उस खीमे में घुसने का विचार छोड़ उस छावनी के फाटक से बाहर निकल आये। इस एलकी सी मार-काट के उपरान्त अल्प समय

के लिये उस छावनी में और उसके इर्द गिर्द सन्नाटा छा गया।

कोई आध घण्टे के उपरान्त यह सन्नाटा एकाएक भङ्ग हुआ। इस छावनी के गिर्द बैठे सहस्र सहस्र सिपाहियो ने अपनी बन्दूकें इस छावनी पर छोड़ी। प्रत्युत्तर में इस छावनी के राठोरों ने भी बन्दूकें चलाई। इसके उपरान्त उभय पक्ष से बन्दूकें दगने लगी। इनकी ध्वनि से केवल यह मैदान ही नहीं; समूचा दिल्ली नगर परिपूर्ण हुआ। इसका कारण पूछनेवाले हिन्दुओं को जब यह मालूम हुआ, कि औरङ्गजेब के कोई दश सहस्र सिपाही महाराज यशवन्तसिंह के शिशु पुत्रों और विधवा रानियों के रक्षक कोई पांच सौ राठोरो पर यह बन्दूकें चला रहे हैं, तब उनके दुःख और क्षोभ की सीमा न रही।

एकोनविंश परिच्छेद।

विचित्र परिणति।

औरङ्गजेब ने अपनी इस सैन्य के प्रधान सेनापति के नाहर द्वारा निहत होने का समाचार पाते ही एक दूसरे मनुष्य को इस सैन्य का प्रधान सेनापति बना युद्धस्थल में भेजा। विदा करने से पहले इस सेनापति से औरङ्गजेब ने कहा था,—"उस छावनी का एक भी काफिर जीवितावस्था में बचने न पाये। सभी चुन चुन कर मारे जायें। शैतान खूनन के दोनो लड़के और उनकी मातायें जीवितावस्था में पकड़ी जायें। इन दोनो लड़को को मुसलमान कर गुलाम और इन राज-रानियों को मुसलमान कर लौंडियां बना लेने से मुझे बड़ा सन्तोष होगा। ऐसा होने से मृत खूनन के समस्त ... का बदला ले मैं अप

छाती शीतल कर सकूगा।"

इस सैन्य में इस नये सेनापति के पहुंचते ही युद्ध ने भयङ्कर रूप धारण किया। इसने आते ही अपने सिपाहियों को आज्ञा दी, कि वस्त्र के बने और तेल मे डूबे गेंद जलाकर उस छावनी के खीमों में फेंके जायँ। इसका उद्देश्य यह था, कि इस छावनी के खीमो में आग लगाई जाये। इस सेनापति ने स्थिर किया था, कि इस छावनी में आग लगने और ऊपर से गोलियो की वृष्टि होने से इस छावनी के राठोर और भी सरलतापूर्वक मारे जा सकेंगे। उसकी यह आज्ञा कार्य्य में परिणत की गई। इस छावनी के बहुसख्यक खीमो में आग लगा दी गई। इससे राठोर वीर एक ओर अपनी चारो ओर की अग्नि से व्यथित होने लगे; दूसरी ओर वारिधारा की तरह पड़ती गोलिया उन्हे पीड़ित करने लगीं। इस छावनी के ऊपर का आकाश अग्नि-ज्वाला और धुए से परिपूर्ण हुआ।

अग्नि-प्रकोप बढने पर दिन कोई तीन बजे इस नये अफसर ने अपने सिपाहियो के कितने ही दलो को गोली-वृष्टि बन्द कर इस छावनी में घुसने की आज्ञा दी। इन सिपाहियों के आठ दल अपनी बन्दूकें रख तलवारें हाथ में ले भीषण युद्ध-कोलाहल करते इस छावनी की ओर बढे। यह देख राठोर-सरदारों ने अपने अधीनस्थ योद्धाओं से कहा,—"आगे बढनवाले शत्रु के इन सिपाहियो पर घोर गोली-वृष्टि करो। ऐसा यत्न हो, जिसमें यह सब तुम्हारे समीप पहुचने न पायें, राह ही में मारे जायें।" ऐसा ही यत्न किया गया। राठोर सिपाहियो ने अपने समीप की अग्नि की कोई परवा न कर, अपने [illegible]

हुई गोली वृष्टि को तृणवत् तुच्छ समझ इन आगे बढ़नेवाले सिपाहियो पर भीषण गोली-वृष्टि की। इसके फल से बहु-सख्यक सिपाही हताहत हुए। बहुतेरे सिपाही किसी तरह आगे बढ इस छावनी में घुसे। वहां पहुंच इन्हे दिखाई दिया, कि जो आग इन्हों ने लगाई है, उस आग ने इन्हीं के पथ मे बाधा उपस्थित की है। यह सब उन जलते हुए खीमो के समीप आ अल्प समय के लिये ठहर गये। इससे राठोर वीरो को सुअवसर मिला। उन सब ने और भी वेग से इन सिपाहियो पर गोलिया चलाई। इस बार यह सब सिपाही इन गोलियो की बौछार के सामने ठहर न सके। यह सब अपने हताहत साथियो को अपने पीछे छोड द्रुत गति से पीछे लौटने पर बाध्य हुए। इस तरह यह आक्रमण राठोरो ने व्यर्थ किया। इस आक्रमण के व्यर्थ होने से शत्रु-पक्ष की बड़ी क्षति हुई।

इस आक्रमण के व्यर्थ होने पर औरङ्गजेब की सैन्य के उस प्रधान अफसर के क्रोध की सीमा न रही। उसने कुछ देर तक राठोरों पर भीषण गोली-वृष्टि करा दिन कोई चार बजे इस छावनी पर दूसरा आक्रमण होने की व्यवस्था की। इस बार चार ओर से चार दल को आक्रमण करने की आज्ञा मिली। प्रत्येक दल में कोई पाच सौ सिपाही रखे गये। अपने घोर कोलाहल से दिशायें परिपूर्ण करते और अपने पद भार से पृथ्वी हिलाते यह चारो दल एकाएक उस छावनी की ओर झपटे। इस बार भी राठोरों ने घोर गोली-वृष्टि की सही; किन्तु इससे यह दल न रुके। प्रत्येक दल के दश सिपाहियों के मरने से पचास सिपाही उनका स्थान अधिकार करते थे। खीमो की आग भी

दल के अग्रसर होने में अधिक बाधा उपस्थित कर न सकी। आगे बढते हुए सिपाही आग में फाद और उसे अपने पैरो से कुचल उन स्थानों में पहुचे, जिन स्थानों में वीर राठोर उन डेरों के पीछे बैठे इन सिपाहियो पर भीम वेग से गोली-वृष्टि कर रहे थे। इन सिपाहियो ने उन डेरो के समीप पहुच जैसे ही उन पर चढने का यत्न किया, वैसे ही राठोरो ने अपनी बन्दूकें फेंक तलवारें हाथ में ले इन पर तलवारो का वार करना आरम्भ किया। दोनो ओर से शपाशप तलवारें चलने लगी। ऐसे समय औरङ्गजेब की सैन्य के उस प्रधान अफसर ने अपने अवशेष सिपाहियो को भी आगे बढा उस छावनी के भीतर पहुंचा दिया।

अब घोरतर भयङ्कर युद्ध आरम्भ हुआ। धूमराशि और अग्नि से परिपूर्ण उस छावनी में उन डेरो के समीप गोली, तीर, तलवार, गदा, बरछी, खञ्जर आदि से बड़ी मार-काट होने लगी। आहत योद्धाओ की चीत्कार ध्वनि मे लड़ते हुए योद्धाओं का 'मार-मार' रव मिल जाने से अतीव अ्तभयङ्कर कोलाहल की सृष्टि हुई। अल्प ही समय कि इस युद्ध में उस छावनी की उत्तप्त पृथ्वी रुण्ड, मुण्ड, हाथ, पैर और प्रक्षिप्त अस्त्र—शस्त्र से समावृता हुई। उत्तप्त नर-रक्त की धारायें बहने लगी। स्थान—स्थान मे मास-शोणित का कीचड़ तय्यार हुआ। उभय पक्ष के योद्धा लोहित—कर्दम से आच्छन्न हुए। जिस तरह महा

उस युद्ध सागर में स्नान करने लगे। भीषण युद्ध होने के कारण उभय पक्ष के योद्धा अपने को भूल; इस युद्ध का परिणाम–फल भूल; एक दूसरे को मारने और मरने लगे। इस युद्ध के आरम्भ में जो भीषण युद्ध–कोलाहल उत्थित हुआ था; इस युद्ध के आगे बढने पर वह क्रम–क्रम से धीमा हो बन्द हो गया। भीषण युद्ध में प्रवृत्त योद्धाओं के मुह तृषा से सूख गये। उनकी जिह्वा उनके मुह में लिपट गई। वह मार—मार कहने के लिये मुह खोलते; किन्तु कोई भी शब्द उच्चारण कर न सकते थे।

कोई एक घण्टे तक ऐसा ही भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध के समय नाहर एक जगह नहीं, चारो ओर घूमता फिरता था। जिस जगह अपने पक्ष की निर्बलता और शत्रु पक्ष की प्रबलता देखता, उसी जगह उपस्थित हो घोर युद्ध में प्रवृत्त हो शत्रु पक्ष का बल भङ्ग करता था। नाहर ने देखा, कि जैसे–जैसे यह युद्ध बढा, वैसे–वैसे उसके योद्धाओँ की सख्या घटी। प्रत्येक राठोर योद्धा घोर युद्ध कर बहुसख्यक यवनो को मारता था सही; किन्तु अन्त में विपक्ष के सख्याधिक्य के कारण जखमों से चूर–चूर हो कर मारा जाता था। इस एक घण्टे के युद्ध में शत्रु—पक्ष के कोई डेढ हजार सिपाही मारे गये सही; किन्तु राठोरो की भी कम क्षति न हुई, उनके कोई चार सौ योद्धा वीर गति को प्राप्त हुए। अब एक ओर कोई एक सौ राठोर और दूसरी ओर कई हजार यवन रह गये। उस समय पाँच बज जाने के कारण सूर्य्यदेव अस्ताचल के समीप पहुच गये थे, इस भीषण दशन युद्ध–क्षेत्र में सान्ध्य अन्धकार फैल

यह देख नाहर ने अवशेष राठोर वीरो को अपने स्थानों से पीछे हट उन डेरो के पीछे बुला लिया, जो शिशु राजकुमारों और विधवा महारानियों के गिर्द घिरी एक कनात के इर्द—गिर्द थे। इस तरह राठोरो के पीछे हटने से मुसलमान सिपाही बड़े उत्साह से आगे बढ़े। उन सब ने अनुमान किया, कि अपनी घोर क्षति देख राठोर अब युद्ध-विमुख हुआ चाहते है। किन्तु आगे बढ़ते ही उन्हें अपना भ्रम मालूम हो गया। इन दूसरे डेरों के पीछे पहुचने वाले राठोरो ने एकबार फिर निर्भय चित्त से घोर युद्ध आरम्भ किया। नाहर समझ गया, कि अब इस युद्ध की समाप्ति हुआ चाहती है। कोई एक घण्टे में अवशेष राठोरो के कट जाते ही सब बातो का अन्त हो जायेगा। यह समझ नाहर ने उस कनात में प्रवेश कर विधवा महारानियों के सम्मुख पहुच अत्यन्त दु खित हो कहा,—"यवन इस कनात के अत्यन्त समीप पहुच गये हैं। हम लोग अब कोई एक घण्टे तक उन्हे रोक सकेंगे। इसके उपरान्त हमारी लाशो को पार कर वह यहा पहुंचेंगे। मैं चाहता हूं, कि उनके आने से पहले आप लोग अपने स्वर्गारोहण का उपाय करें। मै बाहर जाता हूं। जब तक लौट कर न आऊं, तब तक चिता को अग्नि स्पर्श कराया न जाये।"

नाहर की यह बात सुन विधवा महारानिया तनिक भी विचलित न हुईं। अपनी परिचारिकाओ के साथ उन सब ने उस कनात के भीतर पहले से रखे काष्ठ को एक जगह एकत्र कर एक महा चिता तय्यार की। वी

गिर्द खड़ी हुई। सभी तय्यारियां हो गईं। केवल नाहर के लौटने की कसर थी।

उस समय इस कनात के बाहर भीषण युद्ध हो रहा था। अस्त्र—शस्त्र के झङ्कार से दिशायें परिपूर्ण हो रही थी। नर-रक्त के छींटे उड़—उड़ कर उस कनात के भीतर तक पहुच रहे थे। प्रत्येक राठोर वीर स्फीत-केशर क्रुद्ध केशरी की तरह युद्ध कर रहा था। नाहर भी इस युद्ध मे प्रवृत्त था। उस कनात से लौट और भीषण युद्ध कर उसने यवनो को वारवार पीछे हटा दिया। किन्तु यवनों की सख्या बहुत अधिक थी, राठोरो और नाहर के इतना पराक्रम प्रकाश करने पर भी यवनों की सख्या में उतनी कमी न हुई। और आध घण्टे के युद्ध में कोई पचास राठोर कोई दो सौ यवनों को मार सुरलोक गये। अब उस कनात के गिर्द कोई पचास राठोर और उनके भृत्यादि रह गये। नाहर समझ गया, कि युद्ध समाप्त होने में अब केवल आध घण्टे की देर है।

नाहर युद्धस्थल परित्याग कर उस कनात में पहुचा। वहा उसने जो देखा, उसे देख उसने दीर्घ निश्वास परित्याग किया। विधवा महारानिया उस चिता पर बैठी थीं; कितनी ही स्त्रिया जलती मशाले हाथ मे ले उस महा चिता के गिर्द खड़ी थी। इन सब ने नाहर के मुख की ओर देखा। नाहर ने अपने दोनो हाथो से अपनी छाती पकड़ रुधे हुए कण्ठ से कहा,—"अब समय नहीं; शीघ्र ही चिता मे अग्नि—प्रयोग हो।"

यह सुन मशालो वाली वह स्त्रिया अपनी मशालें ले उस चिता की ओर बढीं। महाराज यशवन्तसिंह के

दोनो शिशु पुत्र उस महा चिता पर बैठी अपनी माताओं की गोद मे से लिये गये। इससे इन दोनो ने क्रन्दन करना आरम्भ किया। इनकी माताओं ने अपना अन्तिम समय समीप देख शीघ्र—शीघ्र अपने बच्चों को आशीर्वाद कर भगवान् की वन्दना आरम्भ की। इस महा चिता में अग्नि-संयोग हुआ ही चाहता था; ऐसे समय नाहर के कन्धे पर एकाएक किसी का हाथ पड़ा। नाहर चौंक कर पलटा। उसे अपने सामने वही युवक, —वही हमारे पूर्व परिचित योगिराज दिखाई दिये। इन्हें देख नाहर अपने को सम्हाल न सका। उसने योगिराज के चरणो पर गिर हाथ जोड़ कहा,- "भगवन्! बचाइये,—रक्षा कीजिये! यह देखिये, आज मारवाड़पति यशवन्तसिंह का वंश निर्वंश हुआ चाहता है।"

आज उन युवक के आकार-प्रकार से और भी गम्भीरता परिलक्षित होती थी। उनके नेत्रों से और भी प्रकाश निकल रहा था; उनका मुख-मण्डल अलौकिक ज्योति से प्रकाशित था। उन्हो ने नाहर की ओर देख शान्त चित्त हो कहा,—" नाहर! तुम्हे मैंने और एक बार भेंट करने का वचन दिया था। उसी वचन के अनुसार इस समय अन्तिम बार मैं तुम्हारे पास आया हूं। तुम चिन्ता न करो; महाराज यशवन्तसिंह का वंश निर्वंश होने न पायेगा।"

नाहर—(सजल नयन हो) कैसे नाथ! इस आसन्न विपद् से इस वंश की रक्षा कैसे होगी?

ऐसे समय इस कनात के बाहर 'अल्लाहो अकबर' की भीषण ध्वनि हुई।

नाहर-(चौंक कर) प्रभो! इस समय राठोर पर राठोर मारे जा रहे हैं; इसी लिये यवन हर्ष ध्वनि कर रहे है।

हे योगिराज ! इस समय आप को जो कुछ करना हो शीघ्र करें; अन्यथा यह हिन्दू-कुल-ललनायें और यह दोनो शीशु यवनों के हाथ पड़ जायेंगे।

युवक—अधीर न हो, नाहर! धैर्य्य धारण करो। जब मैं यहां उपस्थित हूं, तब तुम्हें किसी भी बात का भय करना न चाहिये।

इसके उपरान्त उन युवक ने विधवा राजरानियों, दो स्त्रियों की गोद में बैठे दोनो राजकुमारों और नाहर को अपने समीप बुला उन सब की ओर देखा। इनके देखते ही यह सब मानो ज्ञानशून्य हुए। इन युवक ने इन सब से कहा,—"तुम सब मेरे पीछे आओ।" मन्त्र मुग्ध मनुष्य की तरह इन सब ने उन युवक का अनुगमन किया। इन सब के साथ वह युवक इस कनात के बाहर निकले।

इस कनात के इर्द-गिर्द कोई पचीस राठोर वीर बहु-सख्यक मुसलमानों से युद्ध कर रहे थे। इन युवक ने इन सब को भी एकत्र कर और इनकी ओर देख इन्हें अपने पीछे आने के लिये कहा। इन युवक और इनके साथियों को देख इनके समीप के मुसलमान योद्धा एकाएक युद्ध से विरत हुए। यह युवक अपने साथियों के साथ उस भीषण रणभूमि और बहुसख्यक मुसलमान योद्धाओं के बीच से निकल गये। जिस ओर से यह गये, उस ओर के मुसलमान योद्धाओं को इन्हों ने अपनी उगली के सङ्केत से युद्ध से विरत हो हट जाने का आदेश किया और यह आदेश पाते ही वह सब इन युवक और इनके साथियों का पथ छोड़ अलग हट गये।

दोनो शिशु पुत्र उस महा चिता पर बैठी अपनी माताओं की गोद मे से लिये गये। इससे इन दोनो ने क्रन्दन करना आरम्भ किया । इनकी माताओ ने अपना अन्तिम समय समीप देख शीघ्र—शीघ्र अपने बच्चों को आशीर्वाद कर भगवान् की वन्दना आरम्भ की। इस महा चिता में अग्नि-सयोग हुआ ही चाहता था; ऐसे समय नाहर के कन्धे पर एकाएक किसी का हाथ पड़ा । नाहर चौंक कर पलटा। उसे अपने सामने वही युवक, —वही हमारे पूर्व परिचित योगिराज दिखाई दिये। इन्हें देख नाहर अपने को संभाल न सका। उसने योगिराज के चरणो पर गिर हाथ जोड़ कहा.- "भगवन् ! बचाइये,—रक्षा कीजिये ! यह देखिये, आज मारवाड़पति यशवन्तसिंह का वश निर्वंश हुआ चाहता है।"

आज उन युवक के आकार—प्रकार से और भी गम्भीरता परिलक्षित होती थी। उनके नेत्रों से और भी प्रकाश निकल रहा था; उनका मुख-मण्डल अलौकिक ज्योति से प्रकाशित था । उन्हो ने नाहर की ओर देख शान्त चित्त हो कहा,—" नाहर ! तुम्हें मैंने और एक बार भेंट करने का वचन दिया था । उसी वचन के अनुसार इस समय अन्तिम बार मैं तुम्हारे पास आया हूं। तुम चिन्ता न करो; महाराज यशवन्तसिंह का वश निर्वंश होने न पायेगा।"

नाहर—(सजल नयन हो) कैसे नाथ ! इस आसन्न विपद् से इस वश की रक्षा कैसे होगी ?

ऐसे समय इस कनात के बाहर 'अल्लाहो अकबर' की भीषण ध्वनि हुई ।

नाहर-(चौंक कर) प्रभो! इस समय राठोर पर राठोर मारे जा रहे हैं; इसी लिये यवन हर्ष ध्वनि कर रहे हैं।

हे योगिराज! इस समय आप को जो कुछ करना हो शीघ्र करें; अन्यथा यह हिन्दू-कुल-ललनायें और यह दोनो शीशु यवनों के हाथ पड़ जायेंगे।

युवक—अधीर न हो, नाहर! धैर्य्य धारण करो। जब मैं यहा उपस्थित हू, तब तुम्हें किसी भी बात का भय करना न चाहिये।

इसके उपरान्त उन युवक ने विधवा राजरानियो, दो स्त्रियो की गोद में बैठे दोनो राजकुमारो और नाहर को अपने समीप बुला उन सब की ओर देखा। इनके देखते ही यह सब मानो ज्ञानशून्य हुए। इन युवक ने इन सब से कहा,—"तुम सब मेरे पीछे आओ।" मन्त्र मुग्ध मनुष्य की तरह इन सब ने उन युवक का अवगमन किया। इन सब के साथ वह युवक इस कनात के बाहर निकले।

इस कनात के इर्द-गिर्द कोई पचीस राठोर वीर बहु-सख्यक मुसलमानों से युद्ध कर रहे थे। इन युवक ने इन सब को भी एकत्र कर और इनकी ओर देख इन्हें अपने पीछे आने के लिये कहा। इन युवक और इनके साथियों को देख इनके समीप के मुसलमान योद्धा एकाएक युद्ध से विरत हुए। यह युवक अपने साथियो के साथ उस भीषण रणभूमि और बहुसख्यक मुसलमान योद्धाओं के बीच से निकल गये। जिस ओर से यह गये, उस ओर के मुसलमान योद्धाओ को इन्हो ने अपनी उगली के सङ्केत से युद्ध से विरत हो हट जाने का आदेश किया और यह [illegible] पाते ही वह सब इन युवक और इनके साथियों का छोड़ अलग हट गये।

इस तरह सदलबल यह युवक उस भीषण युद्ध क्षेत्र से निकल चारो ओर के छाये सान्ध्य अन्धकार मे विलीन हो गये।

* * * * *

इस घटना के बहुत समय के उपरान्त नाहर ने जब चैतन्य लाभ किया, तब उसने अपने को दिल्ली या उसके समीप न पा मारवाड़ – राजधानी योधपुर के राजप्रासाद में पाया। उसके समीप ही वह विधवा रानियां, वह दोनो राजकुमार तथा थोड़े से राठोर वीर थे। नाहर की तरह इन सब ने भी चैतन्य लाभ किया था। यह सब सोचने लगे, कि उस समय जागते या स्वप्न देखते थे।

कुछ देर के उपरान्त नाहर ने सब बातो को समझ अपने साथियो से कहा,—"यह स्वप्न नही; सत्य घटना है। उन योगिराज की कृपा फल से हम उस भीषण आसन्न विपद् से बच केवल अपने राज्य ही मे नही; अपनी राजधानी मे पहुंच गये है। उन्ही की कृपा से आज मारवाड़ राज-वंश की रक्षा हुई है। अब हम लोगो को जगदीश की वन्दना करना चाहिये।"

एक राठोर—प्यारे प्राणदाता; प्यारे रक्षक वह योगिराज कहा गये?

नाहर—जिस जगह इस मर्त्य के ताप पहुंच नही सकते, वह योगिराज उसी जगह गये। उनको ढूंढने के प्रयास का कोई फल न होगा। इस जीवन में उन्हें हम फिर देख न सकेंगे।

परिशिष्ट

यह पुस्तक समाप्त हुई; इसकी कुछ बातें अभी समाप्त नहीं हुई हैं। औरङ्गजेब की जो सैन्य राठोरो को दण्ड देने के कार्य्य में नियुक्त की गई थी, उसका क्या हुआ? महाराज यशवन्तसिंह के राजकुमारों का क्या हुआ? प्यारे वीर और कौशली नाहर का क्या हुआ?

औरङ्गजेब की जो सैन्य राठोरो को दण्ड देने मे नियुक्त की गई थी, वह उन योगिराज द्वारा अजितसिंह आदि के स्थानान्तरित किये जाने का मर्म्म कुछ भी समझ न सकी। सन्ध्या समय वह अपने सामने की अन्तिम बाधा हटने पर एकाएक उस कनात मे घुसी। उस कनात में उसे राठोरो के भृत्यो के कितने ही बालक और कितनी ही परिचारिकाये मिलीं। इसमें दो बालको को अजितसिंह और दलस्तम्भनसिंह समझ और कितनी ही परिचारिकाओ को विधवा महारानियां जान बहुतेरे भृत्यो के साथ इस सैन्य ने औरङ्गजेब के सामने पहुंचाया। इन सब को पा औरङ्गजेब अत्यन्त आनन्दित हुआ। उसने उन दोनो बालको और परिचारिकाओ को मुसलमान बना अपने महल मे रखा। कुछ दिनो के उपरान्त जब औरङ्गजेब को यह मालूम हुआ, कि यह बालक और स्त्रिया असली राजकुमार और महारानिया नहीं; असली राजकुमार और महारानिया चिरंजिन्न जोधपुर पहुच गयी हैं, तब उसके क्रोध की सीमा न रही। उसने मारवाड़ के नष्ट करने का यत्न किया, किन्तु इसका कोई फल न हुआ। कारण, इस वृत्तान्त घटना के उपरान्त ही देश-देश के हिन्दुओ,ने उत्थित हो औरङ्गजेब की उत्त-शय्या,

ाकीर्ण बना दिया। इससे औरङ्गजेब के मारवाड़
ं़रुद्ध अपना सम्पूर्ण शक्ति-सामर्थ्य प्रकाश करने का स
मिला। इसी जगह यह भी सुन लेना चाहिये, कि
टना के उपरान्त भारत मे जो अशान्ति उत्पन्न हु
स अशान्ति ने स्थिर हो मृत्यु के समय तक औरङ्ग
ा निश्चिन्त होने न दिया। कितने ही वर्ष तक वन-प
निवास कर अन्त में अजितसिंह नियमित् रूप मे म
ाड़ सिंहासन पर बैठे और सुदीर्घ काल तक उन्हों
ारवाड़ की शासन—कार्य्य परिचालन किया। औरं
ेब चला गया; उसका वह समय चला गया; अजित्सि
ने अपने जिस पैतृक राज्य का शासन भार प्राप्त किया,
ाज्य आज भी अवस्थित है; अजित्सिंह के वंशधर
आज भी इस राज्य का शासन दण्ड परिचालन कर रहे है

इस घटना के उपरान्त कम्पावत वीर नाहर ने एक
न्तवासी हो, एकान्त की अपनी जागीर में रहना और भ
ान् का भजन करना आरम्भ किया। उर्वशी और उ
के पति, रूपवती और उसके पति तथा भाई और अप
मित्रो तथा सरदारो से परिवृत हो नाहर ने अपना
दीर्घ जीवन बड़ी ही सुख-शान्ति के साथ व्यतीत किया

इसी जगह यह भी सुन रखना चाहिये, कि रूपवत
उसके पति और उसके भाई को नाहर काबुल से अप
साथ लाया न था; उन सब को उसने अपनी यात्रा
कई मास पहले काबुल से मारवाड़ भेज दिया था।

समाप्त

कार्कीर्ण बना दिया । इससे, औरङ्गजेब
विरुद्ध अपना सम्पूर्ण शक्ति-सामर्थ्य प्रकाश
न मिला। इसी जगह यह भी सुन लेना चा
घटना के उपरान्त भारत में जो अशान्ति
उस अशान्ति ने स्थिर हो मृत्यु के समय तक
को निश्चिन्त होने न दिया। कितने ही वर्ष तक
में निवास कर अन्त में अजितसिंह नियमित रूप
बाड़ सिंहासन पर बैठे और सुदीर्घ काल तक
मारवाड़ की शासन—कार्य्य परिचालन किया । औ
जेब चला गया; उसका वह समय चला गया; अजित
ने अपने जिस पैतृक राज्य का शासन भार प्राप्त किया, व
राज्य आज भी अवस्थित है; अजितसिंह के वंशधरगः
आज भी इस राज्य का शासन दण्ड परिचालन कर रहे हैं

इस घटना के उपरान्त कम्पावत वीर नाहर ने एका न्तवासी हो, एकान्त की अपनी जागीर में रहना और भगवान् का भजन करना आरम्भ किया । उर्वशी और उस के पति, रूपवती और उसके पति तथा भाई और अपने मित्रों तथा सरदारों से परिवृत हो नाहर ने अपना सुदीर्घ जीवन बड़ी ही सुख-शान्ति के साथ व्यतीत किया।

इसी जगह यह भी सुन रखना चाहिये, कि रूपवती, उसके पति और उसके भाई को नाहर काबुल से अपने साथ लाया न था; उन सब को उसने अपनी यात्रा से कई मास पहले काबुल से मारवाड़ भेज दिया था ।

समाप्त